देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Feb. 2026
Vol.-23, Issue-2

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Vol. 23 ISSUE-2, Part-3 (फरवरी 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
9 772395 711007
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – फरवरी 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09-09
2.	Heritage, Tourism, and Religious Architecture in Chauth ka Barwara : Community Perspectives and Cultural Significance	Jeetesh Kumar Meena	10-15
3-	Naval Self-Reliance and Defence Industrial Strategy : India's Roadmap to 2047	Siddhant Mishra	16-27
4.	गीतांजलि श्री के कहानियों में वस्तुपक्ष और उपन्यासों में स्त्री चेतना	सत्यप्रकाश मिश्रा	28-33
5.	तीर्थराज प्रयागराज : महाकुम्भ, महापर्व और सनातन परंपरा	लेफ्टिनेंट (डॉ.) ज्योति गुप्ता	34-40
6.	समकालीन कहानियों में वृद्ध विमर्श	डॉ. लक्ष्मी देवी	41-45
7.	आधुनिक परिवार-प्रणाली का विकासात्मक स्वरूप एवं हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन	रितु दत्ता, डॉ. पूजा धमीजा	46-53
8.	हिन्दी साहित्य में नारी की बदलती छवि	नरेन्द्र कुमार वर्मा	54-56
9.	अनामिका के साहित्य में संवेदना	करण दान रतनू	57-60
10.	वैशाली के समाजवादी नेता : बसावन सिंह	विपिन पासवान, डॉ. संजीव कुमार	61-64
11.	मध्यकालीन बिहार में शिक्षा : एक अवलोकन	डॉ. मो. इस्माईल, अविनाश कुमार पासवान	65-70
12.	कुषाण कालीन मथुरा कला शैली के बौद्ध प्रतिमाओं का अध्ययन	वसीमा खातून	71-79
13.	Revoicing Indianness for Western Readerships : Barriers and Challenges in Translation	Arya Mohandas	80-84
14.	SRODHAN VILLAGE : A HISTORICAL STUDY	Vaibhav Yadav	85-91
15.	PANIPAT : A HISTORICAL STUDY	Deepak Phor	92-97
16.	उत्तराखण्ड की जैव विविधता : संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण की चुनौतियाँ	डॉ. अभिषेक बेंजवाल	99-103
17.	वैश्वीकरण की जड़ें : प्राचीन रेशम मार्ग से आधुनिक विश्व तक	डॉ. अनीता रानी	104-110
18.	कोख उसकी, इज्ज़त समाज की कैसे? (विशेष संदर्भ :- शिवमूर्ती कृत 'कुच्ची का कानून' कहानी)	विशाल साहु	111-115
19.	विश्व पटल पर हिंदी की स्थिति	डॉ. अलका शर्मा	116-119
20.	हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे-जोन युद्ध एवं दक्षिण एशिया : भारतीय सुरक्षा के विशेष संदर्भ में	विभांशु सिंह, प्रो. विनोद कुमार सिंह	120-126

21.	ग्रामीण स्त्रियों की लोमहर्षक त्रासदी का यथार्थ ('औरत' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	डॉ० शशि कुमार शर्मा	127–131
22.	झारखण्ड के उराँव जनजाति की युवागृह संस्था	डॉ० प्रमीला उराँव	132–134
23.	वर्तमान संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली और उच्च शिक्षा : एक समन्वित अध्ययन	डॉ. सुबोध कुमार	135–142
24.	**Educational Implications of Sankhya Philosophy**	**Dr. Manju**	**143-146**
25.	वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श **LGBTQ+ Discourse in Contemporary Hindi Literature**	जसवीर	147–150
26.	**Leadership Styles and Psychological Contracts in Indian Aviation : A Study of Employee Perceptions and Organizational Outcomes**	**Sanjay Kumar, Dr. Sufiya Syed**	**151-155**
27.	भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रभाव (बिहार के विशेष सन्दर्भ में)	प्रोफेसर चन्द्रशेखर	156–161
28.	भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : भारतीय समाज के परिप्रेक्ष में विशेष सन्दर्भ : अलका सरावगी कृत 'कलि-कथा वाया बाइपास' उपन्यास	प्रीति प्रिया दास	162–166
29.	हिंदी साहित्य में आत्मकथा की परंपरा और आधुनिक अस्मिता विमर्श	डॉ. सबा रईस	167–170
30.	जैन आगमों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन लेश्याओं के विशेष संदर्भ में	जीतू	171–175
31.	**Colonial Influence on the Architectural Transformation of Bharatpur during the British Era**	**Pintu Ram Bairwa**	**176-180**
32.	काशी का रेशमी वस्त्र एवं धर्म	डॉ. शिवाश्री सिन्हा	181–185
33.	महाराजा यशवंतराव होलकर छत्री : स्थापत्य वैभव एवं सांस्कृतिक विरासत का एक अनुशीलन	डॉ. उषा अग्रवाल, सुधांशु पाण्डेय	186–192
35.	नर्मदा परिक्रमा : आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयामों का शोधपूर्ण विश्लेषण	नमन जैन	193–197
36.	भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में गोरखनाथ की उपादेयता	डॉ० सुभीर सिंह	198–202
37.	समकालीन वैश्विक परिदृश्य में वसुधैव कुटुंबकम्	डॉ. सरिता सिंह	203–209
38.	समकालीन समाज एवं स्त्री विमर्श : पंकज सुबीर की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में	नमिता शर्मा, डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार	210–215

संपादकीय...

समकालीन शोध चेतना और बोहल शोध मंजूषा

शोध केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि समाज, समय और संवेदना के बीच एक जीवंत संवाद है। बोहल शोध मंजूषा का यह फरवरी मासिक अंक इसी संवाद को और अधिक सशक्त बनाते हुए पाठकों एवं शोधार्थियों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पत्रिका अपने आरंभ से ही साहित्य, समाज, संस्कृति और समकालीन विमर्श को शोध की दृष्टि से देखने का सतत प्रयास करती रही है, और यह अंक उसी परंपरा की एक सशक्त कड़ी है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन का समय है। वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, सामाजिक असमानताएँ, सांस्कृतिक संक्रमण और वैचारिक द्वंद्वकृये सभी तत्व हमारे साहित्य और शोध को गहराई से प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे समय में शोध पत्रिकाओं की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। बोहल शोध मंजूषा केवल लेखन का मंच नहीं, बल्कि विचारों के मंथन और बौद्धिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने वाला एक गंभीर प्रयास है।

फरवरी अंक में संकलित शोध आलेख विविध विषयों को समेटे हुए हैं। इनमें हिंदी साहित्य, लोकसंस्कृति, सामाजिक यथार्थ, स्त्री विमर्श, पर्यावरणीय चिंतन, इतिहासबोध तथा समकालीन समस्याओं पर आधारित अध्ययन शामिल हैं। ये आलेख न केवल अकादमिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि समाज के व्यापक प्रश्नों से भी संवाद करते हैं। शोधार्थियों ने संदर्भों, तर्कों और मौलिक दृष्टिकोण के माध्यम से अपने विषयों को प्रामाणिकता प्रदान की है।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आज शोध का उद्देश्य केवल डिग्री प्राप्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिए। शोध समाज के लिए उपयोगी हो, मानवीय मूल्यों को पुष्ट करे और साहित्य को जीवन से जोड़े—यह अपेक्षा हर गंभीर पाठक की होती है। बोहल शोध मंजूषा इस अपेक्षा को समझते हुए ऐसे शोध कार्यों को प्राथमिकता देती है जो संवेदनशील, तथ्यपरक और वैचारिक रूप से सुदृढ़ हों।

यह अंक उन सभी शोधार्थियों और विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने अपने परिश्रम, समय और ज्ञान से पत्रिका को समृद्ध किया। साथ ही समीक्षकों और संपादकीय सहयोगियों का योगदान भी उल्लेखनीय है, जिनकी सूक्ष्म दृष्टि और मार्गदर्शन से आलेखों की गुणवत्ता सुनिश्चित हो सकी।

अंत में, बोहल शोध मंजूषा अपने पाठकों से यह अपेक्षा रखती है कि वे इस शोध यात्रा में सहभागी बनें—पढ़ें, विचार करें और संवाद को आगे बढ़ाएँ। शोध तभी सार्थक है जब वह प्रश्नों को जन्म दे और चेतना को जाग्रत करे। हमें विश्वास है कि फरवरी अंक इस दिशा में एक सकारात्मक और विचारोत्तेजक पहल सिद्ध होगा।

–संपादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 10-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Heritage, Tourism, and Religious Architecture in Chauth ka Barwara : Community Perspectives and Cultural Significance

Jeetesh Kumar Meena
Research Scholar, Department of History and Indian Culture
Banasthali Vidyapith, Newai, Rajasthan.

Abstract :

Religious architecture in Rajasthan has historically functioned as a focal point of spiritual practice, social organization, and cultural memory. Chauth ka Barwara, located in the Sawai Madhopur district, represents an important yet understudied sacred landscape shaped by temple architecture, pilgrimage traditions, and local community life. Anchored by the Chauth Mata Temple and its associated ritual spaces, the region has long sustained religious, economic, and social networks rooted in devotional practice. In recent decades, however, the expansion of heritage tourism—particularly through large-scale conservation and adaptive reuse projects—has significantly altered the socio-cultural dynamics of the area. This paper examines the religious architecture of Chauth ka Barwara within the intersecting frameworks of heritage, tourism, and community engagement. Drawing upon architectural analysis, heritage surveys, policy documents, and community-based perspectives, the study argues that religious architecture in Chauth ka Barwara constitutes a form of living heritage. It emphasizes that sustainable heritage management requires integrating local religious practices, collective memory, and community participation alongside conservation and tourism initiatives.

Keywords : *Religious architecture; heritage tourism; Chauth ka Barwara; community heritage; Rajasthan; sacred landscapes*

1. Introduction :

Rock-cut and temple-based religious architecture in Rajasthan has traditionally served as more than a site of worship; it has functioned as a social nucleus through which ritual practice, economic activity, and cultural identity are articulated. Chauth ka Barwara, situated in eastern Rajasthan, exemplifies this interrelationship between sacred architecture and community life. The town is

primarily known for the Chauth Mata Temple, a major pilgrimage centre that continues to attract devotees from across the region. Alongside the temple, a network of shrines, ritual pathways, water bodies, and associated structures collectively form a sacred landscape that has evolved over centuries. In recent years, the region has witnessed growing attention from heritage tourism initiatives, particularly following the restoration and adaptive reuse of Fort Barwara. While such developments are often framed as conservation successes and economic opportunities, they have also transformed patterns of access, spatial use, and cultural representation. This raises critical questions about how religious architecture is reinterpreted within heritage tourism frameworks and how local communities negotiate these changes.

This paper seeks to examine religious architecture in Chauth ka Barwara as a living cultural system shaped by devotional practice, social memory, and economic activity. It asks how heritage tourism has altered the relationship between sacred space and local community life, and how inclusive heritage models may better address these transformations.

2. Conceptual Framework: Heritage, Sacred Space, and Community :

Recent scholarship in heritage studies has emphasized that heritage is not merely an inherited object but a cultural process through which meanings are produced and contested. Religious architecture, in this framework, represents both material form and social practice. Temples and sacred spaces acquire significance not only through architectural design but through ritual use, pilgrimage, and collective memory.

Sacred sites present particular challenges for heritage management because they continue to function as active religious spaces. Unlike archaeological monuments, they cannot be fully separated from the communities that use them. Community-based heritage approaches therefore stress participation, local knowledge, and the recognition of intangible cultural practices.

Any heritage tourism intervention must therefore consider its effects on these socio-economic systems rather than focusing exclusively on architectural conservation or visitor experience.

3. Religious Architecture and Sacred Landscape of Chauth ka Barwara

3.1 Chauth Mata Temple and Ritual Space :

The Chauth Mata Temple forms the spiritual centre of Chauth ka Barwara. Architecturally, the temple reflects regional north Indian temple traditions adapted to local materials and climatic conditions. Its spatial layout—including the sanctum, assembly halls, circumambulatory paths, and open courtyards—facilitates collective worship and ritual movement.

Beyond the main temple structure, the surrounding sacred landscape includes smaller shrines, water bodies, rest houses, and processional routes that support pilgrimage practices. These elements

together constitute an integrated religious environment rather than an isolated monument.

3.2 Fort Barwara and Cultural Transformation :

Fort Barwara historically represented political authority and regional defence. Although not originally a religious structure, its proximity to the temple and presence in local memory connect it to the broader cultural landscape of the town. Its recent transformation into a luxury heritage property illustrates contemporary trends in adaptive reuse and heritage commodification. This transformation has intensified debates over access, ownership, and the meaning of heritage for local residents.

3.3 Shri Ghushmeshwar Jyotirlinga Mahadev, Shiwar :

It forms an important part of the sacred geography of eastern Rajasthan, showing the continuity of Shaiva worship and regional pilgrimage traditions. Shri Ghushmeshwar Jyotirlinga Mahadev is locally linked to the broader Jyotirlinga tradition of Shiva devotion, with ritual life focused on daily worship, Shravan Maas observances, and periodic fairs that attract devotees from nearby districts. Its significance extends beyond theology, as it also functions as a community shrine where oral traditions, votive practices, and seasonal festivals strengthen collective identity.

3.4 Arneshwar Mahadev, Sapt Kund, Bhagwatgarh :

It integrates natural and built sacred elements, where water bodies, shrines, and the landscape together create a ritual environment for purification and merit-making. The Sapt Kund tradition highlights the long-standing Indic belief in the sanctity of water in Shaiva practice, linking ritual bathing with temple worship. This site illustrates how regional Shaiva temples function as living heritage—simultaneously religious centers, custodians of local mythologies, and spaces that sustain pilgrimage-based micro-economies.

4. Heritage Tourism and Institutional Frameworks :

State and national tourism policies increasingly promote heritage tourism as a strategy for economic development. Rajasthan's long-term tourism plans emphasize religious circuits, heritage towns, and experiential tourism. Within these frameworks, Chauth ka Barwara is positioned as a site of cultural significance linked to pilgrimage and regional heritage.

International development agencies have further promoted heritage-led revitalization models that encourage public–private partnerships. While such approaches acknowledge community livelihoods, their implementation often prioritizes monument restoration and visitor infrastructure over living religious practices.

5. Community Perspectives and Living Heritage :

Heritage surveys and living heritage documentation projects conducted in Sawai Madhopur district reveal the centrality of religious architecture to everyday life in Chauth ka Barwara. For local

communities, the temple is not merely a historic structure but a living institution that organizes social relations, seasonal rhythms, and moral values.

6. Tourism, Change, and Emerging Challenges :

Heritage tourism introduces new spatial and social hierarchies within sacred landscapes. Spaces once freely accessible may become regulated or redefined for visitor consumption. In Chauth ka Barwara, this has resulted in a growing distinction between ritual spaces and tourist-oriented zones.

Such changes risk reducing religious architecture to a visual spectacle, detached from its social context. However, rejecting tourism altogether would overlook its potential benefits. The challenge lies in balancing economic development with cultural integrity and community participation.

7. Towards Inclusive Heritage Management :

This study advocates an inclusive approach to heritage management in Chauth ka Barwara grounded in community engagement, cultural sensitivity, and holistic documentation. It emphasizes the active participation of local communities in heritage planning so that conservation strategies reflect lived realities rather than external priorities. Equal importance is given to the recognition of continuing religious and ritual practices, acknowledging that these traditions sustain the meaning and relevance of sacred sites. The study also calls for context-sensitive tourism that respects sacred norms, ritual timings, and the cultural values attached to religious spaces. Alongside architectural conservation, it highlights the need to document intangible heritage—such as oral traditions, festivals, and ritual knowledge—so that preservation extends beyond physical structures.

8. Conclusion :

Religious architecture in Chauth ka Barwara represents a dynamic intersection of faith, history, and community life. Its significance cannot be fully understood through monument-centric or tourism-driven frameworks alone. Instead, it must be viewed as a living cultural system shaped by continuous interaction between built form, ritual practice, and social memory.

As heritage tourism continues to expand in the region, inclusive and context-sensitive strategies are essential to ensure that conservation and development do not alienate local communities. By foregrounding community perspectives, this study contributes to broader discussions on sustainable heritage management and the future of sacred landscapes in India.

Bibliography :

Primary / Local Sources & Surveys :

- Department of Devasthan, Government of Rajasthan. (n.d.). *(Chauth) Ka Barwara: Final detailed project report (DPR).* Jaipur: Government of Rajasthan.
- Documentation of natural heritage sites: Chauth Ka Barwara (Tehsil). (2015). *Survey and*

field documentation report. Scribd.

- India ICH–SNA Project. (n.d.). *Documentation of living heritage of Sawai Madhopur district.* New Delhi: Ministry of Culture, Government of India.
- Rajasthan Tourism Department. (n.d.). *Chauth Mata Temple: Chauth Ka Barwara.* Jaipur: Government of Rajasthan.
- Various authors. (n.d.). *Pilgrimage narratives and visual documentation of Chauth Mata Temple.* YouTube.

Governmental & Institutional Reports :

- Ministry of Tourism, Government of India. (n.d.). *Rajasthan: 20-year perspective plan for sustainable tourism.* New Delhi: Government of India.
- World Bank & Government of Rajasthan. (2018). *Inclusive revitalisation of historic towns and cities: Strategic framework for Rajasthan State Heritage Programme.* Washington, DC: World Bank.
- Department of Devasthan, Government of Rajasthan. (n.d.). *Official notifications and press releases on religious tourism circuits.* Jaipur: Government of Rajasthan.

Scholarly Books on Religious Architecture & Rajasthan :

- Michell, G. (1995). *Architecture of the Indian subcontinent.* New Haven: Yale University Press.
- Michell, G. (2010). *Late temple architecture of India: Continuities, revivals, appropriations and innovations.* Oxford: Oxford University Press.
- Michell, G. (1993). *Princely Rajasthan: Rajput palaces and mansions.* London: Thames & Hudson.
- Tillotson, G. H. R. (1987). *The Rajput palaces: The historic architecture of Rajasthan.* New Haven: Yale University Press.

Heritage, Tourism & Community Theory :

- Smith, L. (2006). *Uses of heritage.* London: Routledge.
- Timothy, D. J. (2011). *Cultural heritage and tourism: An introduction.* Bristol: Channel View Publications.
- Timothy, D. J., & Nyaupane, G. P. (Eds.). (2009). *Cultural heritage and tourism in the developing world: A regional perspective.* London: Routledge.
- Macdonald, S. (2013). *Memorylands: Heritage and identity in Europe today.* London: Routledge.
- Ashworth, G. J., & Graham, B. (2005). *Senses of place: Senses of time.* Aldershot: Ashgate.

Journal Articles & Case Studies :

- Cultural heritage and tourism development: A case study of Rajasthan. (2020). *Research Gate working paper.*
- Heritage tourism in Rajasthan. (n.d). *INSPIRA: Indian Journal of Tourism Studies.*
- An analysis of heritage tourism in western Rajasthan. (n.d.). *International Journal of Research in Tourism and Innovation.*
- Six Senses. (n.d.). *Fort Barwara: Conservation, adaptive reuse and community engagement.* Corporate heritage journal.
- Media sources on pilgrimage and festivals at Chauth Mata Temple. (n.d.). *NDTV India; regional newspapers.*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
February 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 16-27

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Naval Self-Reliance and Defence Industrial Strategy : India's Roadmap to 2047

Siddhant Mishra
Research Scholar, Lovely professional University.

Introduction :

Following its independence from British rule, India has become a shining example of sovereignty and increased national power. Jawaharlal Nehru, India's first prime minister, thought that advancements in science and technology were essential to the country's economic and social future. Nehru was committed to make India independent in science and technology because he had a strong belief that the country's "scientific temper" would transform it.[1] On May 12, 2020, our current Prime Minister, Mr. Narendra Modi, addressed the Indian people and unveiled a plan known as ATMANIRBHAR BHARAT, or "self-reliant India," along with a financial package totaling about 20 lakh crores.[2] As we approach the 75th anniversary of our independence, we can see progress in areas such as infrastructure, technology, defence, healthcare, education, and so on.

So far, India has made significant progress in defence industrialisation. India has become so self-sufficient that it is now exporting to other neighbouring countries. India's defence industrialization process may have gone through three stages[3] as described in the fig 1 below: -

Fig 1: Stages of Defence Industrialisation

As a result, India has earned foreign exchange over the years, which has boosted the country's economy. India will celebrate its 100th year of independence in 2047, which will be a glorious and proud moment for us. The time frame between year 2022 and 2047 is termed as "**Amrit Kaal**" by the government. As the country prepares to commemorate this historic occasion, it also sets its sights on an ambitious goal during this "**Amrit Kaal**": achieving self-reliance in naval capabilities.[4] The vision to become a self-reliant naval force by 2047, the centenary year of India's independence, requires a comprehensive and strategic approach.

Objectives. :

(a) To identify the significance and challenges for naval self-reliance by 2047.

(b) To analyse and compare the approaches of Self-reliance route of developed and developing nations

(c) To examine the level of self-reliance achieved by Indian Navy under the project of Atmanirbhar Bharat (AB) started by the present government in the year 2020.

(d) To finally suggest the multifaceted roadmap required to steer India towards a future self-reliant naval force by 2047.

Significance and Challenges for Naval Self-Reliance :

The ability of a country to support its domestic defence industry in order to arm the military with weapons and achieve autarky or self-sufficiency is referred to as self-reliance in the defence industry. Yet, according to Hoyt, the idea of self-reliance still permits the country to bring in new military equipment or weapons from trustworthy allies primarily to close the technological gap and the capacity to produce cutting-edge and sophisticated weapons to combat contemporary threats.[5] Self-reliance in the Indian Navy is of paramount importance for several reasons such as: -

(a) **Reduced dependency on Foreign OEM** : Reduction in dependency on foreign suppliers for critical defence equipment, spare parts, and maintenance support enabling the navy to maintain operational readiness even in the face of geopolitical uncertainty or disruptions in international trade, minimising potential vulnerabilities.

(b) **Job Creation and Academia Involvement :** Stimulate the domestic defence industry, resulting in increased economic activity and job creation. Eventual increase in interest in the naval shipbuilding industry among scientists, engineers, and technicians as technology advances which will promote development of the creative segments as ancillary sectors that promote domestic shipbuilding. The envisaged growth in the industry would assist in sustainable shipbuilding capability.[6]

(c) **Growth of Domestic Industry :** To lead the nation in accelerating the expansion of other new industries in order to speed up modernization and the advancement of new technologies investment in crucial R&D in the armed forces and naval shipping industries is necessary. Domestic naval shipbuilding industry technology, such as radar, marine machinery, and ship components, can then be applied to civilian shipbuilding industries.[7]

Challenges in Achieving Self-Reliance : The path to self-reliance for the Indian Navy is strewn with various challenges as enumerated: -

(a) **Technological Gap :** Creating cutting-edge naval technologies and systems necessitates a high level of expertise and experience. Bridging the technological gap between India and advanced naval powers can be time-consuming and demanding.

(b) **Insufficient R&D Investment :** Historically, India has spent a smaller proportion of its GDP on defence than some other major economies. This has had an impact on the funds available for R&D in the defence sector. Several developed countries with advanced naval capabilities, including the United States, China, and Russia, have consistently invested heavily in defence research and development. In comparison, India's defence spending in R&D investment, has been relatively modest. It is instructive to note that the budgetary support to defence R&D activities in the first 25 years of independence was around 1 per cent of the defence budget, reaching 2 per cent in 1980, 4 per cent in 1986; and 5 per cent in 1994.[8]

(c) **Long Development Cycles :** Because of the complexity and precision required, developing advanced naval platforms and systems takes a long time. Delays may occur during the stages of research, prototyping, testing, and production.

(d) **Dependence on Imports :** Historically, India has relied heavily on imports for defence equipment, resulting in reliance on foreign suppliers. Transitioning to indigenous solutions may disrupt established supply chains and necessitate reorientation at first. "By the end of the Cold War, India was 100 per cent reliant on Soviet-era material for its ground–air defence, 75 per cent dependent on Soviet equipment for its fighter aircraft defence, 60 per cent for its ground attack aircraft, 100 per cent for its tracked armoured vehicles, 80 per cent for tanks, 100 per cent for its guided missile destroyers, 95 per cent for its conventional submarines, and 70 per centor its frigates."[9] In the period 1997–2004, India was the world's leading arms purchaser outside the advanced countries and, alone, was responsible for 10 per cent of all developing country arms transfer agreements.[10]

(e) **Quality Controls & Standards :** Strict quality control standards are essential for naval equipment because any compromise in quality can jeopardise the navy's operational readiness and safety.

(f) **Complex System Integration :** Integrating various naval systems and technologies in a seamless manner can be a difficult task. To achieve optimal performance, different components and platforms must be compatible.

(g) **Global Technologies Embargoes :** Geopolitical dynamics can shift, potentially disrupting ongoing projects by imposing technology embargoes and export restrictions on critical defence technologies.

(h) **Lack of Private Sector Involvement :** Historically, state-owned enterprises dominated India's defence industry, with private sector participation being limited. Defence Public Sector Undertakings (DPSU) are always the designated recipient in any negotiations involving the transfer of technology, even though a private sector organisation is better prepared in terms of resources and knowledge to absorb the technology.[11] Indian defence procurement procedures have been chastised for being too long, complicated, and bureaucratic. This may deter private sector companies from participating in defence projects, including the development of naval technology. Entering the defence industry necessitates significant investment, adherence to stringent quality standards, and adherence to security protocols. These high entry barriers may deter private companies from entering the defence sector. Long gestation periods and uncertain demand are common when developing naval technologies. Due to concerns about intellectual property rights, technology transfer, and all other reasons previously mentioned, private companies are hesitant to participate in defence-related projects.

Analysis of Self-reliance Route of Developed and Developing Nations

Approaches of Developed Nations

1. **US Navy Self Reliance Journey :** The self-reliance of the United States Navy has been shaped by historical experiences, technological innovations, and a commitment to maintaining maritime superiority. The nineteenth-century Industrial Revolution had a significant impact on the modern United States Navy. Shipbuilding, steam propulsion, metallurgy, and weaponry advancements enabled the United States to build more advanced and powerful naval vessels. During this time, the Navy's operational capabilities were greatly enhanced by the transition from sail to steam-powered ships. Historically, the United States has had a robust domestic shipbuilding industry. The Navy has used the capabilities of this industry to build a variety of vessels, including aircraft carriers, submarines, destroyers, cruisers, and amphibious assault ships, to name a few. The United States devotes significant resources to defence, including funding for the Navy. Adequate funding paved the way for the

development and acquisition of modern naval assets and technologies, ensuring the Navy's independence. The United States Navy has made significant investments in research and development to advance naval technologies. Innovations in propulsion systems, ship design, electronic warfare, radar systems, and missile technologies are examples of this. The Navy's commitment to cutting-edge research and development has given it a technological edge over potential adversaries and increased its self- reliance. The United States Navy places a high value on education and training. The United States Naval Academy, Naval War College, and other institutions work to develop competent and proficient naval personnel. Sailors, officers, and naval aviators who are well-trained contribute to the Navy's operational readiness and self-reliance.

2. **Japanese Naval Self Reliance Journey :** It is worth noting that Japan's efforts towards naval self-sufficiency are guided by its pacifist constitution and commitment to defensive capabilities. Following WWII, Japan's military capabilities were severely limited due to its pacifist constitution and the San Francisco Treaty's imposed restrictions. However, Japan has taken steps over the years to develop a robust and capable maritime force while maintaining a defensive posture. Following WWII, Japan emphasised on rebuilding its economy and society, and its military was initially limited to self-defence forces. The Japan Maritime Self- Defence Force (JMSDF) was created in 1954 as a maritime component of the Japan Self- Defence Forces, primarily focusing on coastal defence. The threat to America's sea lanes ended when the Soviet Union self-destructed in December 1991.[12] However, for Japan, the large PLA Navy submarine fleet kept in the minds of Japanese naval strategists their experience with cut sea lanes during WWII. As a result, the primary mission of the Japan Maritime Self-Defense Force was, and continues to be, ASW.[13] Japan has made legal and policy changes in recent years to strengthen its defence posture. The Japanese government passed new security legislation in 2015, allowing the exercise of the right to collective self-defence in certain circumstances. This has broadened Japan's military engagements, including those in maritime security. Japan has a robust domestic shipbuilding industry that has played an important role in the construction and maintenance of its naval vessels. As a result, Japan has been able to reduce its reliance on foreign acquisitions while also building a modern and capable fleet.

Approaches of Developing Nations :

1. **Chinese Navy Self Reliance Journey :** Through a combination of licensed production agreements, in-house Chinese development, and reverse engineering combat system components from France, Italy, Russia and the United Kingdom, the PLA Navy was able to become self-sufficient.[14] China is the world's leading shipbuilding nation, with increased capacity and capability for all types of military projects, including submarines, surface combatants, amphibious assets, and naval aviation. The China State Shipbuilding Corporation and Shipbuilding Industry Corporation, China's two largest state-owned ship builders, collaborate on shared ship designs and construction information to increase ship building efficiency. China now manufactures its naval gas turbines and diesel engines. The evolution of the JMSDF's thinking on how to best protect Japan's sea lanes is traced in this article, with particular attention paid to the significance of a combined force of helicopters, destroyers, and land-based maritime patrol aircraft domestically, as well as almost all shipboard weapons and electronics systems, and is nearly self-sufficient in shipbuilding, with little reliance on foreign suppliers.[15]

2. **Indonesian Naval Self Reliance Journey :** Indonesian navy known as TNI-AL (Tentara Nasional Indonesia - Angkatan Laut) has evolved over the years to meet the country's maritime security needs and protect its vast archipelagic waters. With over 17,000 islands and vast maritime territories, Indonesia is the world's largest archipelagic nation. The country's distinct geography and maritime borders pose complex security challenges, necessitating a capable and self-sufficient navy. Indonesia has prioritised the development of indigenous shipbuilding capabilities in order to reduce reliance on foreign acquisitions and increase naval self-reliance. Naval shipyards in the country, such as PT PAL Indonesia[16], have built and maintained a variety of naval vessels, including corvettes, frigates, patrol boats, and landing ships. Indonesia has made significant investments in improving its submarine capabilities. The country has acquired submarines from a variety of sources and is also involved in domestic submarine construction. Indonesia has a fleet of Type 209 submarines built in Germany and Chang Bogo-class submarines built in South Korea. In addition to the efforts of the navy, Indonesia has been strengthening its coast guard capabilities to address non-traditional maritime security challenges such as illegal fishing, smuggling, and search and rescue operations.

Indian Naval Self Reliance under Atmanirbhar Bharat (AB) Project :

India's self-reliance project, also known as the Atmanirbhar Bharat (AB) initiative, has been making progress since it was introduced in May 2020. However, the defence ministry

revealed that by the end of 2022, 3,700 items had been removed from the import list and sourced from the domestic industry under AB's Positive Indigenization List (PIL). Aside from this significant adjustment, defence indigenization has been expanded to include initiatives like Innovations for Defence Excellence (idEX), which enlists the help of start-ups, MSMEs, R&D organisations, independent business owners, and academia to foster innovation in the aerospace and defence sector. Nearly 500 crores have been set aside by the government for (idEX) between 2021 and 2026. In addition, the government has launched the Supporting Pole-vaulting in R&D through Innovations for Defence Excellence (SPRINT), which requires development of very niche technologies in the space and naval domains.[17]

The average share of expenditures for the army, navy, and air force over the ten-year period between 1996–1997 and 2005–2006 was 57 percent, 15 percent, and 24 percent, respectively. Despite being the smallest, the navy's share has been steadily rising over time. In 2007, the Indian Navy's budget increased by 10.5%, and procurement costs increased by 7%. The navy received 18 percent of the overall defence budget in 2008–09. The rate of modernization is determined by capital expenditure, and the Indian navy is ahead of the other two services in this regard because capital expenditure accounts for 52 percent of its budget.[18] India ranks third in the world for military spending, accounting for 2.15% of the country's GDP. By 2025, the Indian government hopes to generate USD 25 billion in revenue, with USD 5 billion in aerospace and defence-related exports. In Tamil Nadu and Uttar Pradesh, the government has created two defence industrial corridors. The value of defence exports for the fiscal year 2021–2022 was Rs. 12,815 crores.[19] India is close to self-reliance in a range of small arms, ammunition and medium artillery. It also license produces helicopters, combat aircraft, main battle tanks, armoured personnel carriers, tactical missiles, and frigates.[20] A Request for Information (RFI) for the construction of four Landing Platform Dock (LPD) ships by the Indian Navy has been released. The RFI has been sent to the following companies: Mazagon Dock Ltd. (MDL), Garden Reach Shipbuilders and Engineers (GRSE), Cochin Shipyard Ltd. (CSL), and Larsen and Toubro Limited (L&T Shipyard), all of which are located in Mumbai, Kolkata, and Kochi. These vessels will be the first modern Indian Naval warships to feature an Integrated Full Electric Propulsion (IFEP) System. Additionally, the Indian Navy's upcoming P75 (I) submarines and Next Generation Destroyers (NGD) projects will both have IFEP. The vast majority of "Float" equipment is also bought domestically. While the auxiliary equipment for the "Move" functionality is available from local suppliers, the propulsion and generation equipment are still provided by foreign Original Equipment Manufacturers (OEMs). The Indian Navy wants to develop its own propulsion machinery and equipment, but producing a marine

propulsion plant, such as a gas turbine or a diesel engine, requires a significant capital investment and is not deemed economically feasible. The Indian defence industry has a great opportunity to develop the electric propulsion system for these ships through the LPD project of the Indian Navy.[21] The Indian naval shipbuilding industry has grown significantly to support the development of the Indian Navy, allowing it to be a multi/extra-regional power-projection navy. In the World Naval Shipbuilding Capability Hierarchy, the industry was assigned to Group 2.[22]

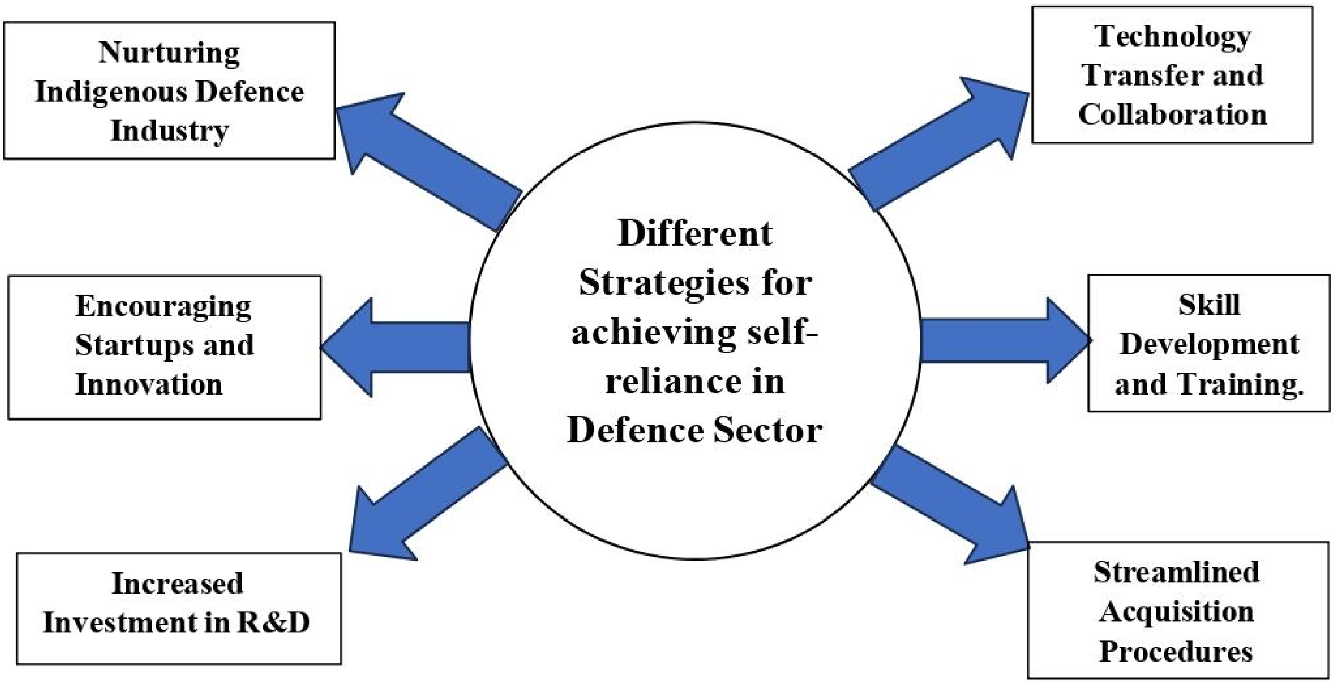

Fig 2: Strategies for a Self-Reliant Naval Force

Roadmap for India for Future Self-Reliant Naval Force by 2047 :

Assessment of Self Reliance Models for Indian Approach : Since independence, efforts have been made to increase indigenous defence capacity. Even though the Indian Navy initially incorporated ships from the Royal Navy and then the former Soviet Union, naval planners had recognised the value of indigenous shipbuilding at the same time. India has advanced significantly in indigenous shipbuilding from the first indigenous warship, INS Ajay, built at GRSE, Kolkata and delivered to the Indian Navy on 21 September 1960, to INS Vikrant, the first aircraft carrier indigenously built by Cochin Shipyard Limited and commissioned on 02 September 2022. As a "testament to the hard work, talent, influence, and commitment of 21st Century India, and a symbol of indigenous potential, indigenous resources, and indigenous skills," according to Hon. PM Modi, INS Vikrant is a testament to these qualities.[23]

Which model should India adopt after looking at developed and developing nations?

Whether to choose the US model and make significant investments in research and development or the Israeli model and focus on a particular requirement? whether to collaborate with developed nations for acquiring vessels, like Indonesia, or to develop a robust shipbuilding industry in-situ like China? India doesn't have a luxury of having an already developed robust ship building industry like developed nations, and it would be illogical to focus mainly on it to develop overnight. To answer these questions, India should adopt a hybrid model of its own as the country is at a very different stage of development and has a distinct geopolitical situation. The strategy for India should be to move on from self-reliance through diversification to a more comprehensive self-reliance through interdependence based on international collaboration.[24] Although the DRDO has carried the flag for indigenous development in defence research since its inception in 1958, a CAG report tabled in a session of parliament in December 2022 revealed "time and cost overruns in DRDO project completion, irregular closure of projects declaring them successful despite non-attainment of one or more key objectives or parameters, and taking up of new projects to realise the unachieved objectives of earlier closed projects." As a result, the DRDO cannot serve as a one-stop solution to attain Atmanirbharta in defence industry and manufacturing.[25]

Conclusion :

The journey towards self-reliance for the Indian Navy by 2047 is challenging, but we have a 25-year target which can be broken down into five-year goals and further into the goals to be achieved yearly. To achieve this target, India must overcome several obstacles, including technological gaps, limited private sector participation, and insufficient R&D investment. To overcome these challenges, a comprehensive and collaborative approach involving the government, defence industry, academia, and the armed forces is required. The path to a self-sufficient Indian Navy entails cultivating domestic defence industries not only for domestic consumption but which can compete with the world market for exporting naval technologies to other countries, promoting public-private partnerships, and encouraging innovation and indigenous R&D. This entails establishing clear policy frameworks, tempting incentives, and a favourable environment for private sector participation in naval technology development. Moreover, bolstering collaboration with international partners can facilitate knowledge transfer and access to cutting-edge technologies while preserving India's strategic autonomy. Joint ventures and technology-sharing agreements with friendly nations can help expedite the acquisition of critical naval capabilities. Investing in human capital by providing world-class education and training will be critical to developing a skilled workforce with the expertise

required for the development of naval technology. This skilled workforce will serve as the backbone of an independent Indian Navy.

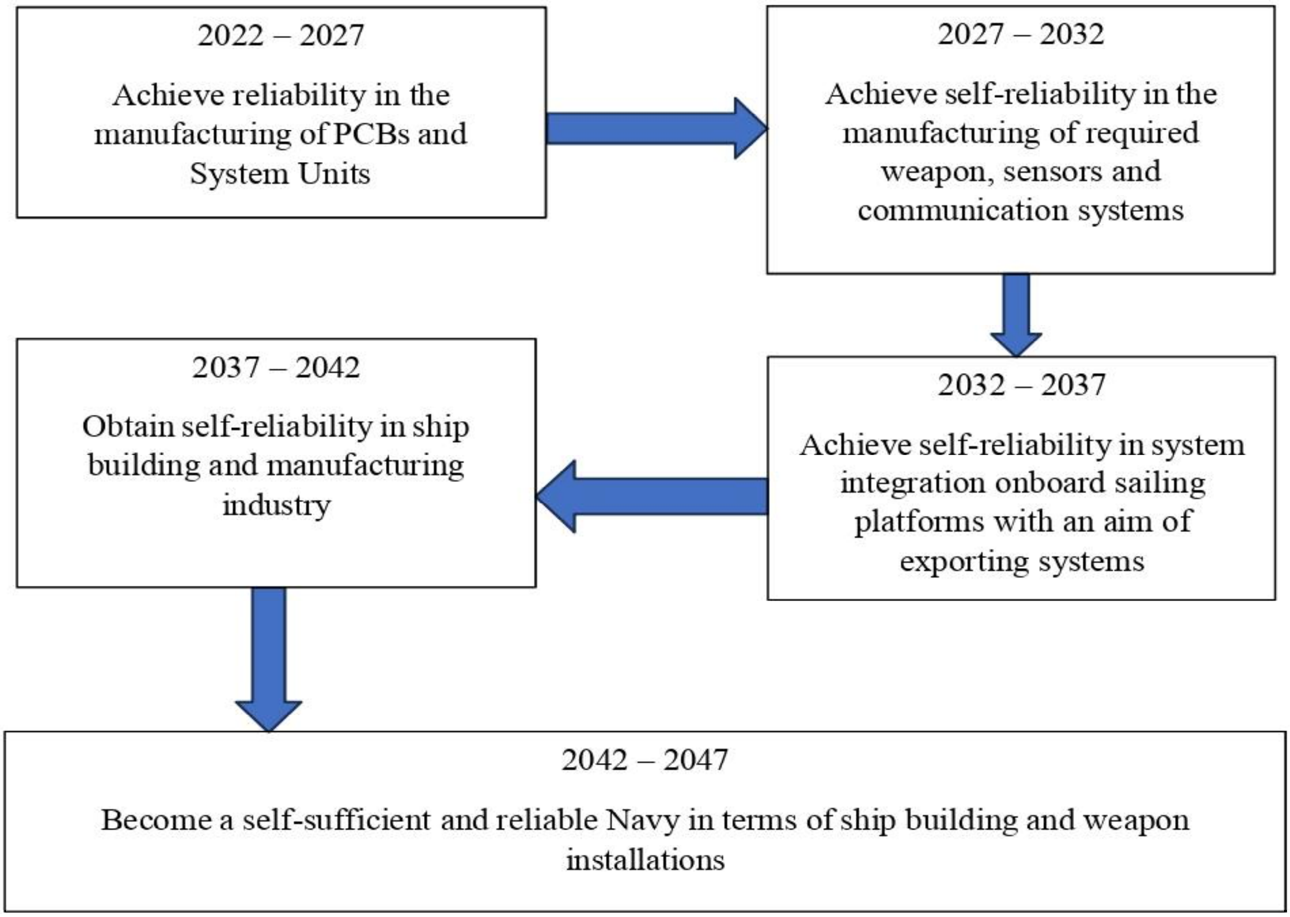

Bibliography :

Bhagwat, A., & Chitrao P.V. (2023). Indigenous Electrical Propulsion System for Indian Navy - Step towards Atmnirbharta and Low Emission. *Springer*.

Bristow, D. (1995). India's New Armament Strategy: A Return to Self-Sufficiency? (R. U. Studies, Ed.) *Whitehall Article Series*, p. 30.

Hoyt, T. (2007). *Military industry and regional defence policy: India, Iraq and Israel*. New York: Routledge.

Judt, T. (2005). *Postwar: A History of Europe since 1945*. London: Penguin Books. Maj Gen Mrinal Suman. (2014). Private Sector in Defence Production. *Indian Defence Review*.

McDevitt, M. A. (2020). *China as a Twenty-First Century Naval Power: Theory, Practice and Implications.* Naval Institue Press.

Mohanty, D. R. (2004). Changing times? India's Defence Industry in 21st Century. *Bonn: International Center for Conversion*.

Nehru, J. (n.d.). *The Discovery of India* . New Delhi: Penguin Books.

Pant, H. V. (2009). India in the Indian Ocean: Growing Mismatch between Ambitions and Capabilities. *Pacific Affairs, 82*(2), 279-297.

S, D. S. (2023). Performance of Indian Defence Public Sector Undertakings: An overview. *International Journal of Advanced Research.*

Singh, A. (1998). Self Reliance in Indian Defence, Strategic Analysis. 339-349. doi:10.1080/09700169808458815

Thomas, R. G. (1986). *Indian Security Policy.* Princeton University Press.

Todd, D., & M Lindberg. (1996). *Navies and Ship Building Industries.* Westport: Praeger Publishers.

Endnotes

[1] See Raja Ramanna, "*Science: New Frontiers and Beyond*"; U. R.Rao, "*Science and Technology*: *Impressive Strides*"; and P. V. Indiresan, "*Technology: Surmounting Cultural Hurdles*", in Hiranmay Karlekar (ed.), *Independent India: The First Fifty Years*, Delhi: Oxford University Press, 1998 for an overview of Independent India's scientific and technological progress and shortcomings

[2] Sumukhi Rathore, Dr. Shradhanvita Singh, Prof. Sanjay Kumar Jha, *ATMANIRBHAR BHARAT – AN ANALYTICAL STUDY,* JETIR May 2023, Vol 10, issue 5.

[3] Deba R. Mohanty, *Changing Times? India's Defence Industry in the 21st Century*, Article 36, Bonn: International Center for Conversion, 2004.

[4] Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation, *The Nationalist, January-February 2021.*

[5] Hoyt, T. D. (2007), *Military industry and regional defence policy: India, Iraq, and Israel*, New York: Routledge.

[6] Nackman, M. J. (2011). *A critical examination of offsets in international defense procurements.* Public Contract Law Journal, 40(2), 511–529. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/23057949.

[7] Bitzinger, R. A. (2004). Offsets and defense industrialization in Indonesia and Singapore. In J. Brauer, & J. P. Dunne, Arms trade and economic development: Theory, policy, and cases in arms trade offsets (pp. 255–270). New York: Routledge.

[8] Ajay Singh (1998) *Self□reliance in Indian defence*, Strategic Analysis, 22:3, 339-349, DOI: 10.1080/09700169808458815

[9] Damon Bristow, *India's New Armament Strategy: A Return to Self-Sufficiency*? Whitehall Article Series, London: Royal United Services Institute for Defence Studies, 1995, p. 30.

[10] Richard F. Grimmett, Conventional Arms Transfers to Developing Nations, 1997–2004, Washington DC: Congressional Research Service, The Library of Congress, 2005.

[11] Mrinal Suman (2014), *—Private Sector in Defence Production,* Indian Defence Review, 22(3), July – September

[12] Tony Judt, *Postwar: A History of Europe since 1945* (London: Penguin Books, 2005), 590-604.

[13] Yoji Koda, "A new Carrier Race?", *Naval War College Review* 64, no. 3 (summer 2011).

[14] Michael A McDevitt, China As a Twenty-First Century Naval Power: Theory, Practice and Implications, Naval Institute Press; 2020.

[15] 2018, Annual Report to Congress, 85.

[16] PT PAL is Indonesia's state-owned shipbuilding industry, which was nationalized by the Indonesian government after Indonesia gained its independent in 1945 (Kukuh, 2017).

[17] Pant, H. & Bommakanti, K., 2023. *Defence Indigenisation: Progress and Perils*, OBSERVER RESEARCH FOUNDATION.

[18] Pacific Affairs, Summer, 2009, Vol. 82, No. 2 (Summer, 2009), pp. 279-297 Published by: Pacific Affairs, University of British Columbia

[19] Dr. Suganthi S and Dr. Birundha S, *PERFORMANCE OF INDIAN DEFENCE PUBLIC SECTOR UNDERTAKINGS: AN OVERVIEW,* International Journal of Advanced Research, http://dx.doi.org/10.21474/IJAR01/16886.

[20] Angathevar Baskaran, "The Role of Offsets in Indian Defence Procurement Policy", in Jurgen Brauer and J. Paul Dunne (eds), Arms Trade and Economic Development: Theory, Policy, and Cases in Arms Trade Offsets, London: Routledge, 2004, p. 217.

[21] Alok Bhagwat, N.M., Chitrao, P.V. (2023). Indigenous Electric Propulsion System for Indian Navy.

[22] Todd, D., & Lindberg, M. (1996). Navies and shipbuilding industries. Westport, CT: Praeger Publishers.

[23] PM Narendra Modi at commissioning of INS Vikrant, 02 September 2022. https://pib.gov.in/ PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1856230

[24] Ajay Singh (1998) *Self□reliance in Indian defence*, Strategic Analysis, 22:3, 339-349, DOI: 10.1080/09700169808458815.

[25] PTI, "CAG report raises issues of 'inadequate monitoring' of mission mode projects by DRDO," The Print, 22 December 22. https://theprint.in/india/cag-report-raises-issues-of-inadequate-monitoring-of-mission-mode- projects-by-drdo/1277784/

Siddhantmishra786@gmail.com, 9987627044

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 28-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

गीतांजलि श्री के कहानियों में वस्तुपक्ष और उपन्यासों में स्त्री चेतना

सत्यप्रकाश मिश्रा
षोधार्थी, जयप्रकाष विष्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

अमूर्त :

एक जानी–मानी भारतीय लेखिका और इंटरनेशनल बुकर प्राइज विजेता (2022) गीतांजलि श्री (1957) कॉमनवेल्थ साहित्य की एक प्रमुख उपन्यासकार हैं जो अपने उपन्यासों में कई विषयों पर लिखती हैं। पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति का चित्रण कई कॉमनवेल्थ लेखकों का विषय रहा है और श्री भी इसका अपवाद नहीं हैं। उनके उपन्यास पुरुष–प्रधान समाज में लैंगिक भेदभाव, शोषण और महिलाओं के दमन जैसे मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं। यह पेपर उनके हाल ही में प्रकाशित उपन्यास 'टॉम्ब ऑफ सैंड' का नारीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करने का एक प्रयास है। यह उपन्यास एक पारिवारिक गाथा है जो दिखाती है कि कैसे इसकी महिला मुख्य पात्र अस्सी साल की उम्र में स्वार्थी हो जाती है और जीवन का अर्थ खोजने के लिए सीमा पार करती है। यह महिलाओं पर दर्द और पीड़ा के मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर भी प्रकाश डालता है। यह पेपर बताता है कि उपन्यास में महिला पात्र कैसे लैंगिक रूढ़ियों को चुनौती देती हैं और अपने तरीके से परंपराओं को तोड़ने की कोशिश करती हैं।

मुख्य शब्द : नारीवाद, भेदभाव, शोषण, दमन, पुरुष प्रधान समाज।

1. प्रस्तावना :

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जिन रचनाकारों ने स्त्री अनुभव, सामाजिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को गहरी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है, उनमें गीतांजलि श्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की ऐसी सशक्त लेखिका हैं जिनकी रचनाओं में समाज की जटिल संरचनाएँ, ऐतिहासिक बोध, पारिवारिक रिश्ते और स्त्री की आंतरिक चेतना अत्यंत सूक्ष्मता से उभरकर सामने आती हैं। उनकी कहानियों में जहाँ वस्तुपक्ष अर्थात् सामाजिक–सांस्कृतिक यथार्थ का सशक्त चित्रण मिलता है, वहीं उनके उपन्यास स्त्री चेतना के विविध आयामों को गहराई और विस्तार प्रदान करते हैं।

गीतांजलि श्री का साहित्य केवल स्त्री विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज, इतिहास और व्यक्ति के अंतर्संबंधों को एक व्यापक फलक पर रखता है। फिर भी, उनकी रचनाओं की केंद्रीय धुरी स्त्री का अनुभव, उसकी स्मृति, उसकी पीड़ा, उसकी प्रतिरोध चेतना और उसकी स्वतंत्र अस्मिता ही है। इस आलेख में गीतांजलि

श्री की कहानियों में उपस्थित वस्तुपक्ष तथा उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री चेतना का विश्लेषण किया जाएगा।[1]

गीतांजलि श्री (1957), एक बेहतरीन कहानीकार, एक भारतीय उपन्यासकार और लघुकथा लेखिका हैं जो मुख्य रूप से हिंदी में लिखती हैं। उनकी रचनाओं का अनुवाद अलग–अलग भाषाओं जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, सर्बियाई और कोरियाई में किया गया है[2]। उन्होंने पाँच उपन्यास लिखे हैं, जिनके नाम हैं माई (1993), हमारा शहर उस बरस (1998), तिरोहित (2001), खाली जगह (2010), और रेत समाधि (2018)। उनके चार उपन्यासों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है, जैसे माई (2001), दैट एम्प्टी स्पेस (2011), द रूफ बिनीथ देयर फीट (2013) और टॉम्ब ऑफ सैंड (2021)[3]। उपन्यासों के अलावा, उन्होंने कई लघुकथा संग्रह भी लिखे हैं। टॉम्ब ऑफ सैंड के प्रकाशन से उन्हें अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली क्योंकि यह उपन्यास किसी भी भारतीय भाषा का पहला उपन्यास बन गया जिसने साल 2022 में प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार जीता। उनके अधिकांश उपन्यास पारंपरिक भारतीय परिवारों पर आधारित हैं और जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव, महिलाओं का शोषण और दमन, बदलते पारिवारिक मूल्य, पहचान का संकट, आजादी की तलाश आदि जैसे मुद्दों का पता लगाते हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अक्सर देखा गया है कि महिलाओं को कमजोर और नाजुक माना जाता है। बचपन से ही उन्हें किसी न किसी पर निर्भर देखा जाता है और उन्हें कभी भी खुद को व्यक्त करने की अनुमति नहीं दी जाती है। परंपरा के नाम पर, उन पर कुछ नियम थोप दिए जाते हैं। ऐसे नियमों, असमानताओं और रूढ़ियों को चुनौती देने के लिए, अवधारणा विकसित हुई।

नारीवाद एक राजनीतिक और साहित्यिक आंदोलन है जो सभी पहलुओं में दोनों लिंगों की समानता की बात करता है, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक हो। साहित्य में, नारीवाद आम तौर पर महिला पात्रों के चित्रण और उनके पुरुष समकक्षों के साथ–साथ समाज से मिलने वाले व्यवहार से संबंधित है। महिलाओं को आम तौर पर रूढ़ियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जो घर और परिवार की देखभाल करती हैं। नारीवादी लेखक ऐसी रूढ़ियों पर सवाल उठाते हैं और मानते हैं कि ये सभी लिंग भूमिकाएँ जैविक या प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि सामाजिक हैं। यह समाज ही है जिसने निर्धारित किया है।

एक नारीवादी लेखिका के रूप में, गीतांजलि श्री अपने उपन्यासों के माध्यम से महिलाओं की छिपी हुई आवाजों को सामने लाने की कोशिश करती हैं। वह अपने उपन्यासों में मजबूत महिला पात्रों को प्रस्तुत करती हैं। उनके उपन्यासों में रूढ़िवादी और आधुनिक दोनों तरह के महिला पात्र हैं। उनके कुछ महिला पात्र एक अजीब मनोवैज्ञानिक संघर्ष से गुजरते हैं और भारतीय पितृसत्तात्मक समाज के शिकार बने रहते हैं। उदाहरण के लिए, अपने पहले नॉवेल 'माई' में, वह मुख्य किरदार माई (माँ) को महिलाओं के स्टीरियोटाइप का एक आम उदाहरण दिखाती हैं। वह खुद को घर की चार दीवारों तक सीमित रखती है, लेकिन अपनी बेटी सुनैना को कभी भी वैसी ही पारंपरिक जिंदगी जीने नहीं देती। वह अपने बेटे और बेटी के बीच कभी भेदभाव नहीं करती और उन्हें आजाद, स्वतंत्र जिंदगी जीने की आजादी देती है। यह नॉवेल एक पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की छिपी हुई मानसिक स्थितियों और संघर्षों को समझने की एक कोशिश है[4]।

2. गीतांजलि श्री का साहित्यिक व्यक्तित्व :

गीतांजलि श्री का रचनाकर्म आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता के बीच एक सेतु का कार्य करता है।

वे पारंपरिक कथा–विन्यास को तोड़ते हुए नए शिल्प और भाषा का प्रयोग करती हैं। उनकी भाषा सहज, प्रतीकात्मक और बहुअर्थी है, जिसमें स्त्री के अनुभवों की गूंज स्पष्ट सुनाई देती है[5]।

उनकी प्रमुख कृतियों में माई, हमारा शहर उस बरस, खाली जगह, रेत समाधि (अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्वउइ वैदिक के नाम से प्रसिद्ध) तथा अनेक चर्चित कहानियाँ शामिल हैं। इन रचनाओं में वे स्त्री को न तो केवल पीड़िता के रूप में प्रस्तुत करती हैं और न ही किसी आदर्शवादी प्रतिमा के रूप में, बल्कि एक जीवंत, सोचने–समझने वाली और अपने निर्णय स्वयं लेने वाली इकाई के रूप में चित्रित करती हैं।

3. गीतांजलि श्री लघु कथाएँ :

गीतांजलि श्री लेखक मूल रूप से गैर–परंपरावादी होते हैं। उनके काम की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उन्हें लगातार पारंपरिक दुनिया के नजरिए को चुनौती देनी पड़ती है और पाठक को मौलिक अभिव्यक्ति, नए रूपक, नए विचार और ताजा दृष्टिकोण देने पड़ते हैं। भारत में एक सिविल सेवक की कॉन्वेंट में पढ़ी–लिखी बेटी, गीतांजलि श्री का हिंदी में लिखने का चुनाव ही अपने आप में अपरंपरागत माना जा सकता है। विषयों के चुनाव में बेझिझक और अपनी लेखन शैली में अदम्य ऊर्जा वाली, अट्ठावन साल की श्री आज की सबसे साहसी हिंदी लेखिकाओं में से एक हैं। श्री की कहानियाँ जोर देकर उनकी नारीवादी विचारधारा और उनकी सामाजिक–राजनीतिक चेतना को सामने लाती हैं।

इस संग्रह की पहली कहानी, अनुगूंज में, कथावाचक एक गृहिणी की तुलना एक अपाहिज से करती है और यह स्पष्ट रूप से कहती है कि घर के बाहर काम करना एक महिला के मानसिक स्वास्थ्य के लिए उतना ही जरूरी है जितना कि उसकी सामाजिक और वित्तीय स्वतंत्रता के लिए। कहानी एक ठंडी मानसून की शाम को काफी शांति से शुरू होती है, जब मुख्य पात्र मुनिया बरामदे में सो जाती है और जागने पर पाती है कि उसका पति उसे प्यार से गोद में उठाकर घर के अंदर ले जा रहा है। मुनिया के दिन, उसकी प्रेम भरी शामों से बिल्कुल अलग, नीरस और अकेलेपन भरे होते हैं। ऊबी हुई मुनिया अपने पिछवाड़े से बाहर देखती है और दूसरी गृहिणियों को गपशप करते, अचार बनाते और पापड़ सुखाते देखती है और उसकी बेचौनी बढ़ जाती है। कथावाचक कहती है, 'तभी उसे अपनी लाचारी का गहरा एहसास हुआ, ठीक वैसे ही जैसे एक अपाहिज को अपनी अक्षमता का एहसास तब होता है जब वह दूसरे अपाहिज को देखता है।' श्री का लेखन अपनी सच्चाई और बेबाकी के कारण एक ऐसे विषय पर चर्चा छेड़ता है जो उत्तर–नारीवादी युग में अप्रासंगिक लग रहा है, जहाँ गृहिणी शब्द के लिए भी सुखद विकल्प मिल गए है[6]।

श्री की कई कहानियाँ कल्पना और वास्तविकता के बीच में मौजूद हैं। पीला सूरज में, एक महिला अधिकारी जो एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए जिनेवा गई है, एक शाम शहर में घूम रही होती है जब वह अचानक बारिश में फंस जाती है। उसके अतीत के पुराने भूत, बचपन की कल्पनाएँ जो वास्तविक यादों से जुड़ी हुई हैं, उस पर बरसने लगती हैं जब वह एक पेड़ के नीचे बारिश रुकने का इंतजार करती है। श्री अलौकिक कथानकों, असामान्य पात्रों और असाधारण परिवेश के साथ जबरदस्त सामाजिक संदेश देती हैं। मार्च, मा और सकुरा, गीतांजलि श्री की सबसे मशहूर कहानियों में से एक है, यह सत्तर साल की मा की आजादी की एक असाधारण कहानी है। मा, जो माँ है, अपनी जिंदगी में पहली बार अपने बेटे से मिलने जापान जाती है। अपने रहने के दौरान, मा सकुरा के फूलों से बहुत ज्यादा आकर्षित हो जाती है और बाकी टोक्यो के साथ,

उनके खिलने का बेसब्री से इंतजार करती है। जब आखिरकार वे खिलते हैं, तो वह मौसम का जश्न मनाने के लिए अपने बेटे के साथ एक पार्क में जाती है[7]। वह खुशी से भर जाती है। विदेश में अपने बेटे के घर पर अपनी सीमित रोजाना की गतिविधियों की छोटी लेकिन प्यारी डिटेल्स पर आधारित, लेखिका कहानी को आखिर में एक शानदार हाइकू जैसा मोड़ देती है, जिसमें कहानी के पहले हिस्से की सुस्त और डरपोक मा की इमेज को एक उत्साही और जिंदादिल औरत की इमेज के साथ दिखाया गया है।

मां सोचती है कि पिछले जन्म में एक छोटी लड़की के रूप में वह पार्क के सामने वाले होटल में रहती थी। उसे लगता है कि वह छोटी लड़की होटल के ऊपर के एक कमरे से उसे नीचे देख रही है और वह अपने बेटे के हिप फ्लास्क से साके का एक घूंट लेती है और सकुरा के पेड़ों के नीचे कराओके म्यूजिक पर नाचती है। श्री की लेखन में असली और काल्पनिक के बीच ये भावना जगाने वाले पल पाठक के लिए बहुत संतोषजनक होते हैं क्योंकि वे उन्हें वे ऊँचे अनुभव देते हैं जो वे फिक्शन से चाहते हैं[8]।

4. कहानियों में वस्तुपक्ष अवधारणा और स्वरूप :

साहित्य में वस्तुपक्ष का तात्पर्य रचना के उस पक्ष से है जिसमें सामाजिक यथार्थ, बाह्य परिस्थितियाँ, घटनाएँ, परिवेश और वस्तुनिष्ठ चित्रण प्रमुख होता है। गीतांजलि श्री की कहानियों में वस्तुपक्ष अत्यंत सशक्त रूप में उपस्थित है। वे समाज की रूढ़ियों, वर्गीय विभाजन, पारिवारिक संरचनाओं और सत्ता संबंधों को बिना किसी अतिरंजना के प्रस्तुत करती हैं।

- **सामाजिक यथार्थ का चित्रण :**

गीतांजलि श्री की कहानियाँ भारतीय समाज की उन सच्चाइयों को उजागर करती हैं जिन्हें प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है। स्त्री का घरेलू जीवन, उसकी आर्थिक निर्भरता, पारिवारिक अपेक्षाएँ और सामाजिक दबाव उनकी कहानियों का मुख्य विषय हैं। वे दिखाती हैं कि किस प्रकार समाज स्त्री से त्याग, सहनशीलता और मौन की अपेक्षा करता है[9]।

उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की ऊब, संबंधों की खोखलापन और नैतिक दुविधाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। यह वस्तुपक्ष पाठक को वास्तविक जीवन से सीधे जोड़ देता है।

- **ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ :**

गीतांजलि श्री केवल वर्तमान समाज तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि इतिहास और संस्कृति को भी अपनी कहानियों में शामिल करती हैं। विभाजन, विस्थापन, स्मृति और सामूहिक पीड़ा उनके कथा—संसार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इतिहास उनके लिए केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि वर्तमान को समझने का एक माध्यम है।

- **वस्तुनिष्ठता और संवेदनशीलता :**

यद्यपि उनकी कहानियों में भावनात्मक गहराई है, फिर भी वे वस्तुनिष्ठता बनाए रखती हैं। वे किसी पात्र के पक्ष में या विरोध में निर्णय नहीं सुनातीं, बल्कि परिस्थितियों को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि पाठक स्वयं निष्कर्ष तक पहुँचे। यही उनकी कहानियों के वस्तुपक्ष की सबसे बड़ी विशेषता है।

5. कहानियों में स्त्री का सामाजिक रूप :

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री प्रायः गृहस्थ जीवन से जुड़ी दिखाई देती है, परंतु वह केवल घरेलू सीमाओं में बंद नहीं है। वह समाज की असमानताओं को समझती है और कभी—कभी मौन प्रतिरोध भी करती

है। यह स्त्री बड़े विद्रोह नहीं करती, लेकिन उसके भीतर प्रश्न उठते रहते हैं।

कहानियों में स्त्री का यह रूप वस्तुपरक है—वह समाज की उपज है, उसकी परिस्थितियों से निर्मित है। इसीलिए कहानियों में स्त्री चेतना प्रायः अंतर्निहित और अप्रकट रूप में दिखाई देती है।

5. उपन्यासों में स्त्री चेतना अर्थ और विकास :

जहाँ गीतांजलि श्री की कहानियों में वस्तुपक्ष अधिक प्रबल है, वहीं उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना का विस्तृत और गहन विकास दिखाई देता है। स्त्री चेतना से आशय स्त्री के आत्मबोध, उसकी अस्मिता, उसकी स्वतंत्र सोच और सामाजिक—सांस्कृतिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा से है[10]।

- **'माई' में स्त्री चेतना :**

माई गीतांजलि श्री का अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें एक साधारण गृहिणी के जीवन के माध्यम से स्त्री चेतना को प्रस्तुत किया गया है। माई बोलती कम है, परंतु उसका मौन अत्यंत अर्थपूर्ण है। वह परिवार के लिए सब कुछ करती है, परंतु अंततः उसकी पहचान केवल एक 'माँ' या 'पत्नी' तक सीमित कर दी जाती है।

यह उपन्यास स्त्री के अदृश्य श्रम, उसकी चुप्पी और उसके भीतर छिपी पीड़ा को उजागर करता है। यहाँ स्त्री चेतना मुखर नहीं, बल्कि अंतर्निहित है, जो पाठक को भीतर तक झकझोर देती है।

- **'खाली जगह' और स्मृति की स्त्री दृष्टि :**

माली जगह में स्त्री चेतना स्मृति और रिक्तता के माध्यम से व्यक्त होती है। यह उपन्यास स्त्री के भीतर मौजूद खालीपन, संबंधों के टूटने और आत्म—संघर्ष को दर्शाता है। यहाँ स्त्री स्वयं से संवाद करती है और अपने अस्तित्व को पुनः परिभाषित करने का प्रयास करती है।

- **'रेत समाधि' में विद्रोही स्त्री चेतना :**

रेत समाधि गीतांजलि श्री के रचनाकर्म का शिखर माना जाता है। इस उपन्यास में स्त्री चेतना अपने सबसे सशक्त और विद्रोही रूप में सामने आती है। वृद्धावस्था में भी स्त्री का प्रेम, उसकी इच्छा और उसकी स्वतंत्रता का प्रश्न यहाँ केंद्र में है।

यह उपन्यास स्त्री को उम्र, समाज और राष्ट्र की सीमाओं से परे ले जाता है। यहाँ स्त्री केवल परिवार या समाज की इकाई नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्ति है जो अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेती है।

7. कहानी और उपन्यास स्त्री दृष्टि का अंतर :

गीतांजलि श्री की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री दृष्टि के प्रस्तुतीकरण में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। कहानियों में स्त्री समाज की वस्तुगत वास्तविकताओं से घिरी हुई है। उपन्यासों में स्त्री उन वास्तविकताओं से मुठभेड़ करती है और अपनी चेतना का विस्तार करती है। कहानियाँ जहाँ यथार्थ का संक्षिप्त और तीव्र चित्रण करती हैं, वहीं उपन्यास स्त्री चेतना को विकसित होने का पूरा अवसर देते हैं।

8. भाषा, शिल्प और स्त्री चेतना :

गीतांजलि श्री की भाषा स्त्री अनुभव के अनुकूल है। उनकी भाषा में कोमलता, प्रतीकात्मकता और गहराई है। वे पारंपरिक कथा—शैली को तोड़ते हुए स्मृति, स्वप्न और चेतना—प्रवाह का प्रयोग करती हैं, जो स्त्री के आंतरिक संसार को अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होता है।

9. निष्कर्ष :

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि गीतांजलि श्री की कहानियों में वस्तुपक्ष और उनके उपन्यासों में स्त्री चेतना एक–दूसरे के पूरक हैं। कहानियाँ समाज की ठोस वास्तविकताओं को सामने लाती हैं, जबकि उपन्यास उन वास्तविकताओं के भीतर स्त्री के आत्मबोध और संघर्ष को व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

गीतांजलि श्री का साहित्य स्त्री को केवल विमर्श का विषय नहीं बनाता, बल्कि उसे सोचने–समझने और निर्णय लेने वाली स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्थापित करता है। यही कारण है कि उनका रचनाकर्म समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है।

संदर्भ :

1. श्री, गीतांजलि. माई. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, नवीनतम संस्करण।
2. श्री, गीतांजलि. खाली जगह. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।
3. श्री, गीतांजलि. हमारा शहर उस बरस. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।
4. श्री, गीतांजलि. रेत समाधि. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।
5. श्री, गीतांजलि. तिरोहित. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।
6. सिंह, नामवर. कहानी नई कहानी. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।
7. दुबे, शिवकुमार. हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श. नई दिल्ली वाणी प्रकाशन।
8. पाण्डेय, रमाशंकर. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य प्रवृत्तियाँ और समस्याएँ. इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन।
9. मिश्रा, गीता. स्त्री चेतना और हिंदी उपन्यास. नई दिल्ली साहित्य अकादमी।
10. चतुर्वेदी, शंभुनाथ. समकालीन हिंदी साहित्य और स्त्री विमर्श. वाराणसी भारतीय ज्ञानपीठ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 34-40
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

तीर्थराज प्रयागराज : महाकुम्भ, महापर्व और सनातन परंपरा

लेफ्टिनेंट (डॉ.) ज्योति गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
मदनमोहन मालवीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, कालाकांकर, प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश)

शोध सार :

तीर्थराज प्रयागराज, गंगा, यमुना और पौराणिक सरस्वती के पावन संगम पर स्थित, सनातन धर्म के अनुयायियों के लिए एक अद्धितीय आध्यात्मिक केन्द्र है। यह शोध प्रयागराज मे आयोजन होने वाले महाकुम्भ महापर्व और सनातन परम्परा के बीच गहरे सम्बन्ध का विश्लेषण करता है। यह सर्वेक्षण करता है कि कैसे यह विशाल धार्मिक समागम सनातन धर्म के ऐतिहासिक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयामो को जीवन रूप मे प्रस्तुत करता है। प्रयागराज का महाकुम्भ, जिसकी जड़े प्राचीन पौराणिक कथाओ और सदियों पुरानी परम्पराओं में निहित है, मोक्ष सामूहिक आध्यात्मिक, गुरू–शिष्य परम्परा और धार्मिक ज्ञान चर्चा जैसे सनातन धर्म के मूल सिद्धातों का एक शक्तिशाली प्रदर्शन है। यह विभिन्न संप्रदायो और पृष्ठभूमियो के अनुयायियों को एक साथ लाकर धार्मिक सहिष्णुता और एकता को बढ़ावा देता है। प्रयागराज के सन्दर्भ में महाकुम्भ महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक प्रभावों पर प्रकाश डालता है जिसमें सामाजिक समरसता, आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि और आधारभूत संरचना का विकास शामिल है। हांलाकि, यह आयोजन सुरक्षा और स्वच्छता प्रबन्धन जैसी महत्वपूर्ण चुनौतियों को भी प्रस्तुत करता है। यह शोध पत्र बताता है कि प्रयागराज का महाकुम्भ महापर्व न केवल सनातन परम्परा की गौरवशाली अतीत का प्रतीत है बल्कि इसके भविष्य को भी आकार देता है। यह युवा पीढ़ी को अपनी धार्मिक जड़ो से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है और समान मूल्यों की निरंतरता को सुनिश्चित करता है जिससे प्रयागराज की पहचान एक अद्धितीय आध्यात्मिक केन्द्र के रूप में और मजबूत होती है।

मुख्य शब्द – प्रयागराज, महाकुम्भ, सनातन, परम्परा, धार्मिक प्रभाव, आध्यात्मिक केन्द्र।

प्रस्तावना :–

भारत देश एक धार्मिक व सांस्कृति परम्परावादी देश है। यहॉ पर सभी धर्मो संस्कृतियों के व्यक्तियों और भारतीय संस्कृति मे कला, संगीत, वस्तु विज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, र्धम, और विज्ञान सभी संस्कृतियो को विशेष महत्व दिया जाता है। पुराणों व शास्त्रों में प्रयागराज को सभी तीर्थो का राजा कहा गया है 'तीरथ पतिहिं आव

सब कोई' यह मान्यता ऐसे ही नहीं मिली है बल्कि इसके पिछे कई धार्मिक कथाओं निगूढ़ दर्शन छिपा हुआ है। महाकुम्भ के इस पर्व को धार्मिक ग्रन्थो और व्यक्ति के जीवन में बहुत ही पवित्र स्थान दिया गया है। यह महाकुम्भ पर्व अपने आप में एक अनुठा पर्व है यह सभी जाति धर्मो और संस्कृति के लोगों को एक ही धागे में फिरोता है। यह पर्व सब एक हो की भावना का शंखनाद करता है। वेदों और पुराणों के माध्यम से इन घटनाओं का सार देखने को मिलता है। महाकुम्भ 2025 मेले का आयोजन प्रयागराज मे किया जा रहा है। यह 13 जनवरी 2025 से 26 फरवरी 2025 तक संचालित रहेगी। इसके अन्तर्गत स्नान करने की कुछ विशेष तिथियों को निर्धारित की गयी है। इस शोध पत्र में मैं प्रयागराज में आयोजित किये जा रहे महाकुम्भ 2025 के सभी पहलुओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करूंगी।

''सुर असुर मिली मंथन कियो। सागर को बिलोय।
रत्न अनेक अनूप उपजे, कालकूट भी होय।।''

अर्थात्, सुर और असुर मिलकर सागर का मंथन किए, जिससे अनेक अनुपम रत्न उत्पन्न हुए और साथ ही कालकूट विष भी निकला।

''हरिद्वार कुम्भयोग मेषार्के कुम्भगे गुरौ।
प्रयागे मेशसंस्थेज्ये मकरस्थे दिवाकरे।।
उज्जयिन्यां च मेषार्के सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
सिंहस्थितेज्ये सिंहार्के नाषिके गौतमीतटे।।''

अर्थात्, जब कुम्भ राशि में बृहस्पति और मेष राशि में सूर्य प्रवेश करते है, तब हरिद्वार में कुम्भ योग होता है। जब मेष राशि में बृहस्पति और मकर राशि में सूर्य आते है, तो प्रयाग में कुम्भ होता है। उज्जैन में जब मेष राशि में सूर्य और सिंह राशि में बृहस्पति होते है, और नासिक में जब सिंह राशि में बृहस्पति और सिंह राशि में सूर्य होते है, तब कुम्भ हाता है।

''अमृतम् मोदये देवो, मोहिनी रूपधारिणी।
विष्णुः देवान् अमरान् करोति, महिमा अचिन्त्यतः।।''

अर्थात्, विष्णु भगवान मोहिनी रूप धारण कर देवताओं को अमृत प्राप्त कराते है।

प्रयागराज के सन्दर्भ में माँ गंगा की महिमा :

माँ गंगा मैया का प्रयागराज में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रयागराज शहर तीन पवित्र नदियों गंगा यमुना और पौराणिक सरस्वती के संगम पर स्थित है जिसके कारण इसे त्रिवेणी संगम कहा जाता है। इस पावन संगम के कारण ही प्रयागराज को 'तीर्थराज' अर्थात सभी तीर्थो का राजा भी कहा जाता है। हिन्दु धर्म मे माँ गंगा का जल सबसे पवित्र जल माना गया है। यह माना जाता है कि गंगा में स्नान मात्र से व्यक्ति के सभी पाप धुल जाते है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रयागराज माँ गंगा के तट पर कई महत्वपूर्ण मंदिर और धार्मिक स्थल स्थित है। लेटे हुए हनुमान जी का मन्दिर उनमें से एक है। इनके बारे में यह मान्यता है कि जब माँ गंगा का पानी मंन्दिर में प्रवेश करता है तो यह एक शुभ संकेत होता है। माँ गंगा प्रयागराज की संस्कृति और परम्पराओं का अभिन्न अंग है। प्रयागराज सदियों से ऋषि, मुनियों और तीर्थयात्रियों का केन्द्र रहा है। माँ गंगा प्रयागराज और इसके आसपास के क्षेत्रों के लिए जीवनदायिनी है। इनका जल पीने व किसानों के हित में और अन्य आवश्यकताओं

का स्त्रोत है। माँ गंगा मैया कि महिमा प्रयागराज के लिए आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से अद्वितीय और अपरिहार्य है। प्रयागराज न केवल गंगा के तट पर स्थित है बल्कि माँ गंगा इसकी पहचान और आत्मा में बसी हुई है।

धन्य हुआ प्रयागधाम जब पधारे प्रभू श्री राम :

मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम जब अपने पिता दशरथ की आज्ञा का पालन करने के लिए जब बिना किसी विरोध के चौदह वर्ष के वनवास को स्वीकार कर वनवास के लिए लक्ष्मण और माता सीता के साथ वन की ओर प्रस्थान करते है। और प्रयागराज जिले के गंगापार स्थित श्रंगवेरपुर धाम मे पहुंचे इसके बाद निषादराज गुह केवट से नाव मांगते है और मयार्दा का पालन करते हुए साधारण मनुष्य की तरह नदी पार करते हैं। इस प्रसंग में केवट का भगवान राम के प्रति भक्ति भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। वह गंगा के तट पर ही प्रभु के चरणो को धोने की इच्छा व्यक्त करता है जो गंगा के प्रति उसके गहरे सम्मान और श्रद्धा को दर्शाता है। गंगा का तट भक्ति और श्रद्धा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बनता है। नाव से गंगा नदी को पार कर भगवान राम, लक्ष्मण माता सीता भारद्वाज मुनि आश्रम आए और भारद्वाज मुनि के आश्रम में विश्राम किया और उनका आशिर्वाद लेकर चित्रकुट की ओर प्रस्थान कर दिये। यह घटना त्रेता युग में रामायण में मिलती है। प्रयागराज को त्रेता युग मे प्रयाग नाम से जाना जाता था। सनातन भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में महर्षि भारद्वाज का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। भारद्वाज मुनि का यह आश्रम वर्तमान में पार्क का रूप दे दिया गया है। भगवान श्री राम के पग यहॉ पड़ने से यह स्थान आस्था का केन्द्र बन गया है जो कि श्रद्धालुओं के साथ पर्यटकों को भी अपनी ओर आकर्षित करता है।

‘‘केवट कहइ तुम्हार मरमु जाना। नाथ न आजु उतरिहिं पहिचाना।।
चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत सिला तरि गई नारि सुनि। पाहन तें नठ कठिन मनु गुनि।।
जेरि पानि प्रभु कहि मुसकाई। चहिय न नाव न उतरिहिं भाई।।’’

अर्थात्, केवट ने प्रभु श्री राम से कहा मैनें आपका मर्म (भेद) जान लिया, हे नाथ आज बिना पहचाने आप उतरने नहीं पाइएगा। आपके चरण कमलों की धूल के लिए सब कहते है कि उसमें मनुष्य बनाने कि कोई जड़ी है। मैने सुना है कि आपके छूने मात्र से पत्थर की स्त्री तर गई (अहिल्या का उद्धार हुआ) पत्थर से मेरा नाव निष्ठुर और कठिन है, यह सोचकर मुझे डर लगता है। मुस्कुराते हुए प्रभु श्री राम बोले हे भाई! मुझे नाव नहीं चाहिए, मै ऐसे ही उतर जाऊँगा।

कुम्भ मेले का महत्व :

माघ मेला प्रत्येक वर्ष लगाया जाता है, अर्द्धकुम्भ छः वर्ष में लगाया जाता है। महाकुम्भ प्रत्येक बारह वर्ष मे लगाया जाता है। माघ मेला हिन्दु धर्म, संस्कृति का एक पवित्र स्नान है। यह उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले मे लगता है। माना जाता है कि इसकी शुरूआत ईसा पूर्व शताब्दी से है और यह भी माना जाता है कि यह मेला भगवान ब्रम्हा के द्वारा ब्रम्हाण्ड के निर्माण की खुशी में मनाया जाता है। माघ मेले मे लोग गंगा, यमुना, सरस्वती नदीयो में पवित्र स्नान करते है और कुछ श्रद्धालु यहॉ पूरे महिने कल्पवास भी करते है जिन्हे कल्पवासी कहते है। इस मेले मे धार्मिक परम्परा गतिविधियो के साथ–साथ धर्म व सास्कृतियों से जुड़े कार्यक्रम भी किये जाते है

लोग अपनी–अपनी कला, संस्कृतियों का इसी माध्यम से प्रचार–प्रसार भी करते है और विभिन्न कला, हस्तशिल्प, भोजन, दैनिक उपयोग में लाई जाने वाली चीजों का भी बिक्री करते है। इस मेले में किया जाने वाला दान, यज्ञ, कर्म काण्ड, स्नान को पवित्र माना जाता है। हिन्दु पचांग के अनुसार यह प्रत्येक वर्ष माघ माह (14–15 जनवरी)

इस शांत और पवित्र वातावरण में रहने से व्यक्ति तनाव और चिंता से मुक्त होता है। मनुष्य जब प्रकृति के करीब रहता है और धार्मिक गतिविधियो में शामिल होता है तो उसे मन की शांति प्राप्त होती है। श्रद्धा और उत्साह का माहौल सकारात्मक भावनाओं को बढ़ावा देती है व लोगो में खुशी, संतोष और आशावाद की भावनाएं बढ़ती है। महाकुम्भ व्यक्ति को जीवन के आपाधापी से दूर एक शांति जगह प्रदान करता है जहॉ व्यक्ति आत्मा चिंतन कर सकता है। यह उसे अपने मूल्यो व लक्ष्यो और जीवन के उद्देश्य पर विचार करने का अवसर देता है इसके कारण धार्मिक अनुष्ठानो और आध्यात्मिक गतिविधियों में भाग लेने से मन शांत होता है। और विचारो मे स्पष्टता आती है इससे व्यक्ति बेहतर निर्णय लेने और जीवन की चुनौतियों का सामना करने मे सक्षम होता है। महाकुम्भ में होने वाले चमत्कारों और अनुभवों से लोगो का आस्था और विश्वास मजबूत होता है यह उन्हे जीवन में आने वाली कठिनाईयों का सामना करने की शक्ति देता है। वर्तमान में कुछ अध्ययनो से पता चला है कि महाकुम्भ में भाग लेने वाले श्रद्धालुओं में सकारात्मक धर्मोनल परिवर्तन होते है और उनमें तनाव की कमी पायी गई है। इनमें सामूहिक जप और ध्यान मस्तिष्क में अल्फा तरंगो को सक्रिय कर सकते है जो शांति और विश्राम से जुड़ी है :

''चतुर्थ कुंभान्श्चतुर्धा ददामि।
कुंभोशधिकाल आहितस्तं।।''

महाकुम्भ 2025 का सर्वेक्षण :

प्रत्येक 12 वर्ष बाद आयोजित होने वाले इस महापर्व के विस्तृत आयोजन के दृष्टिगत स्मार्ट सिटी परियोजना के अन्तर्गत प्रयागराज में कई नई परियोजनाओ का शुभारम्भ किया जिसमे वॉल पेटिंग व सौंदयीकरण के कार्यो ने इस महाकुम्भ को भव्य स्वरूप प्रदान किया है।

''जनम-जनम के पुण्य फले।
आओ सब महाकुम्भ चले।।''

- पवित्र त्रिवेणी के संगम पर 4000 हेक्टयर मे मेला क्षेत्र को विकसित किया गया था। जो 2019 के सापेक्ष आठ सौ हेक्टेयर ज्यादा है साथ ही पूरा मेला क्षेत्र 25 सेक्टर मे विभाजित किया गया था।
- इस महाकुम्भ मे पूरा प्रयागराज सात स्तरीय सुरक्षा चक्र के घेरे मे है। इसके अन्तर्गत 10 प्रकार के सुरक्षा ऑपरेशन शुरू किये गये थे।
- इस महाकुम्भ में प्रयागराज से 22 शहरों के लिए विमाान सेवाए संचालित किया था।
- 143 से अधिक सड़कों का चौड़ीकरण एवं सुदृढ़ीकरण किया गया साथ ही साथ लगभग 80 नालो का बायोरेमिडिशन द्वारा शोधन कार्य व 9 आरओबी / फलाईओवर का भी निर्माण कराया गया।
- इस महाकुम्भ मे तीर्थयात्रियों के सुविधा के लिए चार प्रकार के रंगो के क्यूआर कोड की व्यवस्था की गई थी।
- आकस्मिक सेवाओ के लिए लाल रंग का क्यूआर।

- मेला प्रशासन के लिए हरे रंग का क्यूआर।
- आवास एव आहार के लिए नीला रंग क्यूआर।
- यूपी की उपलब्धता के लिए नारंगी रंग का क्यूआर।
- तीर्थयात्रियो के सुविधा के लिए 8887847135 वाट्सऐप नम्बर लांच किया था।
- तीर्थयात्रियो के विषेष सुविधा को देखते हुए इस महाकुम्भ में 2019 में स्थापित किये गये इंट्रीगेटेड कंट्रोल कमांड सेटर को अपग्रेड किया गया है इसके अन्तर्गत 80 वीएमडी, 2750 सीसीटीवी कैमरे, नम्बर प्लेट की पहचान के लिए 108 कैमरे, भीड़ प्रबंधन के लिए AI पे आधारित 268 वीडियो एनालिटिक्स और वाहनो की निगरानी के लिए AI आधारित 240 विडियो एनालिटिक्स की व्यवस्था की गई थी। इन CCTV कैमरो को देखने के लिए 52 सीटर चार व्यूइंग सेंटर स्थापित किए गये थे।
- इस महाकुम्भ में तीर्थ श्रद्धालुओ के सुविधाओं को देखते हुए 35 पुराने और 9 नए और पक्के घाटो का निर्माण कराये गये।
- 12 किलो मीटर क्षेत्र में फैले सभी 44 घटो पर हेलीकॉप्टर के द्वारा श्रद्धालुओ पर पुष्प वर्षा करायी।

महाकुम्भ 2025 स्वास्थ्य व्यवस्था :

- छोटे अस्पताल– महाकुम्भ 2025 मे स्वास्थ्य को लेकर अरैल और झूसी मे 25–25 बेड के दो अस्पताल और झूसी मे 20–20 बेड के आठ अन्य छोटे अस्पताल भी स्थापित किये गये है इनमें निम्नलिखित चिकित्सा सुविधाए उपलब्ध करायी गयी है।
- श्रद्धालुगण को प्राथमिक चिकित्सा और परामर्श देने की सुविधाए उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है।
- ई सी जी, अल्ट्रासाउण्ड, एक्स–रे जैसी मशीनो का उपयोग मरिजो के जॉच के लिए किया जायेगा।
- अलग–अलग जॉच के लिए प्रयोगशालाओ की व्यवस्था की गयी है।
- श्रद्धालुओं को दवाए उपलब्ध कराने के लिए फार्मेसी या स्थापित की गयी है।
- आपात कालीन में श्रद्धालुओं को अस्पताल तक ले जाने के लिए एम्बुलेन्स की व्यवस्था की गयी है।

महाकुम्भ का पर्यटन और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव :

महाकुम्भ 2025 प्रयागराज में आयोजित किया जा रहा है। पर्यटन के दृष्टिकोण से एक अन्यंत महत्वपूर्ण आयोजन है यह न केवल एक धार्मिक समागम है बल्कि यह भारत के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभा रही है। इस आयोजन से उद्योग जगत को एक बड़ा आर्थिक लाभ हुआ है। भोजन, आवास, परिवहन और स्मृति चिन्हो की बिक्री से स्थानीय अर्थव्यवस्था को बहुत बढ़ावा मिला है। देखा जाए भारी संख्या मे देश और विदेश से करोड़ो पर्यटक आए इससे प्रयागराज की पर्यटन इंडस्ट्री में भारी उछाल देखने को मिला।

प्रमुख आकड़े :

- पर्यटको की सुविधा के लिए प्रयागराज मे पुल, सड़क, आवास और अन्य बुनियादी ढ़ाचो का विकास किया गया इससे पर्यटको को आवागमन मे सुविधा मिली और यहॉ के स्थानीय लोगो को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए।

- इस महाकुम्भ ने प्रयागराज को एक महत्वपूर्ण पर्यटन स्थल के रूप मे अन्तर्राष्ट्रीय पहचान भी दिलाया है।
- उत्तर प्रदेश सरकार को पर्यटन और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रो से राजस्व मे महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है।
- इस महाकुम्भ में अलग–अलग सांस्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन किया गया जिससे देश–विदेश के पर्यटको के भारत की समृद्ध संस्कृति और परम्पराओ को जानने का अवसर प्राप्त हुआ।
- इस महाकुम्भ मे लगभग 13 लाख अस्थायी रोजगार सृजित हुए।
- यहॉ के स्थानीय व्यापारियो, कारीगरो व छोटे व्यवसायो को महाकुम्भ के दौरान अपनी वस्तुओ और सेवाओ को बेचने का एक बड़ा अवसर मिला इससे इनकी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला।
- इस महाकुम्भ ने उत्तर प्रदेश के जीडीपी में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ रिर्पोटो के अनुसार यह योगदान कई हजार करोड़ रूपये का रहा।
- महाकुम्भ मे 47 हजार सुरक्षा कर्मियो ने स्नान पर्व की कमान सम्भाली।
- 42 घाटो पर श्रद्धालुओ के लिए स्नान की सुविधा सुनिश्चित की गयी।
- लगभग 2750 हाईटेक कैमरे से हर गतिविधि पर नजर रखी गयी।
- लगभग 1.50 लाख शौचालय बनाये गये।
- इस महाकुम्भ मे बैंको ने 37 करोड़ रूपये का कारोबार किया जिसमे से SBI बैंक सबसे आगे रहा।
- खादी ग्रामोउद्योग ने लगभग 9.62 करोड़ का कारोबार किया।
- 13 जनवरी से 26 फरवरी तक लगभग 67 करोड़ श्रद्धालुओ ने त्रिवेणी संगम मे पवित्र स्नान किया। यह संख्या अमेरिका के जनसंख्या से भी अधिक था।
- इस महाकुम्भ मे 3 अमृत स्नान और 6 शाही स्नान किये गये।
- इस महाकुम्भ का अन्तिम स्नान महाशिवरात्रि को किया गया।
- यह महाकुम्भ दुनियाभर में सबसे बड़े आयोजनों में से एक था।

निष्कर्ष :

प्रयागराज में संपन्न हुआ महाकुम्भ आस्था, संस्कृति और मानव एकता का अद्भुत संगम रहा। करोड़ो श्रद्धालुओं की उपस्थिति ने इस आयोजन का न केवल भारत बल्कि विश्व के सबसे बड़े धार्मिक आयोजनों मे से एक बना दिया। इस महाकुम्भ में विभिन्न धार्मिक परम्पराओ के अनुयायियों ने पवित्र संगम मे आस्था की डुबकी लगाई, जिससे आध्यात्मिक ऊर्जा का एक अद्वितीय वातावरण निर्मित हुआ। साधु–संतो के प्रवचन, भजन–कीर्तन और सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने इस आयोजन को और भी जीवंत बना दिया। यह महाकुम्भ सामाजिक समरसता और सहिष्णुता का भी प्रतीक बना, जहॉ विभिन्न पृष्ठभूमि के लोग एक साथ शांति और सद्भावना से रहे। हालांकि, इतने बड़े पैमाने पर आयोजन करना कई चुनौतियों से भरा रहा। प्रशासन ने भीड़ प्रबन्धन, सुरक्षा व्यवस्था, स्वच्छता और स्वास्थ्य सेवाओं को सुचारू रूप से चलने के लिए अथक प्रयास किये। कुछ क्षेत्रों मे चुनौतियां आई, लेकिन सामूहिक प्रयासों से उनका समाधान निकला गया। इस महाकुम्भ से हमने सीखा कि दृढ़ इच्छाशक्ति से किसी भी बड़े लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। भविष्य में ऐसे आयोजनों को और सुव्यवस्थित एवं पर्यावरण के लिए इन अनुभवों का उपयोग किया जा सकता है। यह महाकुम्भ न केवल एक धार्मिक आयोजन

रहा बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक विविधता, आध्यात्मिक शक्ति और संगठनात्मक क्षमता का भी एक प्रदर्शन था। यह आयोजन आने वाली पीढ़ियों को आस्था, एकता और सेवा के मूल्य से प्रेरित करता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 अंकिता वर्मा, कुम्भ मेला : एक विस्तृत अध्ययन. (2023) प्रयागराज विश्वविद्यालय।
2. डॉ0 रवि प्रकाश. प्रयाग के कुम्भ मे धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम (2022) नालंदा। एकावली श्रीवास्तव, कुम्भ मेला : द लार्जेस्ट पीसफुल गैदरिंग ऑन अर्थ, रूपा पब्लिकेशन्स इंडिया, नई दिल्ली।
3. वेदव्यास, वायु पुराण, पृष्ठ (II. 15.47)
4. महर्षि वेदव्यास, अथर्ववेद, (?, 34.7; ?? 53.3)
5. महर्षि वेदव्यास, यजुर्वेद, (19,87)
6. महर्षि वेदव्यास, ऋग्वेद (?, 8, 9,?.89,7,?.3.23)
7. योगी आदित्यनाथ, दिव्य–भव्य–डिजिटल महाकुम्भ प्रयागराज।
8. सुरेन्द्र नाथ सेन, Eighteen Fifty. Seven. पब्लिकेशंस डिवीजन, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार। रामचन्द्र गुहा, इंडियाआफटर गांधी, पिकडोर, लन्दन।
9. डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, राजपाल एंडसंस, दिल्ली।
10. अमर उजाला समाचार पत्र 12 जनवरी 2025।
11. दैनिक जागरण समाचार पत्र 13 जनवरी 2025।
12. हिन्दुस्तान समाचार पत्र 14 जनवरी 2025।
13. अमर उजाला समाचार पत्र 29 जनवरी 2025।
14. अमर उजाला समाचार पत्र 3 फरवरी 2025।
15. दैनिक जागरण समाचार पत्र 12 फरवरी 2025।
16. हिन्दुस्तान समाचार पत्र 26 फरवरी 2025।
17. Government of india (2021) official Report. Ministry of Culture, Gove. of India.
18. https://www.kumbh.gov.in
19. https//ich.unesco.org

मोबाइल न0 9118822682

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 41-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

समकालीन कहानियों में वृद्ध विमर्श

डॉ. लक्ष्मी देवी
असिस्टेंट प्रोफेसर
माता सुन्दरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

वर्तमान समय में हमें कई तरह की समस्याएं देखने को मिलती हैं, जैसे स्त्री समस्या, दलित की समस्या, आदिवासी समाज का दर्द, किसानी समस्या इत्यादि। इन समस्याओं के प्रति समाज को जागरूक करने का प्रयास कथाकार सदैव ही अपनी कथा के माध्यम से करते आ रहा हैं जिन्हें विभिन्न विमर्शों का नाम दिया गया है, जैसे – स्त्री विमर्श, दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श, किसान–विमर्श इत्यादि। इन विमर्शों ने जहाँ समाज की सोच का दायरा बढ़ाया है वहीं दूसरी तरफ ये दबा कुचला वर्ग भी अब उभर कर सामने आता नजर आ रहा है, एवं समाज के विकास में अपना योगदान भी दे रहा है जिससे उसकी वर्तमान स्थिति मजबूत हुई है। स्त्रियाँ जहाँ मुखर हो अपनी बात कह रहीं हैं वहीं किसान और दलित भी अपनी स्थिति को ऊपर उठाता दिख रहा है। यही कारण है कि वर्तमान में कुछ नई समस्याओं की ओर भी साहित्यकारों ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है जैसे किन्नर समाज की समस्याएं तथा समाज में वृद्धों की बिगड़ती स्थिति। इन समस्याओं से सम्बंधित विमर्श को भी किन्नर विमर्श तथा वृद्ध– विमर्श का नाम दिया गया है।

हमारा समाज संयुक्त परिवार की सोच को लेकर चला आ रहा है। जिनमें परिवार के बुजुर्गों के लिए सम्मान का भाव देखने को मिलता है, उनकी बात को पत्थर की लकीर मानकर पूरा करने का भाव था, यह बुजुर्ग भी अपने अनुभव के आधार पर परिवार की हर समस्याओं का समाधान करते दिखाई दे रहे थे। यही कारण है कि ऐसे परिवारों में टूटन की स्थिति बहुत कम दिखाई देतीं थी, परिवार के प्रति भी प्रेम, निष्ठा, सहयोग, सभी चीजें परिवार की पहचान थी। परन्तु यह भाव अब धीरे–धीरे समाप्त प्रायः है। बुजुर्ग जो हमारे समाज के महत्वपूर्ण इकाई है, जिन्होंने अपना पूरा जीवन ही परिवार के लिए, परिवार की खुशियों के लिए खर्च कर दिया। नई पीढ़ी जनरेशन का अंतर बताकर उनकी बात को नकार उनकी अवहेलना कर रहे हैं। उनके जीवनानुभवों का, विचारधाराओं का, उनके विश्वास का जब अनादर होने लगा तो परिवार की यही सबसे महत्वपूर्ण कड़ी स्वयं को असहाय महसूस करते हुए इस समाज की व्यर्थ इकाई समझने लगते हैं।

हिंदी कहानियों में प्रेमचंद जी 'बूढ़ी काकी', भीष्म साहनी जी की 'चीफ की दावत', उषा प्रियवंदा की 'वापसी', हरी भटनागर की 'मेज कुर्सी तख्ता टांट', उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का कंगन' शरद सिंह की 'बंद घड़ी', मृणाल पांडे जी की 'धूप छांव' आदि कहानियों में वृद्धों के जीवन की समस्याओं को कहानिकारों ने बड़ी ही सटीकता के साथ उठाते हुए पाठकों के मन को झकझोरा है।

रिश्ते स्वार्थ की पूर्ति के पश्चात किस प्रकार बदल जाते हैं, रिश्तों के इसी घृणित सत्य को प्रस्तुत करने वाली सबसे मुख्य कहानी के रूप में प्रेमचंद जी की 'बूढ़ी काकी' को रखा जा सकता है। जिस बूढ़ी काकी ने अपनी सारी जमीन जायदाद ही अपने भतीजे के नाम कर दी ये सोचकर कि अब यही मेरा सब कुछ है तो वह मेरा ख्याल तो रखेगा ही, लेकिन सम्पत्ति मिलते ही भतीजा और उसकी पत्नी एकदम ही बदल जाते हैं। जिस काकी की संपत्ति से उनकी अच्छी खासी आए होती है, उसी काकी को दो वक्त का खाना भी मुश्किल से देते हैं। ऐसे रिश्तों से सम्मान की इच्छा तो व्यर्थ ही है – 'भतीजे ने संपत्ति लिखते समय तो खूब लंबे चौड़े वादे किए, परंतु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दिखाए सब्जबाग थे। यद्यपि उस संपत्ति की आय डेढ़ दो सो रूपए से कम नहीं थी, तथापि बुढ़ी काकी को भर पेट भोजन भी कठिनाई से मिलता था'।[1] यहाँ तक कि बुद्धिराम अपने लड़के मुखराम के तिलक के समय जो पकवान बनाया था वह भी उन्हें नहीं दिया गया बल्कि दण्ड स्वरुप उन्हें कोठरी में ढकेल दिया गया। अंत में जब रूपा ने उन्हें झूठे पत्तल में खाते हुए देखा तब जाकर उसे अपने किये का पछतावा हुआ एवं उन्हें पकवान लाकर दिया।

भीष्म साहनी जी की 'चीफ की दावत' एक ऐसी कहानी है, जो वैचारिक रूप से प्रगतिशील है, जो मध्यवर्गीय समाज के लोगों के स्वार्थ को रेखांकित करती हुई कहानी है। शामनाथ ठेठ मध्यवर्गीय पात्र है वह अत्याधिक स्वार्थी एवं अवसरवादी प्रवृत्ति का है जिसकी नजर अपने प्रमोशन पर है, जिसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है, चाहे मां को परेशान करना ही क्यों ना हो। यह पूरी कहानी न तो चीफ की दावत पर केंद्रित है न की शामनाथ और उन जैसे देसी अफसरों या उनकी स्त्रियों पर। इस कहानी के केंद्र में मां है, बूढ़ी मां जो अपने पुराने संस्कारों से, रीति रिवाजों से अभी तक बंधी हुई है। जबकि बेटा शामनाथ अपने प्रमोशन के लिए मां के दिए हुए संस्कारो के साथ–साथ मां की उपस्थिति भी त्यागता हुआ दिखाई देता है। लेकिन मध्यवर्गीय परिवारों में संस्कार एक व्यक्ति के त्यागने और उसके कहने मात्र से समाप्त नहीं हुआ करते, वे बने रहते हैं, जैसे घरों में मां बनी रहती है। शामनाथ जी मेहमानों की तैयारी के साथ इसी चिंता में दिखाई देते हैं – कि बूढ़ी मां की उपस्थिति उनके आधुनिक रहन सहन में बाधा उत्पन्न कर रही है आधुनिकता की चाह में प्रदर्शनप्रिय शामनाथ 'माँ' को चीफ की दावत के समय प्रदर्शन के योग्य वास्तु नहीं बल्कि कूड़े की तरह कही छिपाने की वस्तु समझते हुए वे सोचते हैं –'मां का क्या किया जाए'[2] जैसे मां, मां नहीं कोई फालतू सामान है, जबकि मां की चिंता भी यही है कि वह घर के किसी आयोजन में बाधा न बने। यहां बेटे की चिंता स्वार्थी हैं, जबकि मां की चिंता बेटे के लिए उनका प्यार है।

बेटे के व्यवहार से आहत मां के चरित्र का वर्णन साहनी जी ने इस प्रकार किया है – "जब मेहमान बैठ गए और मां पर से सबकी आंखें हट गई तो मां धीरे से कुर्सी पर से उठी, और सब से नजरें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गई। मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आंखों से छल–छल आंसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार दृ बार उन्हें पोंछती, पर वह बार–बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बान्ध तोड़कर उमड़ आयें हों। मां ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम भी लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार–बार आंखें बंद की, मगर बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।"[3]

1960 में प्रकाशित 'वापसी' उषा प्रियवंदा जी की सबसे चर्चित कहानी है। यह कहानी भी मध्यवर्गीय परिवार की मनोदशा को दर्शाती हुई मानव जीवन की वास्तविकता की कहानी है, जिसमें लेखिका ने गजाधर बाबू

के माध्यम से किया है रिटायरमेंट के बाद गजाधर बाबू (पिता) जब ढेर सारी उम्मीदों के साथ घर आते हैं, उन उम्मीदों के टूटन का वर्णन बड़ी ही मार्मिकता के साथ किया है। जो पिता अपना घर चलाने के लिए लगभग पूरी उम्र ही परिवार से दूर रहकर नौकरी करने में गुजार देता है। वही पिता जब रिटायरमेंट के बाद घर आते हैं तो उन्हें यह अहसास होने लगता है कि अब उनकी अपने ही घर में अहमियत समाप्त प्राय हो गई है। नौकरी के दौरान देखें गये सपने कि सेवानिवृत्त के पश्चात् जब घर जायेंगे तो पत्नी, बच्चों से भरे पूरे परिवार में आनंद सहित बाकी उम्र गुजार देंगे। कहानीकार के शब्दों – 'गजाधर बाबू बहुत खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के पश्चात् वह रिटायर होकर वापस जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर कांटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे।"[4]

पर अब अपने ही घर में उनके लिए उन्हें कोई स्थान नहीं दिखाई दे रहा। परिवार के साथ खुशी–खुशी रहने का गजाधर बाबू का सपना अपने पुत्र–पुत्री से लेकर पत्नी तक ने तोड़ दिया। अब उन्हें धीरे–धीरे यह अनुभव होने लगा कि उनके प्रति परिवार के लोगों में स्नेह और आदर का भाव न के बराबर रह गया है। उनके आने से उनके घर का माहोल भी बदल सा गया है। पत्नी में जिस समर्पण के भाव की चाहत दिल में थी, वो उन्हें कहीं दिखाई नहीं दे रही। यहां हम यह देख सकते हैं कि मां अपने पुत्र–पुत्री के साथ पिछले कई वर्षों से रह रही थी, वह भी अपने पति से दूर होती दिखाई देती है, उसे भी अब अपने पुत्र, पुत्री, बहु आदि के बारे में सोचते दिखाया गया है। साथ ही बच्चों के मन में भी पिता और उनकी भावनाओं के प्रति कोई लगाव दिखाई नहीं देता। यहां हम देखते हैं कि पिता जब तक आय का स्रोत थे, तब तक परिवार जनों के मन में उनके लिए श्रद्धा का भाव, भक्ति की भावना थी परन्तु सेवानिवृत्त के पश्चात् वे घर के सभी सदस्यों के लिए अनावश्यक वस्तु बन जाते हैं, जिसकी अब जरूरत नहीं रही।

अन्त में घर की उपेक्षाओं से तंग आकर गजाधर बाबू वापस नौकरी करने के लिए चले जाते है तो पत्नी के अन्तिम वाक्य पाठकों को और भी आहत कर जाते हैं – 'अरे नरेंद्र ! बाबूजी की चारपाई कमरे से बाहर निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं।'[5]

इस सन्दर्भ में सीमोन द वोउवार का कथन दृष्टव्य है – 'समाज में जब तक व्यक्ति का योगदान रहेगा, तब तक वह समाज का अभिन्न अंग बना रहा और जैसे ही बूढ़ा हो गया, वह समाज से कट गया और केवल 'एक वस्तु' बन कर रह गया। ऐसी वस्तु जिसका न कोई मोल है न किसी के काम का है और न ही कुछ पैदा करने योग्य।'[6]

'मेज, कुर्सी, तख्ता, टांट भी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें नई पीढ़ी ने तो पुरानी पीढ़ी को वस्तु से भी निचला दर्जा दे दिया, उसकी संज्ञा कबाड़ तक से कर दी गई है। कहानी में बेटा जलील बिना किसी हया के अपनी प्रेमिका को अपनी कोठरी में लाता है, उसके साथ संबंध बनाता है। कोठरी से निकलते समय जब लड़की की नजर पास ही पड़े पिता बूढ़े खलील पर पड़ती है तो उसकी चीख निकल पड़ती है शायद उसके अन्दर अभी भी कुछ हया बाकी थी किन्तु जलील बड़ी ही बेशर्मी के साथ कहता है – 'कहां क्या है रे ? कुछ तो नहीं मेज, कुर्सी, तख्ता, टाट ही तो है यहां, वह भी कबाड़ का'।[7]

इस कहानी में एक बूढ़ा पिता व्यक्ति न रहकर टाट ही बन जाता है, उसकी उपस्थिति ही नकार दी जाती

है वो भी बड़ी ही बेशर्मी के साथ। कहां तो भारतीय संस्कृति में 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' की भावना को लेकर कहानियों की भावना देखने को मिलती थी, और बदलती भारतीय संस्कृति की कहानियों में ये भावना बदलती दिख रही है। अब कहानियों में भी माता पिता के लिए आदर और सम्मान का भाव कम होता जा रहा है। मैत्रयी पुष्पा की कहानी अपना–अपना आकाश में इसी प्रकार का चित्रण हुआ है – 'पुराने जमाने में जो सांसारिक समृद्धि और सुरक्षा हेतु रहता था, जिसके संरक्षण की आशा वृद्धावस्था में पिता और माता का सबसे बड़ा संबल होता था, वही पुत्र आज के युग में अपने मां बाप को वर्तमान परिवेश में अनफिट पाता है।'[8]

कहानीकार शरद सिंह की कहानी 'बंद घड़ी' भी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें एक ऐसी वृद्धा को दिखाया गया है जिसके होने को तो चार बेटे हैं, चारों ही शहर में रहते हैं, कमाते खाते हैं परन्तु किसी के पास भी मां के लिए समय नहीं है। मां गांव में अकेली रहती है। जब बूढ़ी मां बिमार पड़ जाती है तो रह रहकर उसे बार–बार यही विचार उमड़ आता है कि वह बेटे के पास ईलाज करवाने के लिए चली जाए या फिर कोई बेटा ही उनके पास आकर उनकी सेवा करे लेकिन कोई भी नहीं आता मां सिर्फ इंतजार करती ही रह जाती है। 'उस समय भी अम्मा को लगा कि मेरी बिमारी के बारे में सुनकर मेरे बेटे दोड़े चले आयेंगे। अम्मा ने अपने पड़ोस में रहने वाले हरकिशन से अपने चारों बेटों के नाम पत्र भी डलवा दिये। हरकिशन और उनकी पत्नी ने ही अम्मा की सेवा ठीक ठाक से की लेकिन उनका एक भी बेटा उनके पास नहीं आया।'[9]

यहां चारों बेटों के कठोर ह्रदय को दिखाया गया है, जो मां के द्वारा दिए गए प्यार, बलिदान, सब को भुला बैठें हैं, झूठे भी या यूं कहे दिखावे के लिए भी कोई मां के पास नहीं आया। ये हमारे समाज एवं नई पीढ़ी की गिरती हुई मानसिकता को ही दर्शाता है।

परिवार में वृद्धों का उपेक्षित रह जाना अब सामान्य सी बात हो गई है। बच्चे अपने बूढ़े मां बाप को अधिकांशतः अपने फायदे के लिए ही अपने साथ रखते हैं। क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी मृत्यु के पश्चात वह अपनी सारी जायदाद कही किसी और को न दे दें। और जहां संपत्ति नहीं होती या जीते जी मां बाप अपनी सारी सम्पत्ति बच्चों को दें देते हैं तो बच्चे उनकी मृत्यु से पूर्व ही उन्हें बेसहारा, लाचार, बेबस छोड़ते हुए दिखाई देते हैं क्योंकि जो उन्हें चाहत थी वो तो पूरी हो गई होती है। कभी–कभी तो ये देखने में आता है कि जीते जी ही वृद्ध माता–पिता को मौत से बदतर हालात में रखकर छोड़ दिया जाता है जैसे 'छप्पन तोले की करधन' कहानी में दिखाया गया है। अंतिम समय तक बच्चे करधन पाने के लिए अपनी बूढ़ी मां से झगड़ते हुए दिखते हैं। करधन के लिए बूढ़ी मां को एक अंधेरे कमरे में बंद कर दिया जाता है। जिन्हें बीच बीच में जाकर देखा जाता था कि मां जिंदा है या मर गई। जब यह बूढ़ी मां मर रही थी तब भी बहु सेवा करने की बजाए बड़ी ही बेशर्मी से कहती है – 'यही सही बख्त है बुढ़िया बता दें, वरना पता नहीं कब छोड़ कर चल बसे।'[10]

इस कहानी के द्वारा लेखक ने वर्तमान समाज, पीढ़ी के बदलती हुई सोच, गिरती मानसिकता, प्रेम का अभाव दिखाने का प्रयत्न किया है।

निष्कर्षः इन तमाम समकालीन कहानियों को लिखकर लेखकों ने वर्तमान समाज के युवाओं को आगाह करने का प्रयत्न भी किया है कि यदि अभी भी हम नहीं सुधरे तो भविष्य और भी विकट होते जाएगा। जो हम अपने बुजुर्गों के साथ कर रहें हैं वहीं हमारे बच्चे भी हमारे साथ करेंगे, शायद इससे भी ज्यादा और हम भी उन्हें कुछ कह नहीं पायेंगे क्योंकि उन्हें ऐसी शिक्षा देने वाले भी तो हम ही है। ये बहुत ही चिन्ता का विषय है जिसे

हमें समझना होगा और वक्त रहते ही स्वयं और अपने परिवार के सभी सदस्यों को भी समझाना होगा अपने और अपनी भावी पीढ़ी के लिए, समाज के लिए।

संदर्भ :

1. प्रेमचंद : बूढ़ी काकी, प्रतिनिधि कहानियां, प्रकाशन, पृष्ठ 3–4
2. डॉ. विवेक शंकर (संपा.) 21 हिंदी कहानियां, आस्था प्रकाशन, पृष्ठ –193
3. डॉ. विवेक शंकर (संपा.) 21 हिंदी कहानियां, आस्था प्रकाशन, पृष्ठ –198
4. उषा प्रियवंदा – वापसी, प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 13
5. उषा प्रियवंदा – वापसी, प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 20
6. डॉ. एस वाय होनगेकर (संपा.) – 21वी शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, एबीएस पब्लिकेशन, वाराणसी, 2018, पृष्ठ– 306
7. प्रियदर्शन (संपा.) बड़े बुजुर्ग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 104
8. मैत्रयी पुष्पा : अपना अपना आकाश, प्रतिनिधि कहानियां, जयभारती प्रकाशन, पृष्ठ 132
9. शरद सिंह : बंद घड़ी, समय प्रकाशन, मेरठ, 2009, पृष्ठ 48
10. उदय प्रकाश : छप्पन तोले की करधन, तिरिछ तथा अन्य कहानियां, प्रभात प्रकाशन, 1986, पृष्ठ 30

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 46-53

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

आधुनिक परिवार–प्रणाली का विकासात्मक स्वरूप एवं हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

रितु दत्ता, शोधार्थी
डॉ. पूजा धमीजा, शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

भूमिका :

आधुनिक युग की सीमा और अवधि बड़ी विवादास्पद है, क्योंकि आधुनिकता का अर्थ सदैव काल–सापेक्ष दृष्टि से ग्रहण किया जाता है। सुविधा के लिए, अपने रूढ़ अर्थों में, इस आधुनिक काल का आविर्भाव 19वीं शताब्दी के आरम्भ से माना जाता रहा है। इस समय तक भारतीय समाज में अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन घटित हो चुके थे, जिनके परिणामस्वरूप भारतीय जन–जीवन का एक नितान्त नया रूप धीरे–धीरे प्रकट हो रहा था। अंग्रेजों के आगमन के कारण भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव दिनों–दिन बढ़ता जा रहा था। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के कारण विदेशी राजनीति, अर्थ–व्यवस्था, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अन्य जीवन–प्रणालियों से हमारा जन–सामान्य ज्ञात–अज्ञात रूप से प्रभावित हो रहा था। इस अन्तर्वाह्य प्रभाव के कारण भारत में राष्ट्रव्यापी सुधार आन्दोलन आरम्भ हुआ, जिसने साक्षरता के प्रसार के लिए भरसक प्रयत्न किए, साथ ही मध्ययुगीन सामन्ती संस्कारों से मुक्ति दिलाने की चेष्टा की।

इस कालावधि में भारतीय जन–जीवन में राष्ट्रीयता, संस्कृति और सामाजिक गतिविधियों में आमूल–चूल परिवर्तन करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। तत्कालीन परिस्थितियों ने देश को आर्थिक समुन्नति, औद्योगीकरण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा शैक्षिक जागृति की ओर प्रेरित किया। इसी के परिणामस्वरूप सती–प्रथा, बाल–विवाह, धार्मिक कट्टरता तथा अन्य अन्ध–रूढ़ियों का उन्मूलन करने के लिए अभियान आरंभ हुए। भारतीय समाज में नारी के प्रति जो अमानुषिक तथा नृशंस व्यवहार किया जा रहा था, उसके प्रति इन्हीं दिनों सक्रिय असन्तोष व्यक्त किया गया। नारी का पुनरुद्धार करने के लिए विधवा–विवाह, नारी–शिक्षा तथा नारी की आत्मनिर्भरता को प्रेरणा दी गई। इन सब कारणों से समाज का स्वरूप ही बदल गया, जो आज तक परिवर्तमान है।

आधुनिक काल में विवाह संस्था, दाम्पत्य जीवन, नारी–जीवन, संयुक्त परिवार–प्रथा एवं अन्य जीवन–प्रणालियों के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं और दिनों–दिन अपेक्षाकृत अधिकाधिक वेग से होते जा रहे हैं। विशेष रूप से दाम्पत्य, नारी और विवाह की स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आया है।

19वीं शताब्दी तक नारी की उत्तरोत्तर गिरती हुई स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी।

प्राणिविज्ञान की दृष्टि से ही स्त्री–पुरुष में असमानता नहीं थी, बल्कि सामाजिक एवं कानूनी दृष्टि से भी अत्यधिक असमानता थी। हिन्दू समाज में सतीत्व का एकांगी दृष्टिकोण अच्छी तरह से पनप चुका था। नारी केवल एक ही विवाह कर सकती थी, किन्तु पुरुषों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। महात्मा गांधी के अनुसार, "स्वेच्छित वैधव्य हिन्दुत्व का अमूल्य वरदान है तथा बाधित वैधव्य एक कलंक है।"

चतुरसेन शास्त्री ने 'गोली' उपन्यास में विधवा का ऐसा ही दयनीय चित्र प्रस्तुत करते हुए कहा है, "विधवाएँ न किसी विवाह समारोह में भाग ले सकती थीं, न सुहागिनों के साथ हँस–बोल सकती थीं, न अच्छा पहन सकती थीं। वे तो सदा विषाद की मूर्ति बनी घर में बैठी रहती थीं। स्वाभाविक था कि अपनी भाभियों और ननदों को हँसते–बोलते और सज–धज कर रहते देख वे कुढ़तीं, कलह करतीं और रोतीं। इस प्रकार जिस घर में एकाध विधवा रहती, वह घर कलह, शोक और अशांति का अड्डा बन जाता था। फिर संयुक्त परिवार–प्रथा! कहीं–कहीं तो तीन–चार या इससे भी अधिक विधवाएं एक ही घर में आ जुटती थीं। उनका जीवन में, गृहस्थी में, समाज में कोई उपयोग नहीं था। वे सामाजिक जीवन की एक उलझन और मुसीबत बनी रहती थीं।" विधवा के प्रति निराला जी की पूर्ण सहानुभूति है, वे उसके दीन जीवन को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, "विधवा कितनी असहाय और अनावश्यक इस संसार के लिए है। क्या विधवा जैसी दुखी विधाता की दूसरी सृष्टि होगी, जो सखियों में भी खुले प्राणों से बातचीत नहीं कर सकती, भोग–सुख वाले संसार के बीच में रहकर भी भोग–सुख से विरत रहना पड़ता है, घास के रहते जिसे अकाल तक दृष्टि–हीन होकर रहना पड़ता है।" इस युग में नैतिक भूलें पुरुष के लिए तो क्षम्य थीं, किन्तु स्त्री के लिए सामाजिक दण्ड का विधान था। उसे समाज से बहिष्कृत करके घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। फलस्वरूप वह आत्म–हत्या करती या वेश्या बनने को विवश होती थी।

20वीं शताब्दी के आरम्भ में भी सतीत्व के एकांगी आदर्श के अन्तर्गत पत्नी को पति के चरणों की पूजा करनी होती थी। पति चाहे अपनी पत्नी को ठुकराए, अपमानित करे, एक पत्नी के रहते हुए अन्य किसी सुन्दर कन्या से विवाह कर ले या किसी को घर में रख ले, पर उस पर नैतिक नियमों का कोई बन्धन नहीं था। अमृतराय भारतीय नारी की इस दयनीय स्थिति पर अपने 'बीज' उपन्यास में कहते हैं, "यह भारतीय स्त्री भी क्या अजीब जन्तु है। जिस जाहिल आदमी ने इसकी जिन्दगी धूल में मिला दी है, उसकी माला जपती बैठी है और उसकी शान' के खिलाफ एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं। जिस घर में उसके लिए कोई जगह नहीं है उसमें बराबर घुसने की कोशिश करती है। 'सभ्य' तरीके से दुत्कारी जाती है, मगर फिर–फिर वहीं पहुँचती है। स्वाभिमान भी तो कोई चीज है, लेकिन यहाँ तो वह भी गायब है।"

पुरुष अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण घर की सुन्दर पत्नी को 'घर की मुर्गी दाल बराबर' समझकर वेश्या–गमन किया करते थे। पत्नी को नैतिक नियमों से बाँधने वाले सामाजिक एवं नैतिक कानून पुरुष को नहीं बाँध पाए। फलस्वरूप पति द्वारा पत्नी पर अत्याचार होता रहा। वह बेचारी पति के वेश्यागमन को अपनी कोठरी में पड़ी हुई, सिसकती हुई चुपचाप सहन करती थी। 'बीज' उपन्यास में पत्नी की ऐसी ही दयनीय स्थिति प्रस्तुत की गई है, "व्याहता कहीं किसी कोठरी में पड़ी सिसकती रहती है और मर्द का बच्चा किसी रुपये, दो रुपये, चार रुपये, दस रुपये, पचास रुपये, पाँच सौ रुपये वाली रंडी–वेश्या को लिए मौज उड़ाता रहता है। स्त्री दासी, पुरुष राजा है और स्त्री बाँदी, पुरुष हीरा है और स्त्री धूल।" नागर जी के अनुसार "हिन्दुस्तान का घर औरतों के लिए कसाईखाना है।"

नारी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अपने परिवार तक ही सीमित रह जाता था, उसे अपने आत्मिक विकास का अवसर तक नहीं दिया जाता था। समाज में स्त्री–पुरुष में पूर्ण रूप से असमानता थी। गांधीजी ने इस असमानता को लक्ष्य करते हुए कहा था "अक्सर स्त्रियों का बहुत सा समय आवश्यक घरेलू कार्यों में नहीं, बल्कि अपने–अपने पति के अहंपूर्ण सुख की तृप्ति में ही बीतता है। मेरे विचार से स्त्रियों की यह गुलामी हमारी असभ्यता का चिह्न है। मेरी राय में भोजनालय की भी गुलामी विशेषतः हमारी असभ्यता का अवशेष है। यही समय है कि हमारा स्त्री समाज इस बंधन से मुक्त हो जाये। स्त्रियों का सारा समय घरेलू कार्यों में नहीं लगना चाहिए।" निराला जी के मतानुसार जब तक स्त्रियों में नवीन जीवन की स्फूर्ति नहीं आ जाएगी, तब तक गुलामी का नाश नहीं हो सकता। परिवार में नारी की इस दयनीय स्थिति के कारण उसके उद्धार के लिए विभिन्न समाज–सुधारकों ने बीड़ा उठाया।

सदियों से पीड़ित नारी का उत्थान स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार से आरम्भ हुआ। 19वीं शताब्दी में समाज–सुधार–आन्दोलन के प्रवर्तक राजा राममोहनराय के प्रयासों से सती–प्रथा कानून द्वारा बंद की गई। ईश्वरचन्द विद्यासागर ने स्त्री–पुरुष की समानता तथा स्त्री–शिक्षा पर जोर दिया। आपके प्रयासों से सन् 1856 में विधवा–विवाह को वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। आप नारी जाति के परम हितैषी रहे तथा उसके उत्थान की भरसक कोशिश करते रहे। ईसाई मिशनरियों द्वारा भी नारी–शिक्षा का प्रसार हुआ। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नारी–शिक्षा का प्रचार किया एवं स्त्री तथा पुरुष की समानता का प्रमाण वैदिक युग से दिया। स्वामी विवेकानन्द ने नारी को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा तथा उन्होंने यह मान्यता प्रस्तुत की कि "वह देश और वह जाति जो अपनी स्त्री जाति की प्रतिष्ठा नहीं करती है, वह न तो कभी उन्नतिशील हुई थी और न कभी हो सकेगी।" आपने नारी–शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। आपके अनुसार नारी शिक्षित होकर स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होगी। स्वामी विवेकानन्द ने नारी–जीवन के आदर्श का प्रारम्भ और अंत मातृत्व में ही माना है। उनके अनुसार, "विश्व के समस्त दैवी गुण और शक्तियाँ उस गृह, समाज, तथा राष्ट्र में विद्यमान रहते हैं जहाँ नारियों की पूजा होती है।" केशवचन्द्र सेन के प्रयासों से 'प्रार्थना समाज' का जन्म हुआ। आपने बाल–विवाह का निषेध, विधवा–विवाह एवं नारी–शिक्षा पर विशेष बल दिया। महर्षि कर्वे ने विधवा–विवाह को उचित ठहराते हुए 'पुनर्विवाह–परिषद्' की स्थापना की।

1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के जन्म के बाद उसने समय–समय पर नारी–उत्थान के लिए प्रस्ताव पारित करके भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट किया। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लड़कियों को अशिक्षा एवं बाल–विवाह से मुक्ति दिलाने में भरसक प्रयास किया। अखिल भारतीय महिला–परिषद् की स्थापना श्रीमती मार्गरेट कजिन्स के प्रयासों से हुई। सन् 1935 में नारी के मताधिकार की शर्ते उदार बनाई गई। घर की चहारदीवारी में बंद रहने वाली नारी ने गांधीजी के आह्वान पर राष्ट्रीय–आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ किया। नारी ने पुरुष के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर जेल की यातनाएं सहन करके अपनी कर्मठता एवं सहनशीलता का परिचय दिया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में नारी ने जिस कुशलता का परिचय दिया वह सराहनीय है। स्वतंत्रता के बाद होने वाले आम चुनावों में नारी ने सक्रिय रूप से भाग लिया है। अधुना नारी ने विभिन्न शासकीय पदों पर कार्य करके नारी–गौरव को बढ़ाया है।

उस समय के लोग लड़कियों को स्कूलों एवं कालेजों में दी जाने वाली शिक्षा के वे विरोधी थे। समाज

सुधारक चाहते थे कि सदियों से शोषित नारी उच्च शिक्षा प्राप्त करके अवसर पड़ने पर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। सनातनधर्मी व्यक्तियों का यह अनुमान था कि नारी पढ़–लिख कर पुरुष के बराबर समानता का दावा करेगी और इस प्रकार वह अपने स्त्री–धर्म से च्युत हो जाएगी। प्रारम्भिक युग के उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी नारी की उच्च शिक्षा के विरोधी थे। उनके अनुसार लड़कियों को घर पर ही हिन्दी, संस्कृत एवं गृहकार्यों की शिक्षा दी जाय। वे अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं, "मेरी तो यह राय है कि लड़कियाँ कभी भी घर के बाहर अर्थात् पाठशाला में पढ़ने के लिए न भेजी जायें और उन्हें घर पर ही हिन्दी और संस्कृत तथा गृह–कार्य की विधिवत् शिक्षा दी जाय।" लज्जाराम शर्मा मेहता ने भी गोस्वामी जी के स्वर में स्वर मिलाकर नारी की उच्च शिक्षा का विरोध किया। मेहता जी पढ़ी–लिखी नारियों का पुरुषों का 'बेटर हाफ' (अर्द्धांगिनी) कहलाना घृणित समझते थे। हरिऔध जी ने नारी–शिक्षा के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने अपने उपन्यास, 'अधखिला फूल' में कहा है, "वह, लड़का भला क्यों न होगा– माँ जिसकी पढ़ी–लिखी होगी।"

प्रेमचंद जी नारी की उच्च शिक्षा के समर्थक तो थे, किन्तु तत्कालीन अंग्रेजी–शिक्षा–पद्धति से असंतुष्ट थे। उनके मतानुसार ऊँची शिक्षा कैसी भी एकांगी हो, किन्तु वह मस्तिष्क को विकसित तो करती ही है। इस विचारधारा वाले प्रेमचन्द जी भारतीय नारी पर पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव को घृणित दृष्टि से देखते थे। उन्होंने 'गोदान' में पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित नारी मालती का बड़े व्यंग्यात्मक शब्दों में परिचय दिया है, "दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख–छवि पर हँसी फूट पड़ती है, मिस मालती हैं। स्त्रियों के शिक्षित होने से उनमें आर्थिक स्वावलंबन की क्षमता बढ़ गई। अपने निर्वाह के लिए पति पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रही। शिक्षा के प्रभाव से वर–चुनाव की स्वतंत्रता भी बढ़ी। अभिभावकों द्वारा आयोजित विवाहों की संख्या कम होने लगी।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने नारी की आधुनिक शिक्षा पर तीखा व्यंग्य किया है। उनके 'संघर्ष' उपन्यास की स्नेहलता कालेज में शिक्षा प्राप्त की हुई आधुनिका बनने के फैशन में विवाह के बाद भी स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करती है। वह कहती है, "पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है, प्रेम के लिए नहीं।"

ज़ाकिर प्रवीन ने नारी के समानाधिकारों के लिए नारी–शिक्षा को आवश्यक माना है। उनके अनुसार, "यदि स्त्रियाँ समान अवसरों को प्राप्त करने में विश्वास करती हैं तो निश्चय ही उन्हें वही शिक्षा ग्रहण करनी होगी जो पुरुष करते हैं।"

19वीं शताब्दी की प्रारंभिक परिस्थितियों में बाल–विवाह एवं अशिक्षा के कारण पत्नी पति के साथ समानता की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। पत्नी की इस हीनदशा को दूर करने का समाज सुधारकों ने अथक प्रयास किया। श्रीमती हाटे के अनुसार "स्त्री की हीन स्थिति का अवश्य अन्त होना चाहिए, यथोचित सम्मान सहित उसके साथ बराबर दर्जे के साथी और गृहस्वामिनी का सा व्यवहार होना चाहिए।"

प्रारंभिक युग के उपन्यासकारों ने अपनी परम्परा और पुरातन आदर्शों के प्रति आस्था होने के कारण नारी के समानाधिकारों को हिन्दू धर्म एवं समाज के लिए घातक घोषित किया। उन्होंने नारी–स्वातंत्र्य का विरोध किया और अपने उपन्यासों में ऐसे नारी पात्रों की सृष्टि की जो प्राचीन और परम्परागत आदर्शों के प्रति आस्थावान हों। लज्जाराम शर्मा मेहता ने नारी स्वतंत्रता का विरोध करते हुए अपने उपन्यास "आदर्श हिन्दू" की सुगीना के सम्बन्ध में लिखा है, "वह कभी किसी पुरुष के समक्ष बातचीत नहीं करती थी और उसका यह पक्का सिद्धान्त था कि

स्त्रियों का स्वतंत्र हो जाना ही हिन्दू समाज के लिए विष है।

इन सनातनधर्मी एवं परम्परागत आदर्शों में विश्वास रखने वाले उपन्यासकारों के अतिरिक्त प्रेमचंद एवं उनके बाद के उपन्यासकारों ने पति–पत्नी के समान अधिकारों पर विशेष बल दिया। प्रेमचंद जी के नारी पात्र जहाँ एक ओर परम्परागत नारी आदर्श के प्रतीक हैं, वहाँ दूसरी ओर सुशिक्षित नारी पात्र सतीत्व के एकांगी आदर्श को चुनौती देते हैं। 'कर्मभूमि' की सुखदा का पति अमरकांत सकीना के प्रति आकृष्ट होने के कारण घर छोड़कर चला जाता है, तब वह कहती है, "उन्होंने मेरे साथ विश्वास–घात किया है। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती। अगर आज मैं किसी मर्द के साथ भाग जाऊँ तो तुम समझती हो, वह मुझे मनाने जाएँगे? वह शायद मेरी गर्दन काटने जाएँ। मैं औरत हूँ और औरत का दिल इतना कड़ा नहीं होता, लेकिन मैं उनकी खुशामद तो मरते दम तक नहीं कर सकती।" आगे वह कहती है, "ऐसे आदमियों की सजा यही है कि उनकी स्त्रियाँ भी उन्हीं के मार्ग पर चलें। तब उनकी आँखें खुलेंगी और उन्हें ज्ञात होगा कि जलना किसे कहते हैं। 'कायाकल्प' में मनोरमा कहती है, "यह तो मैं जानती हूँ कि स्त्री को पुरुष की आज्ञा माननी चाहिए। लेकिन क्या सभी दशाओं में? जब राजा से साधारण प्रजा न्याय का दावा कर सकती है तो क्या उसकी स्त्री नहीं कर सकती?"

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने स्वराज्य की प्राप्ति से भी अधिक महत्त्व स्त्री–पुरुष की समानता को दिया है। जब तक स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार नहीं मिलेंगे तब तक स्वराज्य मिलना मुश्किल है। उनके 'विजय' उपन्यास की रानी मायावती कहती है, "पुरुष अपने घर में अत्याचार करे, अन्याय करे और फिर स्वराज्य की कामना करे। स्वार्थान्ध्र पुरुष जाति इसे नहीं समझती और इसलिए स्वराज्य के बदले उसे मिलते हैं काले कानून। वह कहती है, "स्त्री–मानव के सभी अधिकार कुचल दिए गए हैं, पुरुष–मानव ने केवल उसको अपने विलास का उपकरण बना रखा है। यदि स्त्री–मानव को अपने अधिकार लेना है तो उसे पुरुषों के प्रति अस्त्र धारण करना पड़ेगा। आगे वह कहती है, 'भरण–पोषण और व्यय का अधिकार कानून से भी स्त्री को प्राप्त है। जब तक पुरुषों के विरुद्ध स्त्री अस्त्र धारण नहीं करेगी, तब तक उसको कोई अधिकार नहीं मिलेगा।"

पातिव्रत धर्म के एकांगी दृष्टिकोण का विरोध करती हुई 'पत्थर युग के दो बूत' की माया कहती है, "अब तो पत्नी पति की सहचारिणी है, उसकी जीवन साथी है। सुख–दुःख में, हानि–लाभ में वे दोनों बराबर के भागीदार हैं। अब वे यह नहीं देख सकतीं कि पति तो दूसरी स्त्रियों से सहवास करता रहे और पत्नी उसके प्रति एक–निष्ठ रहे। यदि पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए एक–निष्ठ रहे, वफादार रहे तो उसे भी उसके प्रति वफादार, एकनिष्ठ रहना होगा, अवश्य रहना होगा। स्त्रियाँ अब न पुरुषों की सम्पत्ति है, न भोग–सामग्री, न दासी, न पतिव्रता। वे उसकी जीवन–साथी हैं, मित्र हैं और उसके व्यक्तित्व की पूरक हैं।"

अमृतलाल नागर स्त्री–पुरुष की समानता में विश्वास करते हैं। उनके 'बूंद और समुद्र' उपन्यास की वनकन्या नारी अधिकारों के प्रति जागरूक है। पुरुष के अत्याचारों के खिलाफ संगठित होकर नारी–आन्दोलन के रूप में अपनी आवाज उठाने के लिए नारी जाति को सजग करती हुई कहती है, 'सारा दिन हम एक निर्मोही कपटी के ध्यान में बैठी रहें, न किसी काम की रहें न धाम की। आँखें कभी रोते–रोते पथरा जायं, कभी आँसुओं के भार से दब जायं। हममें न कोई उमंग रह जाय, न उछाह, न दूजी भावना। मैं पूछती हूँ क्या यही प्रेम है, जिसके भुलावे में पड़कर नारी जाति स्वयं अपना नाश करने में पुरुष को आप मदद देती है? दूर कर नारी यह

मोह! घूँघट के पट खोल! पुरुष के अत्याचारों के खिलाफ संगठित होकर अपनी आवाज उठा। जिस दिन स्त्री जाति अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को अंत करने के लिए निश्चयपूर्वक खड़ी हो जायगी, उसी दिन दुनिया से हर तरह के अत्याचार मिट जायेंगे।"

'उखड़े हुए लोग' की जया समान अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरानी संस्कृति, जिसमें नारी घर की चहारदीवारी में बंद रहती थी, स्वीकार नहीं करती। वह कहती है, "जी नहीं, स्त्री घर की रानी है, उसकी दुनिया चहारदीवारी के भीतर है, इन या ऐसे ही वाक्यों को आप पुरानी संस्कृति के रटू तोतों के लिए छोड़ दीजिये। कैसा सुन्दर वाक्य है– घर की रानी– इसका सीधा अर्थ तो यह हुआ न, प्रमुख कार्य करने वाला पुरुष और स्त्री केवल गति बनाए रखने के लिए 'मोबिल ऑयल'। फर्क क्या रहा, कल वह चरखे का तेल थी आज मोटर की 'मोबिल ऑयल' हो गई। सिंबल बदल गया है, उपयोग वही रहा। स्त्री को संतोष मिल गया– चलो बड़ी भारी क्रान्ति कर ली।" राजेन्द्र यादव ने अपनी कृति 'उखड़े हुए लोग' में सामंतवाद के ध्वंसावशेषों को दूर करने एवं पति–पत्नी की समानता की राह शरद के माध्यम से प्रस्तुत की है "किसी ऐसे रास्ते की खोज करो जहाँ दोनों के व्यक्तित्व एक–दूसरे पर लदें नहीं, एक–दूसरे से दबें नहीं और एक–दूसरे को खा न जाएँ और जब दोनों के व्यक्तित्व इतने मुक्त रहेंगे कि एक–दूसरे के बनने में, उसे मानसिक बल देने में समर्थ हो सकें, तभी तो एक का प्यार दूसरे को उठाएगा और आत्मा–आत्मा का सच्चा प्यार निखर कर आएगा।"

पश्चिम के व्यक्तिवादी एवं स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण ने परिवार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इस तत्त्व ने परिवार के ढाँचे को हिला कर रख दिया। नारी ने पश्चिमी प्रभाव को ग्रहण करके विवाह की उपेक्षा करते हुए स्वच्छंद जीवन व्यतीत करना आरंभ किया। यौन–नैतिकता के मापदण्ड बदल गए। प्राचीन काल से चली आ रही यौन–पवित्रता नष्ट होने लगी। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास की रेखा एवं भुवन व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण पारिवारिक बंधन में नहीं बँधना चाहते। धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' का चन्दर शादी इसलिए नहीं करता है कि आज तक शादी से कोई सुखी नहीं हुआ। नागर जी के 'बूंद और समुद्र' उपन्यास की विद्रोही यह पूछे जाने पर कि तुम किसी मामूली घर की गृहिणी होतीं, रोटी पकाती, बच्चे, घर–बार संभालती क्या तुम आज की अपेक्षा ज्यादा सुखी नहीं होती, कहती है, "अपने को उस हालत में देखने से पहले मैं मर जाना पसन्द करती।" यशपाल के 'दादा कामरेड' की शैलबाला विवाह की अपेक्षा स्त्री के एक साथ कई साथी रखने में विश्वास करती है। 'भूले बिसरे चित्र' की संतो अपने पति के प्रति निष्ठा को भंग करती हुई समाज में स्वच्छंद विचरण करती है। वह मेजर वाट्स के साथ यौन–संबंध स्थापित करके बदले में पद–मर्यादा और रुपया प्राप्त करती है।

भगवतीप्रसाद बाजपेयी के 'निमन्त्रण' उपन्यास की मालती पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म की कट्टरता को स्वतंत्र चिन्तन के लिए बाधक मानती है। 'राम रहीम' उपन्यास की पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित बिजली विभिन्न पुष्पों का रस पीने वाली तितली की तरह अपना जीवन व्यतीत करती है। वह कहती है, 'अगर वे कलियों के मदमाते भौंरे हैं, तो मैं फूलों का रस पीती तितली हूँ।' कौशिक जी के 'संघर्ष' की स्नेहलता विवाह के बाद भी उन्मुक्त प्रेम में विश्वास करती है। उसके अनुसार "पति तो पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है, प्रेम के लिए नहीं।"

आधुनिक युग में शिक्षा के प्रभाव ने नारी को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की है। इस युग में आर्थिक विषमता के कारण पति भी पत्नी के लिए नौकरी चाहने लगा है ताकि पत्नी उसे सहयोग प्रदान करके आर्थिक विषमता

को दूर कर सके। 'उखड़े हुए लोग' में उपन्यासकार इसका समर्थन करते हुए शरद के माध्यम से कहता है, यशपाल जी के 'झूठा सच' उपन्यास में एक ऐसे परिवार का चित्र प्रस्तुत किया गया है, जहाँ पति–पत्नी (गीता और उसका पति) दोनों एक ही स्थान पर नौकरी करते हैं एवं सहयोग के आधार पर गृहस्थी का संचालन करते हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पादन का केन्द्र घर से मिल हो गया। स्त्रियों को आजीविका ढूंढने के लिए घर छोड़कर मिल की शरण लेनी पड़ी, अतः पति एवं संतान के प्रति दायित्व का निर्वाह नहीं हो पाया, फलस्वरूप पारिवारिक जीवन में सुख की लहर क्षीण हो गई। औद्योगिक क्रान्ति के कारण गाँवों के सुसंगठित परिवार की सुदृढ़ता शहरों में आकर कम होने लगी, अतः समृद्धि का अभाव होने लगा। सिनेमा, शिक्षणालय एवं कारखानों ने पारिवारिक नियंत्रण को कम किया। शहरों में निवास स्थान की कमी के कारण पत्नी के वैयक्तिक विकास में बाधा पहुँची। बच्चों का खुला मैदान न मिलने से घर के संकुचित दायरे में विकास अवरुद्ध होने लगा। संयुक्त परिवार टूट कर एकाकी परिवार में बदलने लगे। गर्भ–निरोध के कृत्रिम साधनों की सहज उपलब्धि के कारण यौन–नैतिकता का दोहरा मापदण्ड समाप्त होने लगा।

प्रेमचन्द जी विवाह को एक धार्मिक एवं सामाजिक समझौता मानते हैं। उनके मतानुसार विवाह–संबंध अविच्छिन्न है, इसे तोड़ा नहीं जा सकता। गोदान उपन्यास में मेहता के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, "विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।" प्रेमचन्द जी के मतानुसार धर्म और प्रेम की दीवार विवाह की नींव पर ही सुदृढ़ बन सकती है। सामाजिक संगठन के लिए उन्होंने विवाह को अनिवार्य माना है और चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही को सर्वश्रेष्ठ माना है। 'सेवासदन' में एक वार्तालाप द्वारा पाश्चात्य विवाह–पद्धति के स्थान पर, भारतीय पद्धति को महत्त्व दिया है। 'सेवासदन' की शान्ता और दो ईसाई महिलाओं के बीच वार्तालाप चल रहा है। शान्ता पूछती है–

"मैंने सुना है आप लोग अपना पति खुद चुन लेती हैं।"

"हाँ, इस विषय में हम स्वतंत्र हैं।"

"आप अपने को माँ–बाप से बुद्धिमान समझती हैं।"

"हमारे माँ–बाप क्या जान सकते हैं कि हमको उनके पसन्द किये हुए पुरुषों से प्रेम होगा या नहीं।"

"तो आप लोग विवाह में प्रेम मुख्य समझती हैं।"

"हाँ, और क्या? विवाह प्रेम का बंधन है।"

"हम विवाह को धर्म का बंधन समझती हैं। हमारा प्रेम धर्म के पीछे चलता है।"

चतुरसेन शास्त्री ने भी विवाह को व्यक्तिगत संबंधों के स्थान पर सामाजिक संबंध माना है। उनके 'पत्थर युग के दो बूत' उपन्यास की माया कहती है "विवाह व्यक्तिगत संबंध नहीं है, सामाजिक संबंध है। श्रीवास्तव जी विवाह में शारीरिक संसर्ग के साथ–साथ आत्मिक संसर्ग को आवश्यक मानते हैं। "युग्म हृदय एक हो जाना ही विवाह है। स्त्री और पुरुष दोनों का एक हो जाना विवाह है। शारीरिक संसर्ग के साथ–साथ आत्मिक संसर्ग का नाम विवाह है। प्रेम के स्थायी रूप का नाम विवाह है। दो भिन्न–भिन्न जीवन नदियों के संगम का नाम विवाह है।" इलाचन्द्र जोशी समाज की मर्यादा और अनुशासन के प्रति अधिक सतर्क हैं। उनके 'संन्यासी' उपन्यास में

नन्दकिशोर कहता है, "जो विवाह समाज की मर्यादा–रक्षा पूरी तरह नहीं कर पाता वह चोरों का विवाह है। आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण विवाह–सम्बन्धों में अराजकता की सी स्थिति उत्पन्न हो गई है।

हिन्दी उपन्यासकार भी संयुक्त परिवार की विघटनात्मक स्थिति के प्रति जागरूक हैं। भगवतीचरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास के मुंशी शिवलाल पूर्वजों की परम्परा के अनुरूप परिवार के बड़े सदस्य होने के नाते किसी भी स्थिति में संयुक्त परिवार को बनाए रखना चाहते हैं, किन्तु दूसरी पीढ़ी के आने तक सरकारी नौकरी और उनके स्थानान्तरण के कारण संयुक्त परिवार छिन्न–भिन्न होने लगा है।

आधुनिक युग में माता–पिता तथा पुत्र के संबंधों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लक्षित होते हैं। आज की वैज्ञानिक परिस्थितियों में नारी का मातृत्व दिनों–दिन क्षीण होता जा रहा है। सरकार की ओर से उन्हें गर्भ–निरोध की प्रेरणा दी जा रही है। पश्चिमी देशों की तरह यहाँ भी शिक्षित नारियाँ अधिक सन्तानोत्पादन को अपने व्यक्तित्व के विकास में बाधक समझने लगी हैं। आर्थिक वैषम्य के वर्तमान युग में स्वयं का निर्वाह ही कठिन हो रहा है, फिर अधिक संतानोत्पत्ति करके उनका निर्वाह कहाँ से करे? स्वतंत्र रूप से आजीविका चलाने वाली नारी अधिक सन्तानोत्पत्ति को अपने कार्य में बाधक समझती है।

स्वतंत्र रूप से आजीविका चलाने वाली तथा नौकरी पेशा अधिकांश माताएँ संतान का स्वयं लालन–पालन नहीं कर पातीं। इस उपेक्षा के कारण संतान का समुचित विकास नहीं हो पाता। उसे सुयोग्य बनने की शिक्षा नहीं मिल पाती, अतः अपराध की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। माताएँ संतान के प्रति अपने दायित्व का समुचित निर्वाह नहीं कर पातीं, अतः पारिवारिक सुख–शान्ति कम होने लगी है।

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व आर्थिक साधनों पर पिता का अधिकार रहता था। पुत्र युवा होने पर पिता की प्रभुता में रहता हुआ सुख–सामग्री का भोग कर सकता था। औद्योगिक क्रान्ति के बाद पुत्र आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने लगे। संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा। वृद्धावस्था में पिता का सम्मान करना चाहिए, उसके अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए, पर आज स्थिति भिन्न है। संतान उसके अनुभवों से लाभ उठाने की अपेक्षा उसे अपनी दया पर जीवित रखने के लिए विवश करती है। संतान द्वारा अपनी स्वतंत्र इच्छा से विवाह करने के कारण पिता का संतान के विवाह पर नियन्त्रण कम होने लगा है। बाल–विवाहों में कमी होने के कारण भी पिता का प्रभुत्व घटने लगा है, अतः स्पष्ट है कि आज की परिस्थितियों में मातृत्व, पुत्रत्व और पितृत्व संबंधों का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है अथवा यह कहें कि ये पारिवारिक संबंध अपना नया रूप धारण कर रहे हैं।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 54-56
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

हिन्दी साहित्य में नारी की बदलती छवि

नरेन्द्र कुमार वर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी,
शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुराबाग, जयपुर।

सारांश :–

इस शोध–पत्र में हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों में नारी की स्थिति, उसकी सामाजिक भूमिका तथा बदलती छवि का विश्लेषण किया गया है। भक्ति काल से लेकर आधुनिक युग तक साहित्य ने स्त्री को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है – कभी आदर्श नारी के रूप में, कभी त्यागमयी माता–पत्नी के रूप में, तो कभी विद्रोही और आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में। इस अध्ययन में विशेष रूप से छायावाद, प्रगतिवाद, तथा समकालीन साहित्य में नारी की बदलती छवि पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द : नारी, साहित्य, परिवर्तन, स्त्री–विमर्श, छवि, हिन्दी काव्य, उपन्यास, समाज।

प्रस्तावना :–

- ☐ नारी और साहित्य का अटूट संबंध।
- ☐ भारतीय समाज में नारी की पारंपरिक स्थिति।
- ☐ साहित्य को समाज का दर्पण मानते हुए नारी–छवि का अध्ययन।
- ☐ शोध का उद्देश्य और महत्व।

शोध का उद्देश्य :–

1. हिन्दी साहित्य में नारी–छवि के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना।
2. नारी की पारंपरिक और आधुनिक छवि में अंतर स्पष्ट करना।
3. विभिन्न युगों के साहित्य में नारी की भूमिका की तुलना करना।
4. स्त्री–विमर्श की दृष्टि से आधुनिक नारी–छवि का मूल्यांकन करना।

कार्यप्रणाली :

- ☐ **साहित्य समीक्षा पद्धति :** विभिन्न ग्रंथों, उपन्यासों, कविताओं, लेखों और शोध–सामग्री का अध्ययन।
- ☐ **विश्लेषणात्मक पद्धति :** युगानुसार नारी की छवि का तुलनात्मक अध्ययन।
- ☐ **आलोचनात्मक दृष्टि :** स्त्री–विमर्श और आधुनिक नारी चेतना का विश्लेषण।

मुख्य भाग :

(क) भक्ति कालीन साहित्य में नारी :

- ☐ स्त्री को भक्ति का माध्यम माना गया।
- ☐ तुलसी, सूर, मीरा की रचनाओं में नारी की विविध छवियाँ।
- ☐ नारी का स्थान अधिकतर भक्ति, त्याग और पतिव्रता धर्म से जुड़ा।

(ख) रीतिकालीन साहित्य में नारी :

- ☐ नारी को मुख्यतः सौंदर्य और श्रृंगार तक सीमित किया गया।
- ☐ भोग्या और अलंकरणात्मक छवि प्रमुख।
- ☐ नारी की स्वतंत्र पहचान का अभाव।

(ग) आधुनिक काल (भारतेंदु युग और द्विवेदी युग) :

- ☐ भारतेंदु हरिश्चन्द्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सामाजिक सुधारों की ओर ध्यान दिया।
- ☐ स्त्री–शिक्षा, स्त्री–स्वतंत्रता पर जोर।
- ☐ नारी को समाज में जागरूक नागरिक के रूप में प्रस्तुत करना।

(घ) छायावाद कालीन साहित्य में नारी :

- ☐ महादेवी वर्मा की कविता में पीड़ित, संवेदनशील, किंतु आत्मबल से युक्त नारी।
- ☐ जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में विद्रोही नारी–छवि।
- ☐ नारी को भावुकता, करुणा और आत्मिक शक्ति का प्रतीक।

(ङ) प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में नारी :

- ☐ प्रेमचंद के उपन्यासों में श्रमिक, किसान और संघर्षशील नारी।
- ☐ यथार्थवादी दृष्टिकोण : नारी केवल घर की सीमा तक नहीं।
- ☐ प्रगतिवादी लेखकों ने स्त्री को समाज सुधार का हिस्सा बनाया।

(च) समकालीन साहित्य और नारी विमर्श :

- ☐ स्त्री अब स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और निर्णय लेने वाली छवि में।
- ☐ दलित और स्त्री–विमर्श साहित्य में नारी की पीड़ा और प्रतिरोध।
- ☐ आधुनिक कवयित्रियों (कुमुद शर्मा, अनामिका, सुधा अरोड़ा आदि) में विद्रोही नारी स्वर।
- ☐ स्त्री अब केवल 'देवी' या 'त्यागमूर्ति' नहीं, बल्कि 'स्वतंत्र व्यक्तित्व' है।

निष्कर्ष :

- ☐ हिन्दी साहित्य में नारी की छवि स्थिर नहीं रही, बल्कि समयानुसार परिवर्तित होती रही है।
- ☐ पारंपरिक भूमिकाओं से निकलकर आज की नारी आत्मनिर्भर, शिक्षित और समानता की आकांक्षी है।
- ☐ साहित्य ने नारी को केवल आदर्श रूप में नहीं, बल्कि एक वास्तविक, संघर्षशील और जीवंत व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है।

☐ नारी विमर्श आज हिन्दी साहित्य की सबसे सशक्त धारा है।

सन्दर्भ सूची :

1. प्रेमचंद – गोदान, सेवा सदन।
2. महादेवी वर्मा – नीरजा, यामा।
3. जयशंकर प्रसाद – ध्रुवस्वामिनी।
4. नामवर सिंह – छायावाद।
5. डॉ. निर्मला जैन – हिन्दी साहित्य और स्त्री विमर्श।
6. सुधा अरोड़ा – स्त्री साहित्य के सरोकार।
7. अन्य शोध–पत्र और आलोचनात्मक ग्रंथ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
February 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 57-60
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

अनामिका के साहित्य में संवेदना

करण दान रतनू
अतिरिक्त मुख्य ब्लॉक शिक्षा अधिकारी (A.C.B.E.O.) पंचायत समिति, जैसलमेर।

समकालीन हिंदी साहित्य के परिदृश्य में अनामिका एक ऐसी उपस्थिति हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी से संवेदना के नए व्याकरण की रचना की है। उनकी रचनात्मकता केवल शब्दों का संचयन नहीं, बल्कि उन अनकही अनुभूतियों का दस्तावेजीकरण है जो पितृसत्तात्मक समाज की परतों के नीचे दबी रही हैं। अनामिका का जन्म 17 अगस्त 1961 को बिहार के मुजफ्फरपुर में हुआ, जो अपनी सांस्कृतिक और साहित्यिक उर्वरता के लिए जाना जाता है । उनके पिता डॉ. श्यामनंदन किशोर न केवल बिहार विश्वविद्यालय के कुलपति थे, बल्कि वे स्वयं एक प्रतिष्ठित कवि और गीतकार भी थे, जिन्हें भारत सरकार ने 'पद्मश्री' से नवाजा था। यह पारिवारिक पृष्ठभूमि अनामिका के लिए वह प्रारंभिक पाठशाला बनी, जहाँ उन्होंने साहित्य को केवल एक विधा के रूप में नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक पद्धति और संवेदना के विस्तार के रूप में समझा ।

अनामिका की संवेदना का फलक अत्यंत व्यापक है; इसमें एक ओर प्राचीन बौद्ध भिक्षुणियों (थेरियों) की तड़प है, तो दूसरी ओर समकालीन महानगरीय और कस्बाई जीवन की जटिलताओं में फंसी स्त्री का संघर्ष । वे हिंदी साहित्य की पहली महिला कवयित्री हैं जिन्हें उनके काव्य संग्रह 'टोकरी में दिगंत: थेरीगाथा 2014' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार (2020) प्रदान किया गया । उनकी संवेदना केवल स्त्री तक सीमित नहीं है, बल्कि वह बच्चों, वृद्धों, अल्पसंख्यकों और प्रकृति के उन तमाम रूपों तक पहुँचती है जो उपेक्षा के शिकार हैं । अनामिका के साहित्य में मौजूद संवेदना के विभिन्न आयामों, उनकी भाषाई बुनावट और सामाजिक सरोकारों का गहन अनुशीलन करने पर संवेदनाओं की स्पष्ट चित्र उभर कर आता है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि और संवेदना का उद्भव

अनामिका के साहित्य में संवेदना का जो स्वरूप दिखाई देता है, उसकी जड़ें उनकी शिक्षा और परिवेश में गहराई तक धंसी हैं। मुजफ्फरपुर के हरिसभा मार्ग और रज्जूशाह लेन के बीच बसे उनके बचपन के घर में एक विशाल पुस्तकालय था, जो उनका सबसे प्रिय आश्रय स्थल बना । पिताजी के व्यस्त होने के कारण वे दिन भर किताबों की दुनिया में अकेली रहती थीं, जिसने उनके भीतर एक गहरी 'एकांत-संवेदना' और 'कल्पनाशीलता' को जन्म दिया । उनकी उच्च शिक्षा पटना, लखनऊ और दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई, जहाँ उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., पीएचडी और डी.लिट की उपाधियाँ प्राप्त कीं । अंग्रेजी साहित्य की प्राध्यापिका होने के बावजूद उन्होंने अपनी सृजन की भाषा 'हिंदी' को चुना, जिसे वे 'सड़क की भाषा' और 'हृदय की भाषा' मानती हैं।

अनामिका के साहित्य में संवेदना का आरंभिक बिंदु 'स्त्री' है, लेकिन यह स्त्री किसी रूमानी फ्रेम में जड़ी हुई नायिका नहीं है, बल्कि वह 'खुरदरी हथेलियों' वाली श्रमशील स्त्री है जो समाज के निर्माण में अपना रक्त और पसीना लगाती है । उनकी संवेदना का विकास 'निजी' से 'लोक' की ओर और 'लोक' से 'वैश्विक' की ओर हुआ है।

स्त्री संवेदना: थेरीगाथा से समकालीन संघर्ष तक

अनामिका के काव्य की धुरी स्त्री संवेदना है, लेकिन उनके यहाँ स्त्री-विमर्श का स्वरूप प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि संवादात्मक

है । वे मानती हैं कि स्त्री की मुक्ति तभी संभव है जब पुरुष की संवेदनाओं का भी 'मानवीकरण' हो । उनका साहित्य अकादमी पुरस्कृत संग्रह 'टोकरी में दिगंत: थेरीगाथा 2014' इस संवेदनात्मक यात्रा का चरमोत्कर्ष है। इसमें वे बुद्ध काल की उन थेरियों की आवाज़ को पुनर्जीवित करती हैं जिन्होंने अपने समय के सामाजिक और मानसिक बंधनों को तोड़कर 'निर्वाण' की राह चुनी थी ।

बौद्धिक और देह-संवेदना का समन्वय

अनामिका की कविता में स्त्री का शरीर और मन दो अलग-अलग इकाइयाँ नहीं हैं। वे स्त्री के शरीर को अत्याचारों के स्थल (Prime site of torture) के रूप में देखती हैं—जैसे घरेलू हिंसा, तस्करी और बलात्कार—लेकिन साथ ही वे उस शरीर की सर्जनात्मक शक्ति का भी उत्सव मनाती हैं । उनकी कविता 'मासिक धर्म' इस बात का उदाहरण है कि कैसे वे उन विषयों पर भी बेबाकी से लिखती हैं जिन्हें समाज ने वर्जित मान रखा है । वे प्रश्न उठाती हैं कि यदि ईसा मसीह को मासिक धर्म होता, तो क्या वे ईश्वरीय भार को उसी तरह ढो पाते? यह प्रश्न केवल शारीरिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और सत्ता-संरचना को चुनौती देने वाला है ।

अस्मिता और अस्तित्व का द्वंद्व

अनामिका की संवेदना उस स्त्री की तलाश करती है जो आधुनिक शिक्षा और अधिकारों के प्रति सचेत है, लेकिन फिर भी अपनी जड़ों से जुड़ी है । वे स्त्री को एक 'सजीव इकाई' के रूप में देखती हैं, न कि पुरुषों द्वारा बनाए गए फ्रेमवर्क की मोहताज । उनकी कविताओं में स्त्री की पहचान 'प्याज के छिलकों' की तरह है, जिसमें वर्ग, जाति और संप्रदाय की कई परतें लिपटी हैं, लेकिन उसकी मूल अस्मिता उसका 'स्त्री होना' ही है ।

अनामिका के उपन्यासों में भी स्त्री संवेदना के इसी व्यापक रूप के दर्शन होते हैं:

दस द्वारे का पिंजरा: यह उपन्यास स्त्री मुक्ति को एक व्यक्तिगत प्रश्न के बजाय एक सामाजिक और ऐतिहासिक अनिवार्य के रूप में प्रस्तुत करता है । इसमें पंडिता रमाबाई जैसी ऐतिहासिक विदुषी के माध्यम से स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता के संघर्ष को स्वर दिया गया है ।

आईनासाज़: यह उपन्यास 21वीं सदी की बदलती हुई स्त्री और उसके सामने खड़ी नई चुनौतियों की पड़ताल करता है । इसमें लेखिका ने स्मृतियों की सघनता के माध्यम से यह दिखाया है कि कैसे स्त्री घर और बाहर के बीच अपनी जगह बनाने के लिए निरंतर जद्दोजहद कर रही है ।

लोक-संवेदना और बिम्ब विधान

अनामिका की संवेदना की सबसे बड़ी विशेषता उसका 'लोक' (Folk) से जुड़ाव है। वे अपनी कविताओं में कस्बाई और ग्रामीण परिवेश की उन छोटी-छोटी वस्तुओं और गतिविधियों को समेटती हैं जो अक्सर मुख्यधारा के साहित्य में उपेक्षित रह जाती हैं । उनके यहाँ 'सिल-बट्टा', 'कथरी', 'झाड़ू', 'अचार-चटनी' और 'जेठ की दुपहरी' केवल वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि वे स्त्री के श्रम और उसकी आत्मीयता के प्रतीक हैं ।

अनामिका की भाषा में एक खास तरह की 'देसीपन' और 'लोक की मिठास' है । वे स्थानीय मुहावरों और घरेलू शब्दावली का ऐसा प्रयोग करती हैं कि कविता सीधे पाठक के हृदय में संवाद की तरह उतर जाती है । उनकी एक कविता में जेठ की दुपहरी का चित्र है, जिसमें सभी उपमान स्त्री के सक्रिय जीवन से लिए गए हैं—जैसे बच्चों की चानी पर तेल थोपना या मनिहारिन का घर के भीतर आना ।

मानवीय संवेदना के अन्य आयाम: वृद्ध, बच्चे और हाशिए का समाज

अनामिका की संवेदना का दायरा केवल स्त्री तक सीमित नहीं है। वे एक 'सच्ची रचनाकार' की तरह समाज के उन सभी अंगों के प्रति संवेदनशील हैं जो उपेक्षित हैं ।

वृद्धों की असुरक्षा और अकेलापन

अनामिका ने वृद्धों की मानसिक स्थिति और उनके भीतर के अकेलेपन को अत्यंत मार्मिकता से उकेरा है। वे लिखती हैं– "बुड्ढे का मन, सचमुच बंजारा होता है / टूटे थर्मामीटर का पारा होता है" । यहाँ 'टूटे थर्मामीटर का पारा' वृद्ध मन की अस्थिरता और असुरक्षा का एक अद्भुत बिम्ब है। वे मानती हैं कि उम्र के इस पड़ाव पर व्यक्ति अपनी स्मृतियों में अधिक जीता है और समाज की बदलती गति उसे अक्सर पीछे छोड़ देती है ।

बाल संवेदना और मासूमियत

बच्चों के प्रति अनामिका की संवेदना उनकी मासूमियत और उनके अनकहे डरों को पकड़ने की कोशिश करती है । 'भय' कविता में वे महिलाओं और बच्चों के मन में व्याप्त उस डर की बात करती हैं जो किसी अज्ञात आशंका से पैदा होता है । सांप्रदायिक दंगों और हिंसा के माहौल में बच्चों के मन पर क्या बीतती है, इसे वे प्रेमचंद के 'हामिद' के चिमटे के माध्यम से व्यक्त करती हैं– "क्या हामिद बड़ा होगा? क्या वह दादी को बचा लेगा?" । यह प्रश्न आज के समय की सांप्रदायिकता और आतंकवादी गतिविधियों के बीच बच्चों की असुरक्षा को गहराई से रेखांकित करता है।

अल्पसंख्यक और सामाजिक असुरक्षा

समाज में व्याप्त असहिष्णुता और दंगों के माहौल में अल्पसंख्यक वर्ग के भीतर जो भय और आशंका होती है, अनामिका उसे अपनी कविताओं में स्थान देती हैं । वे मानती हैं कि एक स्वस्थ समाज वही है जहाँ सबसे कमज़ोर इकाई भी सुरक्षित महसूस करे। उनकी संवेदना यहाँ एक 'सामाजिक कार्यकर्ता' और 'लेखिका' के रूप में एक साथ काम करती है ।

भाषाई संवेदना:

अनामिका की भाषाई विशिष्टता यह है कि वे अंग्रेजी साहित्य की गहरी समझ रखने के बावजूद हिंदी में लिखते समय उसकी 'लोक-प्रकृति' को नष्ट नहीं होने देतीं । वे अपनी कविताओं में अंग्रेजी के शब्दों और वैश्विक संदर्भों का सहज प्रयोग करती हैं—जैसे 'To be or not to be' या 'Well it's your problem'—ताकि वे स्थानीय समस्याओं को वैश्विक संदर्भ प्रदान कर सकें।

उनकी शैली की कुछ प्रमुख विशेषताएं:

संवादात्मकता: उनकी कविताएँ पाठक से सीधे संवाद करती हैं। वे अपनी बातों को थोपने के बजाय 'बोलती-बतियाती' शैली में रखती हैं ।

वक्रता : एमली डिकिंसन की तरह वे भी सच को सीधे कहने के बजाय 'तिरछा' कहना पसंद करती हैं, जो काव्य में सौंदर्य और गहराई दोनों पैदा करता है ।

करुणा का स्वर: उनकी भाषा में आक्रोश की जगह करुणा और समझाने का भाव है। वे मानती हैं कि "कोई भी पुरुष परे नहीं है", उसे भी प्रेम और सहानुभूति से बदला जा सकता है ।

आलोचनात्मक मूल्यांकन और प्रासंगिकता

अनामिका के साहित्य को समकालीन हिंदी कविता में एक 'प्रतिमान परिवर्तन' माना गया है । वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार, अनामिका की कविताएँ उन चीजों की स्मृति को पुनर्जीवित करती हैं जो बिखर रही थीं । मृदुला गर्ग का मानना है कि आज की डरावनी दुनिया में अनामिका एक नई दुनिया रचने का काम करती हैं जो पुरानी दुनिया से प्रेरणा लेती है ।

उनकी कविताओं की संवेदनात्मक गहराई का विश्लेषण करने वाली प्रमुख शोध रिपोर्टों के अनुसार अनामिका स्त्री की पीड़ा को केवल 'दु:ख' के रूप में नहीं, बल्कि 'अस्तित्व के संघर्ष' के रूप में देखती हैं।

उनका साहित्य पितृसत्तात्मक मानसिकता पर करारा प्रहार करता है, लेकिन वह पुरुषों से नफरत नहीं सिखाता ।

वे हाशिए की आवाजों को मुख्यधारा में लाने वाली एक 'प्रतिबद्ध रचनाकार' हैं ।

निष्कर्षत: अनामिका का साहित्य मानवीय संवेदनाओं का एक ऐसा विस्तृत मानचित्र है, जिसमें समय की पुरानी लकीरें भी हैं और भविष्य की नई संभावनाएं भी। उन्होंने अपनी कविताओं और उपन्यासों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि साहित्य का मूल उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि 'मन माँजना' और 'सहानुभूति का विस्तार' करना है । उनकी संवेदना का केंद्र स्त्री है, लेकिन उसका विस्तार संपूर्ण ब्रह्मांड तक है। 'टोकरी में दिगंत' की थेरियों से लेकर 'आईनासाज़' की सपना तक, अनामिका के पात्र अपने-अपने 'पींजरे' को तोड़कर बाहर आने की छटपटाहट और साहस के प्रतीक हैं ।

अनामिका की यह संवेदनात्मक यात्रा हिंदी साहित्य को एक ऐसी दिशा प्रदान करती है, जहाँ विवेक और संवेग का संतुलन है, जहाँ अतीत और वर्तमान का संवाद है, और जहाँ मुक्ति का अर्थ 'अकेलापन' नहीं बल्कि 'साझा संस्कृति' का हिस्सा होना है । उनका साहित्य आने वाली पीढ़ियों के लिए उस 'मिट्टी' की तरह है, जिसमें मनुष्यता के बीज सुरक्षित रहकर पल्लवित हो सकते हैं ।

संदर्भ:

1 टोकरी में दिगंत: थेरीगाथा 2014, राजकमल प्रकाशन

2 दस द्वारे का पींजरा, राजकमल प्रकाशन ।

3 आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन ।

विभिन्न शोध पत्र और आलोचनात्मक लेख:

1 इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज (वॉल्यूम 3, इश्यू 5, मई 2022) पेज 155

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 61-64
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

वैशाली के समाजवादी नेता : बसावन सिंह

विपिन पासवान, शोधार्थी,
डॉ. संजीव कुमार, सहायक प्राध्यापक,
आर. पी. एस. कॉलेज, चकेयाज महनार,
इतिहास विभाग, बी.आर. अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश :–

बिहार भारतीय सभ्यता की क्रीड़ाभूमि रहा है। युगों के अंतराल में मानव प्रतिभा यहां अभिनव रूपो में व्याप्त होती रही है। राष्ट्रीय संघर्ष के विभिन्न चरणो में इसने अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसी कड़ी में समाजवादी आंदोलन के इतिहास में वैशाली जिला के बसावन सिंह की भूमिका सराहनीय रही है। राष्ट्रीय आंदोलन के सभी चरणो में उन्होनें खुलकर अंग्रेजों का विद्रोह किया। उन्होनें 1925 में भूमिगत हिंदुस्तान समाजवादी रिपब्लिक सेना की सदस्यता ग्रहण किये और इस पार्टी के प्रमुख नेता योगेंद्र शुक्ल के करीबी शिष्य बन गये। हाजीपुर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालक स्थल बन गया। उन्होनें बलिदान और त्याग की वह गाथा लिखी जिसको राष्ट्र आज भी याद करता है। वे समाजवादी आंदोलन के पहले और अंतिम श्रेष्ठ कर्णधार थे। वे आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण और भगत सिंह के सहकर्मी के रूप में भी काम किये। उनका राजनीतिक जीवन असहयोग आंदोलन में भाग लेने के साथ शुरू हुआ। गांधी जी के हाजीपुर आगमन और उनके भाषण का प्रभाव उन पर पड़ा।

कूट शब्द :– समाजवादी, आंदोलन, स्वतंत्रता, विद्रोह, संघर्ष।

प्रस्तावना :–

समाजवाद एक सिद्धांत है जिसका आधार मूल सामाजिक–आर्थिक सिद्धांत है। यह शब्द पश्चिम में 19वीं सदी के शुरूआत में सेंट साइमन द्वारा प्रस्तावित किया गया था। समाजवाद का मतलब आमतौर पर लोगों की वस्तुओं पूरा करने के लिए वस्तु का उत्पादन करना होता है, न कि लाभ प्राप्त करने के लिए व्यापार करना, जो कि वस्तुओं का उत्पादन करना होता है।

बसावन सिंह बिहार के सार्वजनिक जीवन के मसीहा थे। स्वतंत्रता–संग्राम के एक मजबूत आधार स्तंभ, संघर्षशील, समाजवादी और एक क्रियाशील मजदूर संघ के नेता के रूप में बसावन सिंह को ख्याति प्राप्त थी। उनका जन्म 23 मार्च, 1909 को हाजीपुर तत्कालीन मुजफ्फरपुर जिला के ग्राम सुभई में एक साधारण किसान के घर हुआ। उनके पिता का नाम श्री रामखेलावन सिंह एवं माता दौलत कुंवर के वे एकमात्र पुत्र थे। उनके पिताजी मुर्शिदाबाद के नवाब के सैन्य बल से संबंधित दस्तावेजों की देखरेख करते थे। जब वे आठ वर्ष के थे

तब उनके पिता का देहांत हो गया था, जिसके बाद उनकी विधवा माता ने उनका पोषण आर्थिक संकट और गंभीर संकटों के बीच किया। उन्होनें आरंभिक शिक्षा ग्रामीण पाठशाला से प्राप्त की। उसके बाद उन्होनें हाजीपुर इंग्लिश हाई स्कूल और गांधी विद्यालय से शिक्षा प्राप्त किये। इनके संबंधियों ने उन्हें राजनीति से अलग रहने की सलाह दी जिस समय वे स्कूली शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

1928 ई. में उन्होनें कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने किये थे। वे जवाहर लाल नेहरू एवं सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में इंडियन इंडिपेंडेन्स लीग में सहभागिता प्रदान की और भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य मांग की आलोचना की। साइमन कमीशन के आगमन का भारत भर में विरोध हुआ, जिसमें लाला लाजपत राय को लाठी चार्ज में घातक चोट लगी। भगत सिंह द्वारा सॉन्डर्स की हत्या किये जाने के बाद में अन्य क्रांतिकारियों के साथ बसावन सिंह को पहले बेतिया और बाद में हाजीपुर में गुप्त निवास करना पड़ा।

तिरहुत षड्यंत्र मुकदमा, लाहौर षड्यंत्र मुकदमा के एक अभियुक्त होने के कारण सरकार ने बसावन सिंह के खिलाफ वारंट जारी किया। इस षड्यंत्र में शामिल सभी व्यक्तियों को न्यायालय द्वारा मौत की सजा दी गई, परंतु महात्मा गांधी के आवेदन पर बसावन सिंह को दी गई मौत की सजा को उम्र कैद में सरकार ने बदल दिया। बसावन सिंह का जीवन त्याग और बलिदान का एक अनुपम गाथा है। उनके अनुसार तत्कालीन राजनीतिक अवस्था में सिर्फ कांग्रेस समाजवादी पार्टी ही एकमात्र ऐसी पार्टी थी जो जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकती थी। उन्होनें 1936 ई. में कांग्रेस पार्टी की सदस्यता ग्रहण की। इसके बाद वे समाजवादी पार्टी के प्रसिद्ध नेता एवं शीर्ष प्रवक्ता बन गये। उन्होनें पार्टी का विस्तार करने एवं जनता को परिचित करने का प्रयास आरंभ किया। उनका कथन था कि समाजवादी व्यवस्था को मूर्तरूप देने के लिए यह आवश्यक है कि किसान एवं मजदूरों का उत्थान किया जाये जिसे लेनिन रूस में 'समिचक' कहता था। उन्होनें अपना संपूर्ण जीवन मजदूरों और किसानों के विकास में लगाया।

कांग्रेस के पास आरंभ में कोई सामाजिक आर्थिक विचारधारा या कार्यक्रम नहीं था, जिसका उद्देश्य समाजवादी आधार पर स्वतंत्र भारत में व्यवस्था स्थापित की जा सके। समाजवाद का उद्देश्य समन्वित विकास करना है। जयप्रकाश की दृष्टि में समाज में जो घोर असमानता विद्यमान है, उनका मुख्य कारण यही है कि उत्पादन की साधनों आदि पर मुट्ठी भर व्यक्तियों का एकाधिकार है। यदि ये साधन प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध करा दिया जाये तो वर्तमान दरिद्रता और आर्थिक विषमताएं बड़ी सीमा तक समाप्त हो जाएंगी, बशर्ते जनसंख्या को एक निश्चित सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाए। इस तरह जयप्रकाश के अनुसार समाजवाद का मुख्य आधार उत्पादन के साधनों का समाजीकरण है, जिसके द्वारा धन के विषम वितरण और शोषण जनित बुराईयों को दूर किया जा सकता है।

अतः यह आवश्यकता महसूस की गई कि राजनीतिक आंदोलन के साथ आर्थिक कार्यक्रमों को जोड़ना आवश्यक है ताकि स्वतंत्रता के अर्थ को और सारगर्भित बनाया जा सके। जिसके लिए मजदूरों, कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना अतिआवश्यक माना गया क्योंकि भारत का यह वर्ग आर्थिक संकट का सामना कर रहा था और इनके भौतिक विकास के बिना राष्ट्र की स्वतंत्रता बेमानी हो जाती।

मूलतः बिहार में बिहार समाजवादी पार्टी का गठन पटना में 1931 में किया गया। इस पार्टी ने कालांतर

में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का रूप धारण किया। पार्टी के संविधान और घोषणा पत्र में समाजवादी व्यवस्था लागू करने के लिए निजी संपत्ति को मान्यता नहीं देने, सामुदायिक स्वामित्व, भूमि और औद्योगिक क्षेत्र में प्रसारित करने की घोषणा की गई जिसके कारण अर्थविहीन लोगों के श्रम का नियोजन कर उन्हें भी आर्थिक रूप से सक्षम बनाया जा सके। इनके कार्यक्रम में श्रमिक संघ और किसान को भी राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके। इसके दो लाभ समाजवादियों ने बताया। पहला इसका लाभ सांख्यिकी आधार पर राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार विस्तृत करना और इसका दूसरा लाभ सभी वर्गो में राजनीतिक चेतना का प्रसार करना।

उपर्युक्त कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने और क्रियान्वित करने के संदर्भ में बसावन सिंह जैसे जुझारू समाजवादी नेता के क्रियाकलापों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। राष्ट्रवादी आंदोलन में प्रवेश करने के समय से ही बसावन सिंह ने निरंतर ब्रिटिश सरकार को भारत में समाप्त करने और राष्ट्रवादी स्वतंत्र सरकार स्थापित करने और सही अर्थों में समाजवाद को प्रसारित करने का बीड़ा उठाया।

1936 ई. में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की सदस्यता ग्रहण करने से पहले ही उन्होनें ब्रिटिश भारत के विभिन्न जेलो में छः साल की सजा काट ली थी। उनके राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रति उनके दृढ़ संकल्प के कारण उन्हें तुरंत ही पार्टी का श्रम सचिव नियुक्त कर दिया गया। जिस पार्टी की सदस्यता प्रदान करने से पहले प्रशिक्षण दिये जाने का प्रावधान था। उस पार्टी में एकाएक श्रम सचिव का पद हासिल करना ही बसावन सिंह की क्षमता का परिचायक है। उन्होनें अपना क्षमता का परिचय देते हुए बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश में लगभग 300 श्रमिक संघों का संगठन किये। इस उपलब्धि के लिए उन्हें श्रमिक संघों का प्रणेता माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बसावन सिंह ने समाजवादी आंदोलन को धर्म निरपेक्ष आधारों पर मजबूत करने का कार्य किया। वे बिहार विधानसभा के लिए रोहतास चुनाव क्षेत्र से चुने गये और कई वर्षों तक उन्होनें विपक्ष के नेता के रूप में पद पर कार्य रहे। 1967 और 1977 में दो बार बिहार सरकार के श्रम, उद्योग और योजना विभाग के कैबिनेट मंत्री रहे।

बसावन सिंह एक स्वनिर्मित और कर्मयोगी व्यक्ति थे। इंदिरा गांधी द्वारा लगाई गई इमरजेंसी का भी जमकर विरोध किये थे। जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी के बाद उन्होनें ही निरंकुश कांग्रेस सरकार के खिलाफ आंदोलन का संचालन किया।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने जब 1974 का आंदोलन शुरू किया तो उन्होनें सबसे पहले तीन व्यक्तियों से राय विमर्श किया था। उन तीनों में सबसे पहले जिस व्यक्ति से उन्होनें बातचीत की थी वे उनके आत्मीय समाजवादी मित्र प्रसिद्ध सेनानी एवं लोकप्रिय मजदूर नेता बसावन सिंह थे। दूसरे अन्य नेताओ में कर्पूरी ठाकुर और रामानंद तिवारी थे। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि वे जेपी की नजर में सबसे महत्वपूर्ण एवं भरोसेमंद व्यक्ति थे।

निष्कर्ष :–

गिरता हुआ स्वास्थ्य और ढलती हुई उम्र के बावजूद भी उन्होनें समानता और सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए संघर्ष जारी रखा। मजदूर उनसे सदा प्रेरणा की उम्मीद लगाये रहते थे। वे एक दोस्त, दार्शनिक, पथ–प्रदर्शक और प्रजातांत्रिक समाजवाद के अग्रणी नेता के रूप में सदा प्रशंसित हैं। बसावन सिंह ने एक सरल जीवन का निर्वाह किया। आडंबर, दिखावा और प्रचार से काफी दूर थे। उनका जीवन गीता में

वर्णित कृष्ण के उद्गार 'कर्मण्ये वाधिकारस्तु माँ फलेसु कदाचन' से संचालित होता था। बसावन सिंह जैसे जुझारू, ईमानदार, कर्मशील और समाजसेवी राष्ट्रवादियों के प्रयासों से ही भारत के स्वतंत्रता–संग्राम में नैतिकतापूर्ण का समावेश हुआ।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. अमरेश्वर अवस्थी एंव राम कुमार अवस्थी; आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1988
2. सुघांशु रंजन; जयप्रकाश नारायण, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 1994
3. प्रमोदानंद दास एवं कुमार अमरेंद्र; बिहार : इतिहास एवं संस्कृति, ल्यूसेंट पब्लिकशंन, पटना, 2008
4. गायत्री शर्मा; बसावन सिंह, ए रिवोल्यूशनरी पैट्रियॉट, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2022
5. अर्चना सिन्हा; सर्वोदय का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1989
6. डॉ. एन.एम.पी. श्रीवास्तव; बिहार में राष्ट्रीयता का निकास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998
7. अमरजीत झा; बिहार : एक खोज (अतीत से वर्तमान) बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2021
8. डॉ. सत्या एम. राय; भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013
9. राजीव अहीर; आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि., 2021

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 65-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

मध्यकालीन बिहार में शिक्षा : एक अवलोकन

डॉ. मो. इस्माईल, शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर।
अविनाश कुमार पासवान, शोधार्थी, यू.जी.सी.–नेट,
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर, विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश :–

प्राचीन काल से ही बिहार ज्ञान और शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है और मध्यकालीन भारतीय शिक्षा के इतिहास में भी इसका अत्यंत विशिष्ट स्थान है। मध्यकाल में उत्तर भारत के अन्य भागों की तरह बिहार में भी शिक्षा के संचालन और समन्वय के लिए कोई पृथक राज्य शिक्षा विभाग नहीं था, फिर भी शासकों, सामंतों और समाज के संपन्न वर्गों के संरक्षण में शिक्षा ने उल्लेखनीय प्रगति की। इसके परिणामस्वरूप इस काल में बिहार ने बौद्धिक गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रो में अनेक प्रतिभाशाली विद्वान उत्पन्न किए।

इस काल में बिहार भी प्रमुख शैक्षणिक केंद्र के रूप में उभरा। बिहार में मुस्लिम शासकों और सूफी संतों के आगमन से पहले ब्राह्मणवादी और बौद्ध शिक्षा व्यवस्था प्रचलन में थी। मुस्लिम शिक्षा–पद्धति में धार्मिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस शिक्षा पद्धति का आधार ही धार्मिक था।

कूट शब्द :– मध्यकालीन भारत, शिक्षा व्यवस्था, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विकास, मकतब, मदरसा।

प्रस्तावना :–

मध्यकालीन बिहार भारतीय उपमहाद्वीप के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में एक अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यह काल लगभग 8वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक माना जा सकता है, जिसमें बिहार न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से बल्कि शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक संरचना के क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता था। इस अवधि में बिहार ने शिक्षा और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसकी गूंज न केवल स्थानीय समाज में महसूस की जाती थी, बल्कि देश–विदेश में भी इसके प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। मध्यकालीन बिहार में शिक्षा का महत्व केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज में समग्र विकास, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक एकता के निर्माण का भी एक प्रमुख साधन था।

मुसलमानो में शिक्षा :–

मध्यकालीन बिहार में मुसलमानों की शिक्षा, भारत के अन्य भागों की तरह, मुख्यतः तीन माध्यमों से दी जाती थी–

क. मकतब, जो सामान्यतः मस्जिदों या निजी घरों से जुड़े होते थे,

ख. खानकाहें अर्थात् सूफी संतों के धार्मिक प्रतिष्ठान, जो बिहार शरीफ, फुलवारी शरीफ शेरघाटी, भागलपुर आदि स्थानों पर फैली हुई थीं, और

ग. मदरसे, जो आधुनिक कॉलेजों के समान थे और प्रायः मस्जिदों से संबद्ध रहते थे।

धर्म ने शिक्षा और अध्ययन के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अधिकांश शैक्षणिक संस्थान—मकतब और मदरसे—मस्जिदों, खानकाहों और दरगाहों से जुड़े हुए थे।

मुस्लिम बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा एक औपचारिक संस्कार से आरंभ होती थी, जिसे बिस्मिल्लाह रस्म या मकतब कहा जाता था। यह सामान्यतः तब की जाती थी जब बच्चा चार वर्ष, चार महीने और चार दिन का हो जाता था। किंतु अमीरों और उच्च वर्ग के बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा प्रायः निजी शिक्षकों (उस्ताद) के माध्यम से होती थी।

प्राथमिक शिक्षा में कुरआन का अध्ययन और पाठ मुख्य विषय होता था। इसके साथ—साथ लेखन, साधारण गणित और इस्लाम धर्म की प्रारंभिक शिक्षा भी दी जाती थी। वर्णमाला और शब्दावली सीखने के बाद प्रत्येक विद्यार्थी को कारी (जो सही उच्चारण के साथ कुरआन पढ़ा सके) से कुरआन पढ़ना होता था। इसके बाद साहित्य, उपन्यास, इतिहास और नैतिक ग्रंथों का अध्ययन कराया जाता था। पदनामा, आमदनामा, गुलिस्तान, बोस्तान, सिकंदरनामा आदि ग्रंथ प्रसिद्ध थे। जो विद्यार्थी इसी स्तर पर शिक्षा समाप्त कर लेते थे, उन्हें मुंशी की उपाधि दी जाती थी। आगे अध्ययन जारी रखने वालों को उनकी योग्यता के अनुसार मौलवी, मौलाना या फाज़िल कहा जाता था। अरबी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को पैग़म्बर मुहम्मद के जीवन और शिक्षाओं, कुरआन की टीकाओं, अक़ायद, तसव्वुफ, तर्कशास्त्र, दर्शन और कलाम आदि विषयों का भी अध्ययन करना पड़ता था। माध्यमिक शिक्षा भी प्रायः मजिस्दों और दरगाहों में दी जाती थी। दरगाहें प्रसिद्ध सूफी संतों की समाधियां होती थीं, जो अपने गहन ज्ञान के कारण स्थानीय लोगों द्वारा मुर्शिद (आध्यात्मिक गुरू) के रूप में पूज्य माने जाते थे। ऐसे ही प्रसिद्ध संतों में मखदूम शरफुद्दीन याह्या मनेरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

माध्यमिक स्तर पर रहस्यवादी और धर्मशास्त्रीय विचारों के अध्ययन को प्राथमिकता दी जाती थी, किंतु साथ ही सांसारिक (धर्मनिरपेक्ष) शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। इस स्तर पर शिक्षा का माध्यम फारसी था, परंतु अरबी भी साथ—साथ पढ़ाई जाती थी, क्योंकि उच्च शिक्षा के लिए अरबी आवश्यक मानी जाती थी। पाठ्यक्रम में विभिन्न विषय शामिल थे, जिनका अध्ययन मदरसे में उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक समझा जाता था।

बिहार में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की जानकारी हमें ''खुलासतुल मकातिब'' नामक ग्रंथ की पांडुलिपि से मिलती है, जिसे मौलाना अबुल हसनात नदवी ने देसना, बिहार शरीफ के पुस्तकालय में खोजा था। यह ग्रंथ संभवतः औरंगजेब के शासन के बयालीसवें वर्ष में किसी हिंदू लेखक द्वारा लिखा गया था। इसके अनुसार माध्यमिक स्तर पर विशेष रूप से नीति और नैतिकता की शिक्षा दी जाती थी।

मदरसे और उच्च शिक्षा :–

मदरसे आधुनिक कॉलेजों के समान थे। इनमें कला और विज्ञान की उच्चतम शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि धार्मिक शिक्षा उच्च अध्ययन की रीढ़ थी, फिर अन्य विषय भी पढ़ाए जाते थे। बरनी के अनुसार, ''सुल्तान महमूद के राज्य में केवल कुरआन की टीका (तफसीर), हदीस और फिक्ह की शिक्षा को सार्वजनिक रूप से पढ़ाने की अनुमति थी।''

मदरसे के पाठ्यक्रम में व्याकरण, तर्कशास्त्र, साहित्य, धर्मशास्त्र, तत्वमीमांसा, न्यायशास्त्र और चिकित्सा जैसे विषय सम्मिलित थे।

अकबर ने खगोलशास्त्र, गणित, चिकित्सा और दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया। अबुल फज़ल के अनुसार उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में नैतिकता, गणित, कृषि, ज्यामिति, खगोलशास्त्र, शासन के नियम, चिकित्सा, तर्कशास्त्र और इतिहास जैसे विषय शामिल थे। बदायूंनी लिखते हैं कि अकबर के समय अरबी शिक्षा को हतोत्साहित किया गया और खगोलशास्त्र, दर्शन, चिकित्सा, गणित, कविता और इतिहास को प्रोत्साहन मिला।

परीक्षा प्रणाली :–

परीक्षा प्रणाली सरल थी। विद्यार्थियों की योग्यता का मूल्यांकन वाद–विवाद और चर्चा के माध्यम से किया जाता था। सफल विद्यार्थियों को रस्म–ए–दस्तारबंदी नामक समारोह में पगड़ी पहनाई जाती थी, जो आज के दीक्षांत समारोह के समान था। नियमित परीक्षाओं और डिग्रियों की कोई व्यवस्था नहीं थी। प्रसिद्ध मदरसे या विद्वान के अधीन अध्ययन करना ही सबसे बड़ी योग्यता मानी जाती थी।

पुस्तकालय और महिला शिक्षा :–

मस्जिदों, खानकाहों और मदरसों के पुस्तकालय इस्लामी और सांसारिक शिक्षा के केंद्र थे। भागलपुर और फुलवारी शरीफ की खानकाहों के पुस्तकालय विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

मध्यकालीन बिहार में मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा में भी क्रमिक प्रगति हुई। यद्यपि पर्दा प्रथा के कारण औपचारिक शिक्षा सीमित थी, फिर भी उच्च और संपन्न वर्ग की लड़कियां निजी शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करती थीं। कुछ निजी घरों में लड़कियों के लिए भी मकतब थे, जहां शिक्षित वृद्ध महिलाएं पढ़ाती थीं। इसके अतिरिक्त लोककथाएं और शिक्षाप्रद कहानियां भी महिलाओं की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम थीं।

मुस्लिम शिक्षा के केंद्र :–

पटना को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केंद्र होने का गौरव प्राप्त था। प्रांतीय राजधानी होने के कारण यह विद्वानों और कवियों का मिलन स्थल था। 17वीं शताब्दी के लेखक मुहम्मद सादिक, जो सुबह–ए–सादिक के रचयिता थे, चार वर्षों तक इस नगर में रहे और यहां के अनेक विद्वानों तथा संतों से शास्त्रार्थ किया। उन्होनें अपने ग्रंथ में उन अनेक विद्वानों, कवियों, सुलेखकों और कलाकारों का उल्लेख किया है जो पटना में रहते थे या कुछ समय के लिए वहां ठहरे थे। इनमें मौलाना मुहम्मद हुसैन कश्मीरी, मिर्ज़ा मुहम्मद हुसैन, हकीम आरिफ और मौलाना हमीदुद्दीन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यह नगर अन्य स्थानों से आने वाले कवियों और साहित्यकारों का भी स्वागत करता था। इनमें मौलाना नदीम गिलानी, मिर्ज़ा कासिम इमामी इस्फहानी, मीर मुहम्मद सईद रिदाई, इब्राहीम हुसैन काबुली और मीर हबीबुल्लाह प्रमुख थे। 17वीं शताब्दी के गुजराती यात्री और विद्वान अब्दुल लतीफ, जिन्हें शाहजहां के ससुर अबुल हसन (आसफ खान) का संरक्षण प्राप्त था, ने भी पटना की प्रशंसात्मक चर्चा की है।

बिहार शरीफ और मनेर जैसे स्थान भी प्राचीन और प्रभावशाली शैक्षिक एवं साहित्यिक केंद्र थे। बिहार शरीफ के मिर्दाद मोहल्ले में काज़ी दाइमुल्लाह का मदरसा, बाढ़ में शम्सुल हक उर्फ बदहक्कानी का मदरसा, राजगीर में मुल्ला मंसूर दानिशमंद और मुल्ला अब्दुस्सामी के मदरसे, फुलवारी शरीफ में अताउल्लाह ज़ेनबी का मदरसा तथा गया जिले के अमथुआ में मुल्ला शफ्फ और मुल्ला अफाक का मदरसा अत्यंत प्रसिद्ध थे। इन

संस्थानो में दूर–दूर से विद्वान और छात्र अध्ययन के लिए आते थे। अमझर, शेरघाटी और हाजीपुर भी ऐसे ही महत्वपूर्ण केंद्र थे।

मुगल काल में बिहार सूबे में विभिन्न स्थानों पर अनेक प्रसिद्ध मुस्लिम शिक्षण संस्थान फैले हुए थे। इस प्रदेश ने इस्लामी कानून और धर्मशास्त्र. के कई महान् विद्वान भी उत्पन्न किए, जिनके योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण थे। उनकी विद्वता की ख्याति इतनी थी कि दिल्ली के सम्राट भी उन्हें अपने दरबार में आमंत्रित करते थे। पटना और भागलपुर के मदरसे विशेष रूप से प्रसिद्ध थे और देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थियों को आकर्षित करते थे।

सैफ़ खान (1628–32) के शासनकाल में पटना में शिक्षा और अध्ययन के प्रसार के लिए एक मदरसे की स्थापना हुई। इसमें उस समय के श्रेष्ठ विद्वान अध्यापक नियुक्त थे। गंगा नदी के तट पर, किले के पश्चिम में स्थित यह मदरसा एक भव्य भवन था। इससे संबद्ध मस्जिद आज भी सुरक्षित अवस्था में है, यद्यपि अध्यापकों और विद्यार्थियों के निवास–स्थलों के केवल अवशेष ही बचे हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक यह मदरसा शिक्षा का प्रमुख केंद्र बना रहा और इसके प्रधानाचार्य को मुस्लिम कानून का प्रामाणिक विद्वान माना जाता था।

भागलपुर भी बिहार का एक अन्य महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र था। यहां कई संत परिवार थे, जिनके सदस्य शिक्षण को अपना पवित्र कर्तव्य मानते थे और ज्ञान विकास में लगे रहते थे। धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए उनके अपने संस्थान थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध मदरसा मौनलाना शाहबाज द्वारा जहांगीर के शासनकाल में स्थापित किया गया। यह प्राथमिक और उच्च इस्लामी शिक्षा का आवासीय मदरसा था। शाहजहां के समय इसे व्यापक जागीरें प्रदान की गईं, जिनकी आय से विद्यार्थियों के भोजन और आवास की व्यवस्था होती थी। इस मदरसे की इमारत आज भी मुल्ला चक मोहल्ले में विद्यमान है। अपने जीवन काल में मौलाना शाहबाज के पास लगभग दो सौ विद्यार्थी अध्ययन करते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशंजों ने इस संस्था को सफलतापूर्वक संचालित किया और इसे विद्या केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित बनाए रखा। उनके पौत्र मौलाना मुहम्मद आसिम के समय यह मदरसा विद्वानों और धर्मपरायण व्यक्तियों का एक संघ बन गया।

हिंदुओं में शिक्षा :–

बिहार में मुस्लिमों के आगमन से पूर्व शिक्षा की व्यवस्था ब्राह्मणीय और बौद्ध परंपराओं पर आधारित थी। दोनों का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति और चरित्र निर्माण था। मध्यकालीन बिहार में हिंदू शिक्षा मुख्यतः पाठशालाओं, टोलों (महाविद्यालयों) और निजी शिक्षकों के माध्यम से दी जाती थी। शिक्षा के दो स्तर थे– प्राथमिक और उच्च। सामान्यतः टोल उच्च शिक्षा के केंद्र होते थे, जबकि पाठशालाएं प्राथमिक शिक्षा प्रदान करती थीं।

एक टोल प्रायः एक छप्परदार कक्ष होता था, जहां गुरू और शिष्य अध्ययन करते थे और उसके चारों ओर मिट्टी की झोपड़ियां होती थीं, जिनमें विद्यार्थी सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। प्रत्येक छात्र की झोपड़ी में केवल एक पीतल का जलपात्र और एक चटाई होती थी। विद्यार्थी आठ–दस वर्षों तक टोल में रहकर अध्ययन करते थे। गुरू प्रतिदिन प्रातः से सूर्यास्त तक पढ़ाने आते थे। कोई शुल्क नहीं लिया जाता था; बल्कि गुरू ही छात्रों को भोजन और वस्त्र की व्यवस्था करते थे, जो उन्हें दान और अनुदानों से प्राप्त होता था।

पाठशालाएं प्राथमिक शिक्षा देती थीं। यहां विद्यार्थी दिन–विद्यार्थी या आवासीय होते थे। समय–समय पर शैक्षिक वाद–विवाद, कवि–सम्मेलन और कीर्तन भी होते थे, जो शिक्षा को परिष्कृत करते थे। काव्यशास्त्र में

निपुणता के बाद विद्यार्थी रचना, तर्क और दर्शन तथा पांच विद्याओं– शब्द विद्या, शिल्पस्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या और आध्यात्म विद्या का अध्ययन करते थे। इसके बाद उच्च और विशिष्ट अध्ययन किया जाता था।

उच्च शिक्षा चतुष्पाठ या टोलो में दी जाती थी, जहां व्याकरण, धर्मशास्त्र, पुराण और दर्शन पढ़ाए जाते थे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। पाठ्यक्रम में काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, छंद, निरूक्त और न्याय दर्शन सम्मिलित थे। कुछ संस्थानो में वेद, पुराण, विभिन्न दर्शन–प्रणालियां, चिकित्सा, खगोल, इतिहास और भूगोल भी पढ़ाए जाते थे। संगीत, भक्ति–योग, अलंकार, कोश, यंत्र और मल्ल–विद्या भी कुछ स्थानों पर पढ़ाई जाती थी। नियमित परीक्षाओं की कोई व्यवस्था नहीं थी। अध्ययन पूर्ण होने पर उपाध्याय, महोपाध्याय, महामहोपाध्याय, सार्वभौम आदि उपाधियां प्रदान की जाती थीं। मिथिला में शलाका परीक्षा (सूई परीक्षा) अत्यंत कठिन मानी जाती थी। दरभंगा दरबार में धौत परीक्षा भी प्रचलित थी।

शिक्षा शुल्क के विषय में हिंदू आदर्शों के अनुसार गुरू धन लेकर शिक्षा नहीं देता था। शिक्षा देना उसका पवित्र कर्तव्य माना जाता था। अध्ययन के अंत में विद्यार्थी गुरू को द्रव्य, वस्तु या सेवा के रूप में दक्षिणा देते थे।

यद्यपि महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं थी, फिर भी अनेक शिक्षित स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं। मधुमाल ग्रंथ में राजकुमारी मधुमति की शिक्षा का वर्णन है। मिथिला की लक्ष्मी देवी, विश्वास देवी और चंद्रकला देवी जैसी विदुषी स्त्रियां दर्शन और साहित्य में निपुण थीं। दाउद की चंदायन और कुतुबन की मृगावली भी शिक्षित नायिकाओं का चित्र प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष :–

प्रारंभ में मध्ययुगीन शिक्षा प्रणाली राजनीतिक उद्‌देश्यों से अभिप्रेरित थी, परंतु धीरे–धीरे उसमें ठोस परिवर्तन हुये, जिसका उद्‌देश्य ज्ञान प्राप्त करना था। हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्गों ने इसको समान रूप से ग्रहण कियां मध्यकाल में देश की सभी शिक्षण संस्थाओ में पाठ्यक्रम तथा शिक्षा पद्धति लगभग एक ही प्रकार की थी, परंतु विभिन्न शासकों के समय इनमें कुछ परिवर्तन हुए, जैसे फिरोज तुगलक, अकबर, औरंगजेब आदि। जिन्होनें शिक्षा के व्यावसायिक स्वरूप की ओर ध्यान दियां। मध्यकालीन शिक्षा विकास के फलस्वरूप कई तरह के सामाजिक बदलाव आये। कुछ सामाजिक समस्याओं ने जन्म दिया तो कुछ परंपरात्मक बोध का अस्तित्व समाप्त हुआ।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रसीद, ए सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया (1206–1556), फर्म के.जे. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1969
2. श्रीवास्तव, ए.एल., मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, 1954
3. हुसैन, युसुफ, ग्लिम्पसेज ऑफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1959
4. श्रीवास्तव, ए.एल., मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, 1964
5. गुप्त, शिवकुमार, मध्यकालीन भारत समाज एवं संस्कृति।

6. झा, जयंशंकर, प्राचीन भरत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2004,
7. मुंशी, के.एम., द स्ट्रगल ऑफ द इम्पायर, भाग–58
8. सिन्हा, रंजन, आस्पेक्ट्स ऑफ सोसाइटी एण्ड इकॉनोमी ऑफ बिहार, पटना, 1989
9. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भाग 30, 1944
10. झा, अमरजीत; बिहार एक खोज (अतीत से वर्तमान), बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2021
11. अहमद, इमत्याज, अहसन कमर; बिहार : एक परिचय, नेशनल पब्लिकेशंस, पटना, 2014
12. डॉ. प्रसाद, कामेश्वर; भारत का इतिहास (1526–1757), भारती भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2011
13. राय, कौलेश्वर, बिहार का इतिहास, किताब महल, नई दिल्ली, 2021
14. दास, प्रमोदानंद एवं कुमार, अमरेन्द्र; बिहार इतिहास एवं संस्कृति, ल्यूसेंट पब्लिकेशन, पटना, 2008

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 71-79
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

कुषाण कालीन मथुरा कला शैली के बौद्ध प्रतिमाओं का अध्ययन

वसीमा खातून
शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

मथुरा में ललित कला के विकास का एक लंबा इतिहास रहा है। भारत का प्राचीन धार्मिक तथा व्यापारिक केंद्र होने के कारण मथुरा में ईसवी सन से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्ति कला का प्रारंभ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला केंद्र के रूप में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कला शैली बन गई थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्त रूप हमें मथुरा की प्राचीन कला में दिखलायी पड़ता है। शक और कुषाण वंशी राजाओं के शासनकाल में मथुरा की मूर्ति कला को अधिक विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय से जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण इन तीनों प्रधान धर्म को यहाँ के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ–साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कहीं जा सकती है। ईस्वी पूर्व पहले शती से लेकर गुप्त काल के अंत तक उक्त तीनों धर्म से संबंधित कलावशेष बड़ी संख्या में यहाँ से उपलब्ध हुए हैं।

मथुरा मूर्ति कला का उद्‌गम :

ईस्वी सन् की पहली सदी में, उत्तर भारत में मथुरा तथा दक्षिण भारत में अमरावती, बौद्ध मूर्ति कला के सजीव केंद्र बन गये। मथुरा एवं अमरावती के बौद्ध मूर्तिकला के केंद्र बनने के परिणामस्वरुप मथुरा शैली एवं अमरावती शैली विकसित हुई। कुषाण युग से मथुरा मूर्ति कला शैली का प्रारंभ हुआ। गुप्तकाल में यह शैली अपने विकास की चरम अवस्था में पहुँच गई। मथुरा की बुद्ध मूर्तियाँ भारत की कला का शुद्ध रूप है। मथुरा की कला में बनाई गई प्रतिमाएँ सारनाथ, श्रावस्ती एवं कौशांबी से प्राप्त हुई हैं।

मथुरा कला शैली के विकास का इतिहास –

मथुरा कला शैली में कला के विकास को साधारणतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक कुषाण शासकों का काल जब मथुरा कला अपने विकास की चरमता को प्राप्त कर चुकी थी। यद्यपि तब बौद्ध धर्म की प्रधानता थी फिर भी कुषाण सम्राट हिंदू एवं जैन धर्मों को भी आश्रय देते रहे। अतएव इस समय यहाँ बौद्ध, हिंदू एवं जैन तीनों धर्मों के देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगी थीं। दूसरा काल क्षत्रपों के शासन का है। इस समय कला उतार की अवस्था पर आ गई थी। इसका प्रमुख कारण था कि तक्षशिला के क्षत्रप अपने साथ वहाँ

से कारीगर लाए थे। वे गांधार कला से प्रभावित थे। पर मथुरा केंद्र में अपनी देशी कला की इतनी प्रधानता थी कि उनके प्रयासों पर भी वह गांधार कला में घुल मिल नहीं पायी।[1]

कुषाण काल में मथुरा कला का एक प्रमुख केंद्र था, जहाँ अनेक स्तूपों, विहारों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। इस समय तक शिल्पकारी एवं मूर्ति निर्माण के लिए मथुरा के कलाकार दूर–दूर तक प्रख्यात हो चुके थे। दुर्भाग्यवश आज वहाँ एक भी विहार शेष नहीं है। किंतु यहाँ से अनेक जैन, बौद्ध एवं हिंदू धर्म से संबंधित मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से अधिकांशतः कुषाण युग की हैं। कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के काल में मथुरा कला का सर्वोत्कृष्ट विकास हुआ। प्रारंभ में यह माना जाता था कि गंधार की बौद्ध मूर्तियों के प्रभाव एवं अनुकरण पर ही मथुरा के बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ था, परंतु अब स्पष्टतः सिद्ध हो चुका है कि मथुरा की बौद्ध मूर्तियाँ गंधार से सर्वथा स्वतंत्र थी तथा उनका आधार मूल रूप से भारतीय ही था। वासुदेव शरण अग्रवाल के मातानुसार सर्वप्रथम मथुरा में ही बौद्ध मूर्तियों का निर्माण करवाया गया जहाँ इसके लिए पर्याप्त धार्मिक आधार था।[2]

मथुरा कला के विषय और तकनीक का परिष्कृत रूप कला के क्षेत्र में दीर्घकालिक अभ्यास की ओर संकेत करता है। कुषाण कालीन मथुरा के कलाकारों ने भरहुत तथा साँची के कलाकारों से प्रेरणा ग्रहण की। मथुरा के कलाकारों ने अपनी मौलिक सूझ–बूझ एवं रचनात्मक प्रतिमा का उपयोग करते हुए वहाँ कला के प्रतिको, अभिप्रायों एवं प्रतिमाओं को नवीन रूप प्रदान किया।

कला सामग्री – मथुरा कला मूलतः देशी कला का केंद्र था। मथुरा कला के लिए जिस आधार सामग्री का प्रयोग किया गया है वह सीकरी तथा रूपबास नामक स्थान से प्राप्त पत्थर हैं। यही सामग्री कुषाण तथा गुप्त काल में भी इस केंद्र में प्रयोग होती रही है। यह बलुआ लाल चित्तीदार पत्थर है। इसी से इसे Red Spotted Sand Stone कहते हैं।[3] मथुरा कला में लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग केवल सौंदर्य के लिए ही नहीं किया गया था बल्कि वह स्थानीय पहचान को भी दर्शाता है। समय के प्रभाव से इन पत्थरों का रंग धीरे–धीरे हल्का पड़ने लगा। इसी से पत्थर के ऊपर रंगों की उतनी चमक अब दिखाई नहीं पड़ती है।

मथुरा कला की विशेषताएँ –

मथुरा कला की विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है :–

1. इस शैली की मूर्तियाँ बनाने के लिए मूर्तिकार ने लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया, जो मथुरा के आसपास आगरा, फतेहपुर, सीकरी, रुपबास आदि स्थानों में बड़ी संख्या में प्राप्त होता था। इस पत्थर पर सफेद चित्तियाँ थी। यही पत्थर इस मूर्ति शैली की विशेषता बनी।
2. महात्मा बुद्ध की प्रारम्भिक मूर्तियाँ खड़ी मुद्रा में बनाई गई, जिससे ये मूर्तियाँ अपने कद के कारण जनता में प्रिय बनी और इस शैली की मूर्तियों की एक विशेषता भी बनी।
3. मथुरा शैली की अनेक मूर्तियों के सिर मुंडित हैं या फिर नखाकृति केशों की है।
4. इस शैली की मूर्तियाँ जो बुद्ध–बोधिसत्व कहलाती हैं, उनका आधा शरीर ढका हुआ बनाया गया है। इस कारण यह दूसरी मूर्तियों से अलग दिखाई पड़ती हैं।
5. इस शैली की मूर्तियों के वस्त्र शरीर से चिपके हुए बनाए गये हैं। उनकी धारियाँ तथा सिलवटें उत्तम कला विधि से दर्शायी गयी हैं जो दर्शनीय है।

6. इस शैली की मूर्तियों के अग्र भाग को खूब उभारा गया है और उसका अछूते ढंग से प्रदर्शन भी किया गया है जिसे देखते ही बनता है।

7. इस शैली की मूर्तियों में धन–गात्रता तथा भौतिकवादीता को उभारा गया है जो इस शैली की एक विशेषता कही जाती है।

8. मथुरा कला शैली की कतिपय मूर्तियों में गांधार मूर्ति कला के भावों की छाप दिखाई देती है।

9. मथुरा की कला में भरहुत की लोक शैली और साँची की उन्नत नागर शैली का सुंदर समन्वय हुआ है। कहीं–कहीं यूनानी प्रभाव भी परिलक्षित होता है। मथुरा कला शैली में हमें सर्वधर्म (बौद्ध, जैन, हिंदू) से संबंधित मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। जो उस समय की धार्मिक सहिष्णुता की भावना को दर्शाती है।

मथुरा की बौद्ध कला :

मथुरा कला में विभिन्न संप्रदायों से संबंधित विषयों की प्रधानता है, पर उनमें बौद्ध धर्म का उल्लेखनीय स्थान है। इस केंद्र में बौद्ध वास्तु और मूर्तिशिल्प दोनों के ही उदाहरण मिलते हैं, कुषाण काल से पहले शुंग काल में बुद्ध को साँची भरहुत आदि की कला में केवल प्रतीकों (धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, चरणपादुका) आदि के माध्यम से दर्शाया गया था। कुषाण काल में ही पहली बार बुद्ध को मानव रूप में प्रदर्शित किया गया है। हीनयान के प्रतीकों का स्थान महायान के उदय ने अब स्वयं बुद्ध और बोधिसत्वों को दे दिया। जिन और बुद्ध की समाधिस्थ मूर्तियाँ पद्मासन में बैठी साहित्य का धन बनी। कालिदास ने अपने कुमार संभव में शिव की समाधि में उन्हें अमर कर दिया।[4]

बुद्ध मूर्ति का प्रथम निर्माण तथा प्रारंभ :

भगवान बुद्ध की पूजा कुषाण काल के कई शताब्दी पहले ही आरंभ हो चुका था पर वह उनके प्रतीकों की पूजा तक ही सीमित था, कुषाण काल से पहले बुद्ध की मूर्ति का निर्माण नहीं हुआ था। शुंग काल के अंत तक हम यही स्थिति पाते हैं। साँची, भरहुत, बोधगया, सारनाथ आदि स्थानों से उस समय तक की जितनी बौद्ध कलाकृतियाँ प्राप्त हुई है उन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप, भिक्षापात्र आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्त रूप में भगवान बुद्ध का पूजन कहीं नहीं है। मथुरा में हिंदुओं के बलराम आदि देवों तथा जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हो चुका था। बौद्ध धर्मानुयायियों में भी अपने देवों को प्रतिमा के रूप में देखने का उमंग उठना एक स्वाभाविक बात था और इसी भावना से बुद्ध मूर्ति का निर्माण हुआ।[5] मथुरा के कुषाण शासक मूर्ति निर्माण के प्रेमी थे और उस समय यहाँ भक्ति प्रधान महायान धर्म प्रबल हो उठा था। फलस्वरुप कुषाण काल में मथुरा के शिल्पियों द्वारा भगवान बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण हुआ।

बुद्ध की खड़ी और बैठी हुई मुद्रा में प्रतिमा

(स्रोत : बुद्धिज्म इन मथुरा, चित्र 19, 20, 21, बुद्ध)

बौद्ध धर्म में भी वस्तुतः मूर्ति निर्माण से पर्याप्त समय पूर्व भक्ति आंदोलन का आरंभ हो गया था। किंतु कुछ समय तक केवल प्रतीकों द्वारा बुद्ध का अंकन किया जाता था। जब प्रतीक पूजा अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई तब मूर्ति निर्माण के लिए अवसर उपस्थित हो गया। भरहुत, साँची और बोधगया में बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं है। गंधार तथा मथुरा से प्राप्त बहुसंख्यक बुद्ध की मूर्तियों में एक भी कनिष्क से पूर्वकाल की नहीं है। सबसे पहले बुद्ध की मूर्ति कनिष्क के राज्यकाल में बनीं और इन पर कुषाण संवत् की तिथियाँ दी गई है। कनिष्क ने ही सबसे पहले ऐसा सिक्का चलाया जिस पर बुद्ध की मूर्ति है और उसकी पहचान देते हुए इन सिक्कों पर बोडडो नाम भी ग्रीक अक्षरों में लिखा है।[6]

सारनाथ की महाकाय बोधिसत्व मूर्ति की स्थापना कनिष्क के राज्यकाल के तीसरे वर्ष में हुई। यह मूर्ति परखम यक्ष मूर्ति जैसी कद्दावर, भारी भरकम है और वैसी ही दिखती है। इसलिए यह कहना युक्ति–युक्त है कि जब बोधिसत्व मूर्ति बनाने का प्रश्न आया तो शिल्पियों ने परखम यक्ष के रूप में तैयार नमूने को अपना लिया। सारनाथ की बोधिसत्व मूर्ति के बाद एक दूसरे मूर्ति कौशांबी से मिली है जो कनिष्क के राज्य काल के दूसरे वर्ष की है और मथुरा के लाल चित्तीदार पत्थर से बनी है। इन दो मूर्तियों से ज्ञात होता है कि जैसे ही कनिष्क सिंहासन पर बैठे मथुरा के शिल्पी बोधिसत्व की महाप्रमाण प्रतिमा बनाने लगे। इन दो मूर्तियों के बाद कनिष्क के संवत्सर में बनी हुई और भी कई मूर्तियाँ क्रम में रखी जा सकती हैं। फिर वशिष्क, हुविष्क और वासुदेव के चढ़ते हुए वर्षों की अनेक मूर्तियाँ हैं जिनके निर्माण का सिलसिला ही मथुरा की शिल्पशालाओं में जारी हो गया।[7]

सारनाथ से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमा

(स्रोत : बुद्धिज्म इन मथुरा, चित्र 16, बोधिसत्व सारनाथ)

कुषाण कालीन बुद्ध प्रतिमाओं की विशेषताएँ :

लोक–प्रवृत्ति, धर्माचार्यों का मार्गदर्शन तथा शासकीय आज्ञा इन तीनों के संयोग से कुषाण काल में जो बुद्ध प्रतिमा विशेषकर मथुरा कला में निर्मित हुई, उसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है :

1. **मुंडित सिर तथा उष्णीष का अभाव।** उष्णीष के स्थान कपर्दिन केश दृष्टिगोचर होता है। कालांतर में

उष्णीष महापुरुषों का लक्षण माना गया। महापदान सूक्त में 'उणहीस सीसो' का वर्णन आता है। निदान कथा में दो इंच लंबे केश का वर्णन है। जिस आधार पर मथुरा के कलाकारों ने बुद्ध के सिर पर उष्णीष तैयार किया।[8]

2. **भौंहों के बीच में उर्णा अर्थात् एक वर्तुलाकार चिन्ह।** यह भी महापुरुषों का एक विशेष लक्षण है। ललितविस्तर के अनुसार मारपराजय के समय बोधिसत्व सिद्धार्थ की उर्णा से एक ज्योति प्रकट हुई थी, जिसके कारण मारभवन कंपित हो उठे थे। कुषाण कालीन बुद्ध प्रतिमा में यह उर्णा चिन्ह अनपवाद रुप से बना होता है। कहीं कहीं पर उर्णा के स्थान पर एक गड्ढा है। स्पष्ट है कि यहाँ किसी समय कुषाण यह कुषाणोत्तर काल में उर्णा से प्रकट होने वाले प्रकाश के प्रतिक–स्वरुप कोई रत्न जड़ा गया हो।[9]

3. पूर्णतया खुला हुआ नेत्र और मुख पर हलका स्मित है तथा शरीर से सटा हुआ सिलवटदार उत्तरीय। मूँछ का अभाव है दाहिना तथा कंधा वस्त्र रहित है।

4. खड़ी मूर्ति में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में। बाएँ हाथ से उत्तरीय के दोनों सिरों को पकड़े। बैठी प्रतिमा में बायाँ हाथ जांघें पर स्थित। केहुनी सदा शरीर से पृथक। गहरा नाभिस्थल तथा वस्त्र में नदी की लहर सदृश प्रत्यावर्तन।

5. शरीर कोमलता से रहित परंतु शक्तिपूर्ण (जैसे मल्ल योद्धा) तथा प्रभामंडल सदा अथवा परिधि पर अर्द्धवृत्त की बनावट।[1]

बौद्ध मूर्तियों के प्रकार

बुद्ध तथा बोधीसत्व की प्रतिमा :

मथुरा से बुद्ध तथा बोधिसत्व की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई मूर्तियाँ मिली हैं। उनके व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिलता है। बुद्ध मूर्तियों में कटरा से प्राप्त मूर्ति विशेष रुप से उल्लेखनीय है। कटरा बोधिसत्व मूर्ति के विश्लेषण से निम्नांकित प्रतिमा लक्षण प्राप्त होते हैं :

1. बोधी वृक्ष के नीचे सिंहासन पर बैठे हुए बुद्ध, जैसे वे अपने वास्तविक जीवन में थे।
2. पद्मासन मुद्रा में बैठी मूर्ति, दोनों पैरों को पर्यस्त आसन में लगाना यही योगीयों का पद्मासन था। भारतीय धर्म और कला में यह मुद्रा पूर्वकाल से विदित थी।
3. दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बयाँ हाथ बाएँ पैर पर रखा हुआ है। हाथों की यह मुद्रा यक्ष मूर्तियों में भी थी। अभय मुद्रा भी शुद्ध भारतीय कल्पना है। यूनानी कला में इसकी कुछ संगति नहीं।
4. हथेली और तलवों पर धर्मचक्र और त्रिरत्न के चिन्ह हैं। उनकी महापुरुष लक्षणों में गिनती थी।

5. मस्तक के ऊपर उष्णीष या प्रज्ञा का महादेव जो केशों से ढका होने के कारण कपर्द भी कहा जाता था। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपनी केश देते समय देवों के अनुरोध से एक लट रहने दी थी। मथुरा की इन कपर्द मूर्तियों के केश में वैसा कुंचितपन या बाँकापन नहीं है जैसा गांधार की मूर्तियों में। इस भाँति के केश को मुंडित मस्तक कहा जाता है जिसके केवल मध्य भाग में उष्णीष के ऊपर कुछ लटें छुटी हैं। भ्रु–मध्य में उर्णा चिन्ह है जो रोयों की गोल चकरी के तुल्य है।

6. मस्तक के पीछे एक सादा तेज चक्र है जिस पर बाँगड़ियों के कटाव की गोट है।

7. वस्त्रों में नीचे धोती है जो ऊपरी सिरे पर पटके से बँधी हुई है जैसे यक्ष मूर्तियों में मिलती है। ऊर्ध्व काय संघाटी से आच्छादित है जिसमें दाहिना कंधा खुला है अतः जिसे एकांसिक कहते थे। बाएँ कंधे और भुजा पर

संघाटी की कुछ सिकुड़न दिखाई जाती है।

8. बुद्ध के दोनों ओर चामरग्राही पुरुष खड़े हुए हैं। उनका वेश गृहपतियों जैसा है। आरंभकालीन मूर्तियों में उन्हें ब्रह्मा और इंद्र, या अवलोकितेश्वर एवं मैत्रेय, नहीं कहा जा सकता।

9. ऊपर के दोनों कोनों में आकाशचारी देव हैं जो बुद्ध के ऊपर दिव्य पुष्प वृष्टि करते हुए दिखाए गए हैं।[11]

अभय मुद्रा में कटरा से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमा

चित्र ३२८ कटरा बुद्ध

(स्रोत : भारतीय कला, चित्र 327, कटरा बुद्ध)

ऊपर की इन लक्षणों में से केवल प्रभामंडल को छोड़ प्रत्येक की परंपरा भारतीय धार्मिक इतिहास के अंतर्गत पाई जाती है। उनमें से कुछ का संबंध योगियों और कुछ का चक्रवर्तियों से था। बुद्ध मूर्ति की रचना की लिए दोनों धाराओं का संगम हुआ।

अभय मुद्रा में आसीन बुद्ध की एक मूर्ति अन्योर से मिली है जिसे 'बोधिसत्व' की संज्ञा दी गई है इस पर कनिष्क संवत 51 अर्थात् 129 ईस्वी की तिथि अंकित है।[12]

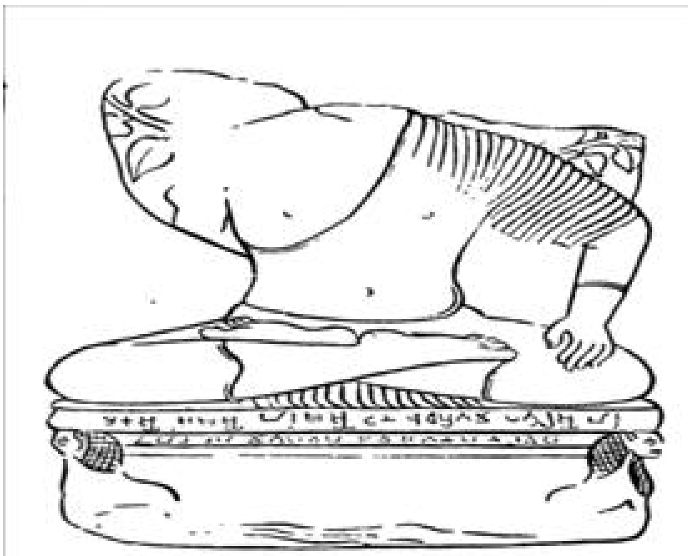

चित्र ३२९ अन्योर बुद्ध

(स्रोत : भारतीय कला, चित्र 321, अन्योर बुद्ध)

बोधिसत्व मैत्रेय :

भविष्य में अवतार लेने वाले बुद्ध है। मान्यता के अनुसार शाक्य बुद्ध के परिनिर्वाण के चार हजार वर्ष पश्चात उनका जन्म होगा। जिनकी कई मूर्तियाँ कुषाण कला में मिली हैं। यह मूर्ति खड़ी मुद्रा में बाएँ हाथ में अमृत कलश लिये हुए बनाई जाती थी, दाहिना हाथ अभयमुद्रा में रहता था। सब प्रकार से इसके लक्षण मुख्य खड़ी हुई बोधिसत्व मूर्तियों से मिलती हैं पर मूर्तियाँ आकार में छोटी है और न वे मांसल हैं।[13]

चित्र ३३० मैत्रेय

(स्रोत : भारतीय कला, चित्र 330, मैत्रेय बुद्ध)

अवलोकितेश्वर – आलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्तियाँ मथुरा कला में बहुत कम मिलती है।

काश्यप बुद्ध :

काश्यप बुद्ध को सप्तमानुषी बुद्ध में गिना जाता है। इनकी मूर्ति भी मथुरा शिल्प में मिली है। ये मूर्तियाँ सफेद चित्तीदार, लाल एवं रवादार पत्थर से बनी हैं।

चित्र ३३१ काश्यप

(स्त्रोत : भारतीय कला, चित्र 331, काश्यप बुद्ध)

मथुरा कला में अंकित बुद्ध के जीवन की घटनाएँ :

बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाएँ भी स्तंभों पर मिलती हैं। जन्म, अभिषेक (जिसमें ठंडी और गर्म पानी की दो सोते नन्द और उपनंद दो नागों के रूप में चित्रित किए गए हैं, महाभिनिष्क्रमण, संबोधि, इंद्र द्वारा इंद्रशैल गुफा में बुद्ध दर्शन, धर्मचक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण– इसमें कुशीनगर के दो साल वृक्षों के बीच बुद्ध लेते हुए हैं। पैरों के पास भिक्षु और कुशीनगर मल्ल खड़े हैं और पलँग के पास भूमि पर उनका शिष्य बैठा है, आदि जीवन की विविध घटनाओं का कुशलतापूर्वक अंकन मथुरा के शिल्पियों द्वारा किया गया है।[14]

महापरिनिर्वाण का दृश्य :

जन्म की कथा :

बुद्ध के जन्म तथा महापरिनिर्वाण का दृश्य

(स्रोत : बुद्धिज्म इन मथुरा, चित्र 37–38)

मथुरा के कुशाग्र शिल्पियों को इस बात श्रेय है कि वे बाहरी प्रभाव का खुले ह्रदय से स्वागत कर रहे थे। इसी उदार भावना से उन्होंने कितने ही यूनानी एवं इरानी धर्म और कला के अभिप्रायों को अपना कर अपनी कला में सम्मानित स्थान दिया। यहाँ के कलाकारों ने इरानी तथा यूनानी कला के कुछ प्रतीकों को भी ग्रहण कर उन पर भारतीयता का रंग चढ़ा दिया। यहीं कारण है कि मथुरा के कुछ बुद्ध मूर्तियों में गांधार मूर्तियों के लक्षण दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम कह सकते है कि मथुरा कला में विभिन्न देवताओं तथा धर्मों की मूर्तियाँ पायी गयी हैं। परंतु बौद्ध धर्म से संबंधित मूर्तियों की प्रधानता अधिक है। इसका प्रमुख यह हो सकता है कि प्रथम शताब्दी ईस्वी में मथुरा कुषाणों की द्वितीय राजधानी बनी। कनिष्क ने बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदायों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया और मथुरा कला में बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण करवाया। यह कला शीघ्र ही गांधार कला की तरह समाप्त नहीं हुई, इसका अस्तित्व गुप्त काल तक बना रहा। मथुरा कला शैली ने आगे चलकर गुप्तकालीन बौद्ध कला के लिए आधार तैयार किया। यद्यपि गुप्त सम्राटों का प्रमुख केंद्र सारनाथ बन गया फिर भी उसके साथ मथुरा का केंद्र भी अपनी प्राचीन शैली में कुछ परिवर्तनों के साथ जीवित रहा, क्योंकि मथुरा कला भारतीय कला की आत्मा से जुडी विरासत है। इसकी महानता कला क्षेत्र के साथ भारतीयों के लिए कृष्ण की जन्म भूमि होने के कारण भी है। इसी से कृष्ण की मूर्तियाँ यहाँ अन्य मूर्तियों के साथ अधिक संख्या में मिलती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सहाय शिवस्वरूप. 2006–2007. भारतीय कला. इलाहाबाद : स्टूडेंट्स फ्रेंड्स. पृ. 66
2. श्रीवास्तव, के. सी. 1991. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति. इलाहाबाद : यूनाइटेड बुक डिपो. पृ. 356
3. सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त. पृ. 67
4. उपाध्याय, भगवतशरण. 1980. भारतीय कला की भूमिका. नई दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग पृ. 63
5. वाजपेयी, कृष्णदत्त. 1955. मथुरा. लखनऊ : पृ. 33
6. अग्रवाल, वी. एस. 1966. भारतीय कला. वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन. पृ. 286
7. वही, पृ. 287
8. उपाध्याय, वासुदेव. 1970. प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान. वाराणसी : चौखम्बा प्रकाशन विद्या भवन. पृ. 61
9. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम. 2000. प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान. पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्. पृ. 197
10. अग्रवाल, वी. एस. पूर्वोक्त. 293–294
11. वही, पृ. 294
12. श्रीवास्तव, के. सी. पूर्वोक्त. पृ. 357
13. अग्रवाल, वी. एस. पूर्वोक्त. पृ. 295
14. वही, पृ. 296

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
February 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 80-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Revoicing Indianness for Western Readerships: Barriers and Challenges in Translation

Arya Mohandas
Krupanidhi College of Commerce and Management, Koramangala Bangalore -34

Keywords : Translation, Cultural mediation, Revoicing, Indian texts, Western readership, Translation strategies, Foreignization, Domestication.

Abstract :

Translation plays a major role in shaping the development of world culture. It is not confined to the field of literature alone; rather translation has become an interdisciplinary practice that shapes communication in everyday life. Even ordinary conversations involve the translation of thought into language, underscoring the centrality of translation in human interaction. In this context, what is carried across from the source text to the target text becomes a crucial concern in translation studies. Rather than viewing translation as a process of loss or simple linguistic substitution, this paper approaches translation as an act of cultural mediation. It argues that traditional parameters such as fidelity and equivalence become unstable, particularly when culturally and philosophically loaded expressions from Indian languages are translated for Western readership. By examining translation strategies such as borrowing and retention, the paper highlights how translators negotiate between cultural specificity and accessibility. Ultimately, the study emphasizes translation as a transformative practice that facilitates intercultural dialogue while acknowledging its inherent challenges.

Introduction :

This paper, titled Revoicing Indianness for Western Readerships: Barriers and Challenges in Translation, examines the challenges in cultural content adaptation and issues in translating 'Indianness' into 'Western'. Translation has long been understood as more than a mere transfer of words from one language to another. Because perfect equivalence is not attainable in translation, as translation is a complex and interpretative activity rather than a purely mechanical process. A translated text necessarily involves a careful analysis of the source text and its cultural context, followed by a stylistic and semantic restructuring in the target language. When literary texts rooted in Indian culture are

translated for Western readerships, the process becomes a complex act of cultural negotiation. Indian texts often carry layers of social practices, belief systems, historical memories, and linguistic nuances that resist straightforward translation. In such cases, translation involves not only linguistic competence but also cultural sensitivity and interpretative responsibility.

The concept of Indianness refers to the cultural, social, and ideological markers embedded within Indian texts. These markers shape the worldview of the source text but may appear unfamiliar or opaque to Western readers. Hence, the text does not remain the same after its reconstruction., and there is no inherent connection between the source language and the target language. Revoicing Indianness in translation, therefore, raises important questions regarding representation, authenticity, and accessibility. This paper examines the major barriers and challenges involved in translating Indian texts for Western readerships and explores how translators negotiate cultural differences while attempting to retain the essence of the source culture.

Indianness and Cultural Specificity :

Indianness in literature manifests through language, customs, religious practices, social hierarchies, and everyday experiences. Terms related to kinship, food, rituals, caste, and spirituality often have no direct equivalents in Western languages. Words such as dharma, karma, puja, or guru carry culturally loaded meanings that extend beyond dictionary definitions. When such terms are translated or explained, there is a risk of oversimplification or cultural reduction.

Aurobindo states that "a translator is not necessarily bound to the original he chooses; he can make his own poem out of it, if he likes, and that is what is generally done." Translation is neither "translation" nor "transcreation," and it has to guard against the danger of word-for-word literal translation as well as taking too much liberty in the name of creation. In the light of recent literary criticism, which holds indeterminacy of meaning as its central concept, the art of translation has become increasingly difficult. If each word is a sign and each sign has a signifier and a signified, and if the signified again becomes a signifier, then which meaning should one take in translation? Should one take the signification (linguistic code) of a word or its value into consideration for translation? (Bijay Kumar Das 38- 39).

As a land of diverse cultures and customs, India has many different ways and styles of narratives. Its literary treasure house is vivid with respect to genre, form and theme of the discourses. Each discourse is woven with intricate details and references the individual culture, community, language, the time period and related details of the time it was 'composed' in. Indian narratives frequently rely on collective experiences rather than individualistic perspectives, which can challenge Western reading habits. Cultural references that are easily understood by Indian readers may require explanation or

contextualization for Western audiences. This gap often forces translators to make difficult decisions regarding retention, adaptation, or omission.

Barriers in Translating for Western Readerships :

One of the primary barriers in translating Indian texts for Western readerships is the issue of untranslatability. Certain emotions, social practices, and cultural assumptions embedded in Indian languages cannot be fully conveyed through Western linguistic structures. This limitation often results in partial loss of meaning.

Cultural untranslatability is due to the absence in the target language's culture a relevant situational feature in the source text" (Bassnett 39). The absence of culture specific words in target language creates untranslatability in the process of translation. For the better comprehension of the target text readers, the translator is forced to identify the cultural context of the source text. Culturally specific elements such as idioms, proverbs, slangs, myths, images, humour often pose significant challenges in the process of translation.

Another significant barrier is the expectation of readability. Western publishers and readers often prefer fluency and familiarity, which may pressure translators to domesticate the text. In doing so, the cultural strangeness of the original may be softened, leading to a diluted representation of Indianness. Despite the end of colonial rule, Western cultural influence continues to shape Indian literary and intellectual practices. This influence often affects translation, encouraging the domestication of Indian texts to suit Western readerships. Power dynamics also play a role, as English, being a global language, often dominates translation practices, influencing how Indian texts are reshaped for global consumption.

Challenges Faced by the Translator :

The translator occupies a delicate position between the source culture and the target audience. On one hand, the translator must remain faithful to the cultural integrity of the original text; on the other, they must ensure that the translation is comprehensible and engaging for Western readers. This dual responsibility often leads to ethical challenges.

Translation destabilizes the notion of the original text; consequently, concepts such as fidelity, equivalence and other traditional parameters become inadequate. If fidelity is no longer upheld, the theoretical authority of the original text is inevitably questioned, and translation emerges as the primary site of meaning. In such a context, the possibility of comparing the translation with the original becomes problematic, as the relationship between them is no longer governed by equivalence but by transformation. If original itself is a translation, translation is the translation of a translation. So, there is no need to maintain fidelity towards the original. Hence, equivalence, fidelity, faithfulness

and other traditional parameters of translation become irrelevant.

How far can a translated work give the original essence of the source language text? the question is quite debatable in terms of two sides: the author's and the translators. The debate between domestication and foreignization becomes central in this context. While domestication prioritizes reader comfort, foreignization allows cultural difference to remain visible. Translators of Indian texts must constantly negotiate between these approaches, aware that excessive adaptation may distort cultural meanings, while excessive foreignness may alienate readers.

The Translator as Cultural Mediator :

Rather than viewing translation as a loss, this paper argues for understanding translation as cultural mediation. However, according to traditional parameters of translation, when culturally loaded expressions such as 'Aham Brahmasmi' which is a phrase rather than a single word are translated, they may lose their true sense or spiritual essence. It is therefore often argued that translators cannot fully retain the spirit of such expressions in the target language. Consequently, in order to preserve this spirit, translators tend to borrow such expressions from the source text and retain them within the target text.

Vinay and Darbelnet's model and Catford's theory of shifts could help in a theoretical analysis of the text. The two great strategies identified by them are direct translation and oblique translation. Direct translation is conceptually similar to 'literal translation', and it covers three procedures, namely, Borrowing, Calque, and Literal Translation. Oblique translation is similar to 'free translation'. These strategies have been extensively used in the translation, and through such strategies, translators employ various translation techniques to retain the spirit and cultural specificity of the source language while rendering the text into the target language.

The translator acts as a bridge, facilitating dialogue between both the source language and the target language and which is across the cultural boundaries. Through strategies such as glossaries, footnotes, and contextual explanations, translators can retain cultural specificity without sacrificing clarity.

Scholars like Spivak and Bassnett emphasize the ethical responsibility of translators, especially in postcolonial contexts. Revoicing Indianness should not aim at making Indian texts conform to Western norms but should encourage Western readerships to engage with cultural difference.

Conclusion :

Revoicing Indianness for Western readerships remains a challenging yet necessary task in contemporary translation practices. The barriers of linguistic and cultural untranslatability, cultural distance, and reader expectations complicate the process, but they also highlight the importance of

ethical and culturally sensitive translation. Translation enables readers to understand the diverse culture of the world around us. By acknowledging the translator's role as a cultural mediator, translation can become a space of meaningful cross-cultural exchange rather than cultural erasure. Hence, translation can be called as a 'creative writing' or 'New writing', which is not just a mere rendering of source language text. translation is an art of giving birth to a new writing in the new cultural context, but also giving the original a 'continued life'. This study contributes to ongoing discussions in Translation Studies by foregrounding the need to preserve cultural identity while navigating global readerships.

References :

1. Abrams, M. H. A Glossary of Literary Terms. Cengage Learning, 2012.
2. Barry, Peter. Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory. Viva Books, 2014.
3. Bassnett, Susan. Translation Studies. Routledge, 2001.
4. Bassnett, Susan, and Harish Trivedi, editors. Post-Colonial Translation: Theory and Practice. Routledge, 1999.
5. Belloc, Hilaire. On Translation. Clarendon Press, 1931.
6. Das, Bijay Kumar. A Handbook of Translation Studies. Atlantic Publishers, 2008.
7. Guttal, Vijaya, and Suchitra Mathur. Translation and Postcolonialities: Translation across Languages and Cultures. Orient Blackswan, 2013.
8. Munday, Jeremy. Introducing Translation Studies: Theory and Applications. Routledge, 2021.
9. Said, Edward W. Orientalism. Pantheon Books, 1978.
10. Spivak, Gayatri Chakravorty. In Other Worlds: Essays in Cultural Politics. Routledge, 1988.
11. Venuti, Lawrence, editor. The Translation Studies Reader. Routledge, 2000.

Email ID -aryamohandas1314@gmail.com
Ph: +91 9633746985

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 85-91

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

SRODHAN VILLAGE : A HISTORICAL STUDY

Vaibhav Yadav
Research Scholar, NET JRF Qualified
Department of History, Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh

Abstract :

The origin and subsequent development of the village 'Srodhan' in Tehsil Sikandrabad,district Bulandshahr are examined in the light of oral and documentary history. Village Srodhan appears to be settled in 15th century by a man named PRITHI SINGH, an AHIR[1] of Nirwan gotra. At starting village was settled at a nearby place called Papra, some distance away from today's present village. From here village SRODHAN spreaded all around and takes it present form. The source materials used are legends,

folklore and popular traditions substantiated by documentary evidences from the BHAT's[2] Pothi of the village concerned. As such we may label it as a quasi-history instead of history of the village. It is hoped that this quasi-history of the village settlement will add to the fund of our knowledge about early history of village concerned.

Keywords : NIRWAN , AHIR , BHAT , GOTRA

Introduction :

The present study aims at discussing the historical point of view of village Srodhan, which is a Yadav[3] dominated village, where people of some other castes also live. It is a village in Sikandarabad block in Bulandshahr district of Uttar Pradesh. It is located 15 km towards west from district headquarters of bulandshahr district, 5 km from sikandrabad rural, while 425 km from state capital Lucknow. Following villages which are nearby to village concerned are Gendpurshaikhpur (1 km), Ismailpur (2 km), Ritoli (2 km) e.t.c.

Towards north of village Srodhan is Gulaothi block, whereas Bulandshahr block is in its east and Dankaur block in its west. While proximate cities to Srodhan are Sikandarabad, Bulandshahr, Greater Noida, Dadri etc. While village Srodhan is on the border between Bulandshahr district and Gautam Buddh Nagar district.

According to the 2011 census total population of the village is 3651 whereas total number of houses are 649. From which 48.3% constitutes the female population. According to this census, the village literacy rate is 62.0% of which the female literacy rate is only 24.9%.

There are no scheduled tribes present in the village while schedule caste constitute 15% i.e. 546 persons of the total village population. The village of Srodhan which forms the focus of this study according to Bhat's pothi was settled by Prithi Singh on Tuesday in 1473 vikram samvat i.e. 1416 AD. Prithi Singh was an Ahir of Nirwan gotra . NIRWAN is a gotra of Yaduvanshi Ahirs. They especially reside in the region of Haryana, Rajasthan, Delhi, and western Uttar Pradesh. So Prithi Singh had two brothers named SEVA SINGH and KALE SINGH. Subsequently Seva singh founded the Ismailpur village which is situated at a distance of 2 km from village Srodhan while Kale Singh established the Nagla Kala village. These three villages belong to Ahirs of Nirwan gotra along with Ritoli village in which also Ahirs of Nirwan gotra reside. So it is hoped that this quasi-history of the village settlement may broaden our understanding of the concerned hamlet's early history.

Research Methodology :

This study will be based on Qualitative, Analytical and historical approaches to research. Within qualitative research, methods like informal discussions and semi-structured interviews were conducted. The data for the research was collected through field work using interviews, Gazetteer of Bulandshahr district, UP and from Bhat's pothi. Given the nature of research, a lot of decisions regarding the appropriateness of a method to fulfil the objectives of the research had been made in the field.

However broadly it is a combination of unstructured interviews, informal discussions and data collected from bhat's pothi of the village concerned.

OBJECTIVE OF STUDY :

The evidence suggests that micro-level societal units, including villages, serve as essential repositories of historical significance.

History of village Srodhan :

The village of Srodhan which forms the focus of this study was founded by Prithi Singh, a Yaduvanshi Ahir of Nirwan gotra in 1473 vikam samvat i.e. 1416 A.D. Prithi Singh was one of the three sons of his father, Chamal and mother Samvat. While Seva singh established Ismailpur village whereas Kale singh established Nagla Kala village.

Meanwhile Prithi Singh was married to Mukari Devi, daughter of Kaid Singh of Afariya[4] gotra. From Mukari Devi, Prithi Singh had two sons whose names were Bhure singh and Mohar singh. Bhure singh was the elder brother who continued the lineage by staying in the village while the younger brother Mohar singh established REEL village which is currently known by the name of Ritoli and is

at a distance of 2 km from village Srodhan.

So there are only four villages of Nirwan Ahirs in the Sikandarabad tehsil of Bulandshahr district. These are Srodhan, Ismailpur, Nagla Kala and Ritoli. Village Srodhan is situated in the region of North-west Bulandshahr i.e. in Sikandarabad which was founded by Sikander Lodi in 1498 A.D. and made it the HQ of a Chakla, which comprises 28 neighbouring parganas. Hence the village concerned is an Ahirs dominated village of Nirwan gotra. Nirwan which is also spelt as NIRBAN is a large gotra of Yaduvanshi Ahirs which are present in parts of Rajasthan, Haryana, Delhi and Western Uttar Pradesh. By reading Bhat's Pothi of village Srodhan we get to know a lot of things about the village concerned. The word Bhat is derived from the Sanskrit word 'Bhatt'. In Rajasthan people who maintained the lineage of different castes are called Bhat. In ancient times also Bhats used to accompany the kings who used to tell their stories and praise them. So from them we get to know about the original abode of Nirwan Ahirs and the below lines from Bhat's Pothi correctly depicts the route of migration followed by them to settle in village Srodhan :

"थान नकास नमाणा से आए कोटा,
फर आए रैदा, आके रैदा से बसे लढ़वा,
और लढ़वा ते आए पहु ड़, आके बसे सरोंधन में।''

Here Nimana refers to Neemrana district which is a district located in present Rajasthan, whereas Kota is a village situated in Gulaothi Block of Bulandshahr district, while here ladhwa refers to village Ladlawas which is nearby to Srodhan. Therefore, the names of the places presented in Bhat's Pothi is quite similar to the names of the present day villages, which authenticates what is written in Bhat of the concerned village.By reading these we also come to know about following gifts given by Prithi Singh to Brahmins. After laying the foundation of the village, he gave 5 Rupees, 5 Gold's coin , one horse and its gold stirrup and 5 Mann[5] grains to brahmins. They also tell about the kuldevta of Nirwan Ahirs of the village which are Ashwar Singh, Dhanwant, Dhimiya and Chahmal. By reading them we also get enlightened about the SATI practice followed in the concerned village. A total of four women were committed Sati in this village whose names are HORI, HANSA, BHAJJO and RAINA.

There are also some old sites present here which have some historical importance like temples, wells, ponds etc.

THAKURDWARA TEMPLE

This temple is known as Thakurdwara temple. From oral traditions it is believed that this temple was made by a woman named Indravati. She was also known by the name of Mandir wali Dadi.

CHAMUNDA MATA TEMPLE & POND

According to local oral tradition, this temple is the oldest temple among all other temples in the village. It is believed that this temple was established at the time of foundation of the village concerned. There is also this pond adjacent to it which is also said to be from the same time.

Devi Mandir

This temple is situated in the Mohalla of Pandits inside the village . It is known as Devi Mandir. It was built by Pandit Ram Charan ji in memory of his wife Surta Devi on 15 January 1953. On the opposite side of this mohalla there is a mohalla of Bhangis and in their mohalla they created their own separate temple which is shown below as their entry into devi temple was prohibited.

Shiv Temple

Well near Shiv Temple

On the other side of the village there is a temple known as Shiv Temple. This is the biggest Temple present in the village where all important religious rituals take place like Jagran Goa Poojan at the time of marriage at Sekara near the Shiv Mandir there is also a well which was used for drinking water in past times. The photo of the well shown above.

Well

This well is situated in the mohalla of haweliya . Where this well is located today in past times, there used to be agricultural fields here and this well was used for irrigating the fields. This well is made of Lakhori-bricks and limestone. It is said that this well was once constructed by the Banjara community for their use.

Haveli & Boulder

This is the oldest haveli situated in the village. It was built by THEKEDAR CHATAR SINGH who was a road contractor during British rule. And this mansion is made of lime, from which we get to know that in earlier times lime was used for building Pucca houses, mansion e.t.c. And the boulder shown in above figure was used to grind limestone which eventually was used in making Pucca houses.

BAITHAK

Commissioned by YADRAM SINGH YADAV and his younger brother NYADAR SINGH YADAV in 1937, this BAITHAK was originally crafted from traditional brick and lime mortar. A notable feature is its roof, supported by Sal wood beams that have remained remarkably intact for nearly nine decades.

Conclusion :

The present study enlightened us about that small unit of our society like village also keeps historical importance within itself. For instance when we use sources like Bhats for small unit like village and conduct interviews of the village elders we come to know about the origin and original abode of ancestors of village concerned. This study will throw light upon how Nirwan Ahirs from and how came here. It is hoped that this quasi history of the village settlement will add to the fund of our knowledge about early history of Srodhan village.

Notes :

1. The word "Ahir" seems to have derived from a Sanskrit word, "Abhir", which means 'fearless'. In Haryana, Delhi, western Uttar Pradesh, they are landowner cultivators, while in certain eastern districts of UP and Bihar they are engaged in cattle herding.
2. The word "BHAT" is derived from the Sanskrit word "BHATT". In Rajasthan, people who maintain the lineage of different castes are called Bhat. In ancient times also Bhats used to accompany the kings who used to tell their stories and praise them.
3. The term "Yadav" covers many traditional peasant pastoral castes such as Ahirs of the hindi belt and the Gavli of Maharashtra.

4. “Aphariya” also spelt as “Affariya”, is a clan of Yaduvanshi Ahir. ‘Aphariyas’ ruled the Ahirwal state of Haryana.
5. One “MANN” is equal to 40 kilograms. This unit of weight is used in India and other parts of Asia.

Reference :

1. Bhat ki pothi - Village Srodhan, Tehsil Sikandrabad,Bulandshahr,U.P
2. Ibbetson, Sir Denzil; Maclagan (1990). Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and North West Frontier Province. Asian Educational Services.
3. Yadava, J. S. (1971). "History and Development of a Village Settlement in North India". Ethnohistory. 18 (3): 239–244.
4. Elliot, Henry M.; Elliot, Sir Henry Miers (1869). Memoirs on the History, Folk-lore, and Distribution of the Races of the North Western Provinces of India: Being an Amplified Edition of the Original Supplemental Glossary of Indian Terms.
5. Sherring, Matthew Atmore (1872). Hindu Tribes and Castes. Thacker, Spink & Company.
6. "सामाजिक व शैक्षणिक जातियों, वर्ग, समूहों की सूची". https://bccomm.mp.gov.in/.
7. Interview, 18.10.2023, Sanjay Kumar Yadav, village Srodhan, bulandshahr, UP; Satya Prakash Sharma, village Srodhan, bulandshahr, UP; Balkishan,village Srodhan, bulandshahr, UP; Charan Singh, village Srodhan, bulandshahr, UP; Bimla Devi, village Srodhan, bulandshahr, UP, Some more than 50 persons.
8. https://www.census2011.co.in
9. T.A,Edwin & F.R.G.S.,B.A ,GAZETTEER of the N.W.P, BULANDSHAHR DISTRICT, N.W.P. and OUDH GOVERNMENT PRESS, ALLAHABAD (1875).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
February 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 92-97

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

PANIPAT : A HISTORICAL STUDY

Deepak Phor
Research Scholar, NET JRF Qualified
Department of History, Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh

Abstract :

Panipat, also known as the "City of Weavers" and a historic battleground site, offers a unique blend of Mughal history and thriving textile commerce in Haryana. Top attractions include the Panipat Battle Museum, Ibrahim Lodhi's Tomb, Kabuli Bagh Mosque, and the Kala Amb War Memorial. It is a top place for textile buying and historical exploration. Panipat is a popular destination in the Indian state of Haryana. This town is a popular tourist attraction due to its rich historical significance and numerous monuments. Panipat is a tourist hotspot, with numerous forts and temples to explore during your visit.

The Panipat Museum is one of the region's main attractions, and it exhibits numerous must-see examples of contemporary art and craft. While at Panipat, you can also explore the Old Fort, a historic fortress that is now in ruins. A portion of this fort has been well-maintained, and it attracts history aficionados from throughout the country. You can also visit the Kabuli Shah Mosque, an old building established by Mughal emperor Babar.

Keywords : *Panipat, Tomb, Museum, Historical Sites.*

Introduction :

According to tradition, Panipat, whose historical name was Panduprastha, was one of the five cities (prasthas) established by the Pandava brothers during the Mahabharata period. Three crucial battles in Indian history took place at Panipat.Ibrahim Lodhi, the Sultan of Delhi, and Zaheeruddin Babur, a Timurid warrior, engaged in the First Battle of Panipat on April 21, 1526, with Babur's army defeating Ibrahim's far bigger force of more than a lakh (100,000) soldiers.Thus, Bahlul Lodhi's "Lodi Rule" over India came to an end with the First Battle of Panipat.

On November 5, 1556, the forces of Akbar and Samrat Hem Chandra Vikramaditya, a King of North India who was from Rewari in Haryana and had overrun Akbar's army by capturing the sizable

provinces of Agra and Delhi, engaged in the Second Battle of Panipat. In 1553–1556, this monarch, also called Vikramaditya, defeated the Afghan insurgents in 22 wars from Punjab to Bengal. He was crowned on October 7, 1556, at Purana Quila in Delhi, and he established the "Hindu Raj" in North India prior to the second battle of Panipat.Hem Chandra commanded a strong army, and at first his men were victorious. However, Hemu lost consciousness after being shot in the eye by an arrow. His troops ran away when they failed to spot him riding an elephant in his howdah. Later, the Mughals seized him and decapitated him. His torso was hung outside Purana Quila in Delhi, while his head was sent to Kabul to be hanged outside Delhi Darwaza. Thus, Hemu's "Hindu Raj" in northern India came to an end with the Second Battle of Panipat, however briefly.

The Third Battle of Panipat was fought in 1761 between Afghan invader Ahmad Shah Abdali and the Marathas led by Sadashivrao Bhau Peshwa of Pune. Ahmad Shah won, but both sides suffered enormous casualties. It culminated in the Marathas' worst defeat in history. The war created a power vacuum, which eventually led to the British invasion of India. Maulana Hali, a famous Urdu shayar, was born in Panipat.

OBJECTIVE OF THE STUDY :

This study explores Panipat : A Historical Study

RESEARCH METHODOLOGY :

This study is based on secondary sources of data such as articles, books, journals, research papers, websites and other sources.

PLACES OF INTEREST :

- Bab-i-Faiz Gate
- Devi Temple
- Hemus Samadhi Sthal
- Ibrahim Lodhi's Tomb
- Kabuli Bagh Mosque, Panipat
- Obelisk Commemorated to the Third Battle of Panipat
- Panipat Museum
- The Kala Amb Park
- Tomb of Bu-Ali-Shah Qalandar

Bab-i-Faiz Gate :

Description The gate is made of brickwork with a stone foundation. The gateway consists of two arched entrances at either end of the tunnel. It once served as the entryway of Panipat. The sides of the outer multi-fold arch are ornamented with panels and arched niches, while the interior arches

are made of red sandstone. An inscription in Urdu over the pointed arch of the entrance reads Bab-i-Faiz Nawab Sadiq-1129, hence the gateway is known as Bab-i-Faiz gate, which means 'door of beneficence'. Nawab Sadiq erected it in 1737 AD.

Devi Temple :

A Devi temple devoted to a local deity stands on the bank of a big tank. It is thought to have been built by a Maratha named Mangal Raghunath, who remained in Panipat after the third war.

Hemus Samadhi Sathal :

Before taking Delhi, Hem Chandra won 22 fights against Mughals and Afghan insurgents between 1553 and 1556. Hem Chandra, a Rewari resident in Haryana, was the Suri dynasty's adviser and first arranged for critical materials such as cannons and gun powder for Sher Shah Suri in the 1530s, as well as holding several posts during Sher Shah's son Islam Shah and Adil Shah's regimes. In 1553, Hem Chandra became Prime Minister and Chief of Adil Shah Suri's Army, and fought 22 wars from Bengal to Punjab, conquering all of them without losing a single one. On October 7, 1556, he had his formal coronation, known as 'Rajyabhishake', at Purana Quila in Delhi. After 350 years of foreign domination, a Hindu became ruler of Delhi.

Hem Chandra was the final Hindu Emperor of India. However, Hem Chandra was killed in the Second Battle of Panipat on November 5, 1556, when an arrow struck his eye, causing him to lose consciousness and die quickly. His corpse was apprehended and taken to Akbar's army camp at Saudapur hamlet, where it is now located. Bairam Khan encouraged Akbar to behead Hem Chandra's dead body in order to obtain the title of Ghazi. Hemu's head was then sent to Kabul for display at the Delhi Darwaza at Kabul Fort to show Afghans that the great warrior had died, and his torso was hanged on a gibbet outside Purana Quila in Delhi, where Hem Chandra was coronated as the Vikramaditya king following his victory, in order to instill fear among locals. At the site of Hem Chandra's beheading, his followers built a 'Chattri', commonly known as a journey shelter. The Haryana government proposes to build a memorial at the current location.

Ibrahim Lodhi's Tomb :

Maintained by the Panipat Municipal Committee. The tomb is located near the tehsil office and the dargah of Sufi saint Bu Ali Shah. On April 21, 1526, he was defeated and slain at the First Battle of Panipat, which pitted him against Mughal Emperor Babur. All that remains is a rectangular open tomb on a high double-terraced platform accessed via a flight of steps on two sides made of Lakhauri bricks. This cemetery is the final resting place of Ibrahim Lodi, the last Sultan of Delhi. An inscription in a niche near the burial states that the District Administration restored this monument during the British government in 1867 AD. It has no architectural significance, yet it holds unparalleled

historical significance.

Kabuli Bagh Mosque :

The Kabli Bagh Mosque, located inside an enclosure with octagonal towers on its corners, has an entrance to the north. The gateway, made of bricks and red sandstone, has a lintel bracket type opening encased in a massive arch, the spandrels of which are ornamented with arched recesses enclosed in rectangular panels. The main prayer hall is square in shape, with annexes on the sides and a high façade divided into lime-plastered panels. Each of the annexes has nine bays topped with hemispherical domes resting on low drums. After defeating Salim Shah, Humayun built a masonry platform known as Chabutra-i-Fateh Mubarak. It features an inscription from 1527 AD that includes the king's name and other information about its creators.

Obelisk commemorated to the third battle of Panipat :

During the British government, the Surveyor General of Archaeology in India erected this obelisk. Sadashiva Rao Bhau, who led the Maratha resistance throughout the battle, is thought to have died while fighting. The site is marked by a brick pillar with an iron rod on top and an iron fence that surrounds the entire area. The Battles of Panipat monument Society has created a spectacular war monument complex around this obelisk on around 7 acres of land. The Haryana Government established this Society in 1981 under the presidency of Late Shri G.D. Tapse, the then-Governor of Haryana, to honour the heroes and soldiers who died in the three Panipat battles. The Society has also established a Panipat Museum near Village Binjhol on the Panipat-Gohana route, approximately 5 kilometers from Panipat. This museum exhibits documents, objects, and write-ups about these battles, as well as archaeological and ethnological materials.

MUSEUM :

The primary goal of the Panipat Museum was to disseminate information and raise awareness of Haryana's archaeology, history, art, and crafts. The museum's collection includes antiquities, inscriptions, sculptures, arms and armor, pottery, old and precious papers, jewels, and art and craft pieces. It also provides a unique opportunity to see the valor of valiant and patriotic fighters who gave their life in the Panipat battle through write-ups, photographs, and trans-slides.

These miniatures come from Baburnama and Akbarnama. These were gathered from prominent institutions such as the National Museum of New Delhi, the British Library, and the Victoria and Albert Museum in London. Importantly, the majority of the traditional artifacts and other items are obtained from various districts of Haryana.

The Kala Amb Park :

Distant from Panipat city. The name Kala Amb has an interesting narrative behind it: the Marathas

came to North India with the intention of permanently influencing Indian politics. The Marathas, like Ibrahim Lodhi, were guilty of alienating all prospective friends and allies. The Maratha forces clashed with the Afghan army. The Maratha force was surrounded by Afghan enemies, and their supply and reinforcement routes were shut off. Marathas suffered up to 75,000 losses, including important leaders such as Peshwa's son. The fighting field was littered with dead bodies. The Kala Amb Park, located on the outskirts of Panipat, commemorates this spot. Amazingly, people flock here for a stroll in the tranquil surroundings.

Sadashiv Rao Bhau, the Maratha commander, was killed during the conflict. According to legend and local tradition, a black mango tree once stood here, and a red obelisk may be found in one part of the park. This is the location of Bhau's final battle with the tree. The black mango tree no longer exists, but it has left its name to the park, therefore the name: Kala Amb.

Tomb of Bu-Ali-Shah Qalandar :

It is the mausoleum of Shaikh Sharafudeen Bu Ali Qalandar Panipati, a saint of the Chisti order from India. The son of a famous scholar of his time, known as Bu-Ali-Shah. It is the epitome of faith, harmony, and integrity. Every Thursday, people from all castes, creeds, and religions gather here to pray. Urs Mela, an annual event hosted here, is a manifestation of the people's faith and unity.

Within the enclosure, there are two more tombs. The mausoleum of Hakim Mukaram Khan and the prominent Urdu poet of the time, Maulana Altaf Hussain Ali.The tomb is near Ibrahim Lodhi's grave.

CONCLUSION :

Panipat is not a city, It boasts history in itself because there are so many such sites in Panipat that play an important role in Panipat identity is profoundly entrenched in its role in three era-defining conflicts (1526, 1556, and 1761). Landmarks like as Kala Amb, Ibrahim Lodhi's Tomb, and the Panipat Museum are popular among history buffs. Dual Identity Challenges: The city's status as the "City of Weavers" and an industrial hub frequently overshadows its tourism offerings.Aside from conflicts, the city is a major religious tourism destination, including attractions such as the Tomb of Bu Ali Shah Qalandar, the Devi Temple, and the Kabuli Shah Mosque.

REFERENCES :

- *Richards, John F., ed. (1995) [1993]. The Mughal Empire. The New Cambridge History of India (7th ed.). Cambridge University Press. p. 13. ISBN 978-0-521-56603-2. Retrieved 29 May 2013.*
- *Kolff, Dirk H. A. (2002). Naukar, Rajput, and Sepoy: The Ethnohistory of the Military*

Labour Market of Hindustan, 1450-1850. *Cambridge University Press. p. 163. ISBN 978-0-521-52305-9. Retrieved 29 May 2013. Chandra, Satish (2004). Medieval India: From Sultanate To The Mughals: Part I: Delhi Sultanate (1206-1526). Har-Anand Publications. pp. 91–93. ISBN 978-81-241-1066-9. Chandra, Satish (2004). Medieval India: From Sultanate To The Mughals: Part I: Delhi Sultanate (1206-1526). Har-Anand Publications. pp. 91–93. ISBN 978-81-241-1066-9.*

- *George Bruce Malleson (2001). Akbar and the rise of the Mughal Empire. Genesis Publishing Pvt. Ltd. p. 71. ISBN 978-81-7755-178-5.*
"Tomb of Ibrahim Lodi". Archived from the original on 14 May 2008.
- *"Ibrahim Lodhi's Tomb in Panipat India". www.india9.com.*
- The tale of the missing Lodi tomb The Hindu, 4 July 2005.
- *"The Indian Army and the 'Panipat Syndrome'". 30 March 2008.*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 99-103
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

उत्तराखण्ड की जैव विविधता : संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण की चुनौतियाँ

डॉ. अभिषेक बेंजवाल
पीएच. डी., राजनीति विज्ञान विभाग,
हेमवती नन्दन बहुगुणा, गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) उत्तराखण्ड।

जैव–विविधता सृष्टि में विद्यमान समस्त जीवित प्राणियों–पौधों, जीव–जंतुओ, सूक्ष्म जीवों तथा उनके पारिस्थितिक तंत्रों की समग्र विविधता को प्रस्तुत करती है। यह विविधता किसी भी पारिस्थितिक तंत्र की संरचना कार्यप्रणाली और स्थिरता के लिए मूलभूत आधार प्रदान करती है। आधुनिक पर्यावरणीय अनुसंधानों में जैव–विविधता को पारिस्थितिक संतुलन, मानव कल्याण और वैश्विक विकास के एक महत्वपूर्ण सूचक के रूप में देखा जाता है। जैव विविधता पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यात्मकता एवं स्थिरता को बनाए रखने में निर्णायक भूमिका निभाती है, विभिन्न प्रजातियां पारस्परिक निर्भरता के माध्यम से एक जटिल तंत्र का निर्माण करती है, जो ऊर्जा प्रवाह, पोषक चक्रण और परागण जैसी आवश्यक प्रक्रियाओ को संचालन करता है। पूर्ववर्ती शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि अधिक जैव–विविधता वाले पारिस्थितिक तंत्र पर्यावरणीय तनावों जैसे जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के प्रति अधिक सहनशील होते हैं। जैव–विविधता खाद्य सुरक्षा का आधार है। कृषि फसलों पशुधन और जलीय जीवों की विविधता मनुष्यों को पोषण उपलब्ध कराती है। विविध आनुवांशिक संसाधन फसलों को रोगों कीटों और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति अधिक अनुकूलन क्षमता प्रदान करते हैं जैव विविधता में कमी से खाद्य उत्पादन प्रणालियां क्षतिग्रस्त होती हैं। जिससे वैश्विक स्तर पर खाद्य संकट की संभावना बढ़ जाती है। जैव–विविधता का औषधीय और महत्व अत्यन्त व्यापक है। विश्व में पाई जाने वाली अनेक औषधीय वनस्पतियाँ और जैविक यौगिक आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की आधारशिला है। सरल भाषा में जैव–विविधता शब्द का तात्पर्य पृथ्वी पर विद्यमान समस्त प्रकार के जीवों से है।

वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर जीव–जन्तुओं की लगभग 100 करोड प्रजातियां निवास करती हैं, जिनमें से वैज्ञानिकों द्वारा अब तक लगभग 18 लाख प्रजातियों की ही पहचान की जा सकी है। वर्तमान में पृथ्वी पर जीव जन्तुओं में लगभग 4 करोड की वृद्धि हुई है। इस प्रकार प्रत्येक 12 वर्षों की अवधि में विश्व की जनसंख्या में लगभग 100 करोड की वृद्धि हुई है। यह भी अनुमानित है कि वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या 1000 करोड़ से अधिक हो जायेगी। वर्तमान के कई वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार पृथ्वी पर लगभग 300 करोड

मनुष्यों के पोषण हेतु ही पर्याप्त प्राकृतिक जैव संसाधन उपलब्ध है। वस्तुतः पृथ्वी पर मानवीय जनसंख्या से उत्पन्न आवर्तक दबाव के कारण मानव स्वंय के बहुमूल्य प्राकृतिक एवं जैव संसाधनों को खोता जा रहा है। मानवीय हस्तक्षेप के कारण विलुप्त होते जैव संसाधनों के दृष्टिगत वर्ष 1992 में ब्राजील के शहर रियो–डि–जेनरो में आयोजित 'पृथ्वी सम्मेलन' के दौरान 'जैव विविधता कन्वेशन' अस्तित्व में आया। जैव विविधता कन्वेंशन वर्ष 1993 से प्रभावी हुआ तथा वर्तमान में भारत सहित विश्व के 194 देश इस कन्वेंशन के सदस्य है। जैव–विविधता का संरक्षण उसके अवयवों का पोषणीय उपयोग तथा अनुवांशिक संसाधनों के उपयोग से प्राप्त लाभ का साम्यपूर्ण प्रथाजन इस कन्वेंशन के मुख्य उद्देश्य है। विश्व का लगभग 20 प्रतिशत भू–भाग 4 प्रतिशत मीठा पानी 17 प्रतिशत आबादी तथा 18 प्रतिशत मवेशी विद्यमान होने के बावजूद भी भारत देश विश्व के 7 चिन्हित जैव विविधता सम्पन्नतम राष्ट्रों में से एक है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता तथा सरकार द्वारा जैव विविधता अधिनियम 2002 तथा जैव–विविधता नियम 2004 अधिसूचित किए गए। उक्त अधिनियमों के अनुपालन का दायित्व त्रि–स्तरीय व्यवस्था यथा राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधता प्राधिकरण, राज्य स्तर पर राज्य जैव विविधता बोर्ड तथा स्थानीय निकाय स्तर पर जैव विविधत प्रबन्ध समिति पर है।

9 नवम्बर 2000 को गठित उत्तराखंड राज्य जैव विविधता के दृष्टिकोण से समृद्ध प्रदेश है। 53, 483 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैले इस प्रदेश में 13 जिले 78 तहसील, 95 विकासखंड, 7227 ग्राम पंचायत तथा 15761 ग्राम विद्यमान हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की जनसंख्या लगभग 1.01 करोड़ है। राज्य के कुल भू–भाग का लगभग 75 प्रतिशत वन भूमि तथा 46 प्रतिशत भाग वनाच्छादित है। जैव विविधता का संरक्षण यहां के लोगों के जीवन यापन की पद्धति तथा प्रकृति के साथ सामजस्य उनकी सांस्कृतिक विरासत है। यह राज्य देश की दो पवित्रतम नदियों गंगा तथा यमुना की उद्गम स्थली के अतिरिक्त अपने तीर्थ स्थलों एवं पर्वतीय सुन्दरता के लिए भी विख्यात है। विशेषत हिमालयी क्षेत्रो में पाई जाने वाली औषधीय प्रजातियाँ जैसे ब्रह्मकमल यार्सागुम्बा, अतीस एवं Taxus baccata दवाओं के निर्माण और अनुसंधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैव–विविधता अनुसंधान के लिए नए जैव सक्रिय यौगिकों एवं उपचार पद्धतियों के खोजने का अवसर भी प्रदान करती है। जैव विविधता पर्यावरणीय सेवाओं का मुख्य स्रोत है। वन कार्बन अवशोषित कर जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करते हैं जबकि विविध पौधों और जलीय जीवों की उपस्थिति जल एवं वायु शुद्धिकरण में सहायक होती है। मिट्टी का निर्माण, कटाव नियंत्रण जल संचयन और बाढ नियंत्रण जैसी प्रक्रियाएँ सीधे जैव विविधता से प्रभावित होती है।

नवीन स्थापित उत्तराखण्ड राज्य अपार जैव विविधता के लिए जाना जाता है। राज्य के विभिन्न क्षेत्रो में भौगोलिक और जलवायु विविधताएं हिमालय पर्वतमाला से लेकर तराई के मैदानों तक कई प्रकार के वनों में योगदान करती है। उत्तराखण्ड में कुल 13 संरक्षित क्षेत्र स्थित हैं जिसमें 6 राष्ट्रीय उद्यान, 7 वन्य जीव अभयारण्य संरक्षण रिजर्व और एक बायोस्फीयर रिजर्व शामिल है। राज्य में कई दुर्लभ पौधों और जानवरो की प्रजातियों के लिए अभयारण्य है, वनस्पतियो की एवं जीवों की अधिकांश प्रजातियां संरक्षित क्षेत्रो में सुरक्षित हैं। राष्ट्रीय उद्यानों में कार्बेट नेशनल पार्क, भारत का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान, रामनगर नैनीताल जिले में व चमोली जिले में फूलो की घाटी राष्ट्रीय उद्यान और नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान दोनों को यूनेस्को की विश्व धरोहर के रूप में मान्यता प्राप्त है। फूलों की घाटी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर संकटापन्न वनस्पतियों की प्रजातियों का बाहे जिसमें से कुछ प्रजातियां

आएखणु के अतिखित कही और नहीं पाई जाती है। संरक्षित क्षेत्रों में हरिद्वार जिले में राजाजी राष्ट्रीय उद्यान, गोविंद पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान और अभयारण्य और उत्तरकाशी जिले में गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान शामिल हैं। वैज्ञानिक शोध के अनुसार उत्तराखण्ड में विविध प्रकार के वन्य जीव जिनमें स्तनधारियों की 102 प्रजातियों, पक्षियों की 600 प्रजातियां, उभयचरों 19 प्रजातियां, पक्षियों की 70 प्रजातियां और मछलियों की 124 प्रजातियां शामिल हैं। संकटग्रस्त प्रजातियों में से जैसे बाघ (पैथेरा टाइग्रिस), एशियाई हाथी (एनिफार मैक्सिमस, तेंदुआ (पेंधेरा पाईन)। कस्तूरी मृग (मोशस क्राइमोगास्टर), हिम तेह त्धेयेरा उनिया) और मोनाल तीतर (लोफोफोरस इम्पेजिनस) आदि प्रजातियाँ वैश्विक रूप से लुप्तप्राय है।

संकटग्रस्त प्रजातियों की एक व्यापक सूची से 210 प्रजातियों के अस्तित्व का पता लगाया गया है जिसमें 211 जडी–बूटियाँ, 43 झाडियां 24 पेड और 12 बेल वाले पौधे शामिल हैं। प्रजातियों को 27 ऑर्डर, 63 परिवारों और 176 जेनेरा में वर्गीकृत किया गया है। जो राज्य के कुल जंगली वनस्पतियों का लगभग 6 प्रतिशत के रुप में प्रतिधिनित्व करते है परिवारों में, ऑर्किडेसी संकटग्रस्त प्रजातियों में सर्वप्रथम 27 से अधिक जेनेरा और 47 से अधिक प्रजातियों के साथ सम्मिलित है। आर्किडेन्सी के बाद फैबेबी में 15 जेनेरा और 26 प्रजातियां शामिल हैं। पोएमी के साथ 19 जेनेरा और 19 प्रजातियां सपिएसी की 12 जेनेरा और 16 प्रजातियां च रोसेशी के साथ 8 जेनेरा और 16 प्रजातिया एरटेरेसी के साथ रूप से, उत्तराखण्ड में ज्ञात कुल 30 प्रजातियो में से इम्पेटेस एल की 10 प्रजातिया विर्वेरिस एल. की 8 प्रजातियाँ 18 प्रजातियों में से स्पाइरियां एल की 7 प्रजातिया से मंकाग्रस्त है। 2020–21 की नवीनतम IUCN रेडलिस्ट के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल 54 प्रजातियों का मूल्यांकन किया गया है जिनमें से – केवल 14 को खतर में वर्गीकृत किया गया है। गंभीर रूप से लुप्तप्राय (2) के रूप में वर्गीकृत प्रजातियों में आकलडया कोरटम फाल्क (बाँसुरिया कोस्टन (फाल्क) निटाच का पर्यायवाची जैरियाना कुरो रॉयल लिलियम वाली फाइलगडी जैन औ। नाखेदिचिस जरा भारती D.Don शाहिल है। लुप्तप्राय प्रजातियों में एकोनित्य हेट्रोफिलम वाल, एबम रॉयल एजेलिका इलोका एडग्यू, माइप्रिडियम सतिगत आरसीस्चवी एक सी हिमालयम रॉल्फ और पिटीस्पारम एरियो कार्यम रायल शामिल हैं। असुरक्षित (VU) प्रजातिको का प्रतिनिधित्व एकोनिटम वाचले नियम बैंक द्वारा किया जाता है।

उत्तराखण्ड में प्रमुख संकटग्रस्त प्रजातियों में कस्तूरी मृग, हिम तेंदुआ, हिमालयन भालू, मोनाल, लाल पांडा, आदि है, मोनाल हिमालयन ग्रिफॉन, पश्चिमी दीगोपन, वनस्पतियों में यार्सागुम्बा पारिल्या, बभकल आदि है। वर्तमान में राज्य में जैव–विविधता नीति अपनाई गई है, जिनमें से सर्वप्रथम राज्य में जैव–विविधता बोर्ड का गठन किया गया है, जिसका मिशन प्राकृतिक धरोहरों वन, जलमग्न क्षेत्र, पारिस्थितिकी तंत्र एवं जैविक संसाधनों का संरक्षण करना है। जैव संसाधन आधारित उद्योगों को स्थापित करने से पूर्व बोर्ड से अनुमति आवश्यक कर दी गई है।

जैव विविधता वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नए जैव सक्रिय यौगिकों एवं उपचार पद्धतियों को खोजने का अवसर भी प्रदान करती है। जैव विविधता पर्यावरणीय सेवाओं का मुख्य स्रोत है। वन कार्बन अवशोषित कर जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करते हैं जबकि विविध पौधों और जलीय जीवों की उपस्थिति जल एवं वायु शुद्धिकरण में सहायक होती है। मिट्टी का निर्माण, कटाव नियंत्रण, जल संचयन और बाढ़ नियंत्रण जैसी प्रक्रियाएँ सीधे जैव विविधता से प्रभावित होती हैं। इसके अतिरिक्त, जैव विविधता का आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक

महत्व भी अत्यधिक है। पारिस्थितिक पर्यटन, वानिकी, कृषि आधारित उद्योग, औषधि उद्योग आदि प्रत्यक्ष रूप से जैव विविधता पर निर्भर करते हैं और स्थानीय तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान देते हैं। कई समाजों की सांस्कृतिक पहचान एवं पारंपरिक ज्ञान प्रणालियाँ जैव विविधता से गहराई से जुड़ी होती हैं।

अंततः, जैव विविधता पृथ्वी की जीवन–समर्थन प्रणाली का मूल आधार है। इसके संरक्षण के बिना न केवल पारिस्थितिक संतुलन, बल्कि मानव जीवन और विकास की दीर्घकालिक स्थिरता भी संकट में पड़ सकती है। इसलिए जैव विविधता का संरक्षण एक वैज्ञानिक, सामाजिक और नीतिगत प्राथमिकता के रूप में अति आवश्यक है।

निष्कर्ष :–

अनियंत्रित विकास, वनों की कटाई, जलविद्युत परियोजनाएँ, पर्यटन का दबाव, जलवायु परिवर्तन और मानव वन्यजीव संघर्ष जैसे कारकों ने जैव विविधता के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। नीतियों और उनके प्रभावी क्रियान्वयन के मध्य का अंतर भी संरक्षण प्रयासों की प्रभावशीलता को सीमित करता है। अतः आवश्यक है कि जैव विविधता संरक्षण को विकास की मुख्यधारा में समाहित किया जाए एवं समुदाय–आधारित संरक्षण, वैज्ञानिक अनुसंधान, पारंपरिक ज्ञान का समन्वय, सशक्त नीति क्रियान्वयन तथा सतत पर्यटन को बढ़ावा दिया जाए। केवल समन्वित और दीर्घकालिक प्रयासों के माध्यम से ही उत्तराखंड की अमूल्य जैव विविधता को सुरक्षित रखते हुए सतत विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। उत्तराखंड राज्य अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, ऊँचाई में व्यापक भिन्नता तथा विविध जलवायु परिस्थितियों के कारण भारत के सर्वाधिक जैव–विविध राज्यों में से एक है। हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र का अभिन्न अंग होने के कारण भारत में जैव विविधता केवल प्राकृतिक संपदा नहीं, बल्कि जीवन–समर्थन प्रणाली के रूप में कार्य करती है।

अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि उत्तराखंड की जैव विविधता राज्य की पर्यावरणीय स्थिरता, सामाजिक–आर्थिक विकास तथा सांस्कृतिक परंपराओं के लिए अत्यंत आवश्यक है। उत्तराखंड में तराई–भाबर क्षेत्र से लेकर उच्च हिमालयी अल्पाइन क्षेत्र तक विस्तृत पारिस्थितिक विविधता पाई जाती है। यहाँ साल, देवदार, चीड़, बुरांश, भोजपत्र जैसे वनस्पति प्रकारों के साथ–साथ हजारों औषधीय पौधों की प्रजातियाँ विद्यमान हैं। जीव–जंतुओं में हिम तेंदुआ, कस्तूरी मृग, हिमालयी काला भालू, घुरड़, मोनाल जैसे दुर्लभ और संकटग्रस्त जीव पाए जाते हैं। यह जैव विविधता न केवल पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखती है, बल्कि जल संरक्षण, मृदा संरक्षण और जलवायु नियमन जैसी महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी सेवाएँ भी प्रदान करती है। हालाँकि, हाल के दशकों में उत्तराखंड की जैव विविधता पर मानवीय गतिविधियों का दबाव निरंतर बढ़ा है। अनियोजित शहरीकरण, सड़क निर्माण, जलविद्युत परियोजनाएँ, खनन, पर्यटन का अत्यधिक विस्तार तथा वनों की कटाई ने प्राकृतिक आवासों को खंडित किया है। इससे अनेक वन्य प्रजातियों के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जैसे हिमनदों का पिघलना, वर्षा के पैटर्न में बदलाव और तापमान में वृद्धि जैव विविधता के लिए नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि उत्तराखंड में जैव विविधता संरक्षण से संबंधित नीतियाँ और कानून मौजूद होने के बावजूद उनके प्रभावी क्रियान्वयन में गंभीर कमियाँ हैं। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, जैव विविधता अधिनियम, राष्ट्रीय वन नीति तथा राज्य स्तरीय पर्यावरण नीतियाँ संरक्षण का ढाँचा तो प्रदान करती हैं, किंतु

जमीनी स्तर पर प्रशासनिक अक्षमता, संसाधनों की कमी और विकास–केंद्रित दृष्टिकोण के कारण अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। नीति और क्रियान्वयन के मध्य का यह अंतर उत्तराखंड की पर्यावरणीय चुनौतियों का एक प्रमुख कारण बनकर उभरा है। इस निष्कर्ष में यह भी स्पष्ट होता है कि स्थानीय समुदायों की भूमिका जैव विविधता संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उत्तराखंड के ग्रामीण और पर्वतीय समुदाय सदियों से प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की परंपरा का पालन करते आए हैं। चिपको आंदोलन इसका एक सशक्त उदाहरण है, जिसने यह सिद्ध किया कि जन–भागीदारी के बिना पर्यावरण संरक्षण संभव नहीं है। किंतु वर्तमान विकास मॉडल में स्थानीय समुदायों को निर्णय–प्रक्रिया से पर्याप्त रूप से नहीं जोड़ा गया है, जिससे मानव–वन्यजीव संघर्ष, आजीविका संकट और संसाधनों पर दबाव बढ़ा है।

जैव विविधता और आजीविका के मध्य गहरा संबंध होने के बावजूद, संरक्षण नीतियाँ प्रायः सामाजिक–आर्थिक पहलुओं की अनदेखी करती हैं। इससे संरक्षण प्रयासों को स्थानीय स्तर पर समर्थन नहीं मिल पाता। यह आवश्यक है कि जैव विविधता संरक्षण को केवल पर्यावरणीय मुद्दा न मानकर सामाजिक और आर्थिक विकास से जोड़ा जाए। पारिस्थितिकी पर्यटन, औषधीय पौधों का सतत उपयोग, वन–आधारित आजीविका और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण से जैव विविधता संरक्षण को सुदृढ़ किया जा सकता है। उत्तराखंड में सतत विकास की अवधारणा को गंभीरता से अपनाने की आवश्यकता है। विकास परियोजनाओं के लिए पर्यावरणीय प्रभाव आकलन को केवल औपचारिकता न मानकर वैज्ञानिक और पारदर्शी प्रक्रिया बनाई जानी चाहिए। जैव विविधता हॉट–स्पॉट क्षेत्रों में विकास गतिविधियों को नियंत्रित करना, वैकल्पिक विकास मॉडल अपनाना तथा पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति तंत्र को प्रभावी बनाना अनिवार्य है। इसके साथ ही, जैव विविधता संरक्षण के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, डेटा संग्रह और निगरानी तंत्र प्रणाली को सशक्त करना आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में अनुकूलन और शमन रणनीतियाँ विकसित करना समय की मांग है। जैव विविधता रजिस्टर, सामुदायिक वन प्रबंधन और संरक्षित क्षेत्रों के प्रभावी प्रबंधन से संरक्षण प्रयासों को नई दिशा मिल सकती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि उत्तराखंड की जैव विविधता राज्य की सबसे मूल्यवान प्राकृतिक धरोहर है, जिसका संरक्षण केवल पर्यावरणीय दायित्व नहीं बल्कि सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व भी है। यदि वर्तमान प्रवृत्तियाँ अनियंत्रित रहीं, तो इसका प्रभाव न केवल स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर, बल्कि समूचे हिमालयी क्षेत्र और देश की पर्यावरणीय सुरक्षा पर पड़ेगा। इसलिए आवश्यक है कि नीति–निर्माता, प्रशासन, वैज्ञानिक समुदाय और स्थानीय जनता मिलकर एक समन्वित, सहभागी और दीर्घकालिक संरक्षण रणनीति अपनाएँ।

इस प्रकार, उत्तराखंड की जैव विविधता का संरक्षण विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की कुंजी है। सतत, समावेशी और पर्यावरण–संवेदनशील दृष्टिकोण के माध्यम से ही राज्य की जैव विविधता को सुरक्षित रखते हुए भावी पीढ़ियों के लिए एक संतुलित और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. चैम्पियन, एच. जी., एवं सेठ, एस. के. (1968). भारत के वनों के प्रकारों का संशोधित सर्वेक्षण. भारत सरकार प्रेस।
2. उत्तराखंड सरकार. (2018). पर्यावरण की स्थिति प्रतिवेदनः उत्तराखंड. देहरादूनः उत्तराखंड सरकार।

3. काला, सी. पी. (2005). भारतीय हिमालय में पारंपरिक ज्ञान और जैव विविधता संरक्षण. स्प्रिंगर।
4. नेगी, सी. एस., एवं मैखुरी, आर. के. (2004). भारतीय हिमालय में वन प्रबंधन एवं संरक्षण। एनवायरनमेंटल कंजर्वेशन, 31(1), 1–8।
5. रॉजर्स, डब्ल्यू. ए., पंवार, एच. एस., एवं माथुर, वी. बी. (2002). भारत में वन्यजीव संरक्षित क्षेत्र नेटवर्कः एक समीक्षा. भारतीय वन्यजीव संस्थान।
6. सामंत, एस. एस., धर, यू., एवं पालनी, एल. एम. एस. (2007). भारतीय हिमालय में पादप विविधता, वितरण एवं संरक्षण स्थिति। जर्नल ऑफ माउंटेन साइंस, 4(2), 1–15।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 104-110

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

वैश्वीकरण की जड़ें : प्राचीन रेशम मार्ग से आधुनिक विश्व तक

डॉ. अनीता रानी

सहायक प्राध्यापक, कालिंदी कॉलेज (इतिहास विभाग),

दिल्ली विश्वविद्यालय (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.) – दिल्ली।

सारांश :–

इस शोध ग्रंथ में यह बताने का प्रयास किया गया है कि आज हम जिस वैश्वीकरण के द्वारा विश्व विकास की बात करते हैं, उसकी जड़ें रेशम मार्ग द्वारा होने वाले व्यापारिक संबंधों ने कई साल पहले बना दी थीं। रेशम मार्ग केवल व्यापारिक संपर्क का माध्यम नहीं था, बल्कि वह प्राचीन विश्व के आर्थिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक वैश्वीकरण की आधारशिला था। इसने दूरस्थ सभ्यताओं को नियमित संपर्क में लाकर वस्तुओं, विचारों और तकनीकों के आदान–प्रदान को संभव बनाया। भारत, चीन, मध्य एशिया और भूमध्यसागर के क्षेत्रों के मध्य स्थापित यह नेटवर्क आधुनिक वैश्विक आपूर्ति–श्रृंखला और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है।

यद्यपि आधुनिक वैश्वीकरण की गति और स्वरूप तकनीकी विकास के कारण कहीं अधिक व्यापक और तीव्र है, फिर भी इसकी ऐतिहासिक जड़ें प्राचीन रेशम मार्ग में निहित हैं। इस प्रकार रेशम मार्ग को वैश्वीकरण की प्रारंभिक संरचना के रूप में समझना इतिहास और वर्तमान विश्व–व्यवस्था के बीच संबंध स्थापित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रस्तावना :

वैश्वीकरण आधुनिक विश्व की एक प्रमुख प्रक्रिया है, जिसने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी स्तर पर देशों को परस्पर जोड़ दिया है। सूचना क्रांति और संचार तकनीकों के विकास के साथ यह धारणा सशक्त हुई कि विश्व एक "वैश्विक गाँव" में परिवर्तित हो चुका है। सामान्यतः वैश्वीकरण को बीसवीं सदी की देन माना जाता है, किंतु इसके ऐतिहासिक आधार प्राचीन काल में भी देखे जा सकते हैं। विशेषतः रेशम मार्ग ने एशिया, यूरोप और अफ्रीका की सभ्यताओं को जोड़कर अंतर महाद्वीपीय व्यापार, सांस्कृतिक संपर्क और बौद्धिक आदान–प्रदान की ऐसी परंपरा स्थापित की, जिसे वैश्वीकरण के प्रारंभिक रूप में समझा जा सकता है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार प्राचीन रेशम मार्ग आधुनिक वैश्वीकरण की जड़ों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पृष्ठभूमि :

रेशम मार्ग कोई एकल मार्ग नहीं था, बल्कि चीन से प्रारंभ होकर मध्य एशिया, भारत, ईरान और भूमध्यसागर तक फैला हुआ स्थलीय एवं समुद्री मार्गों का विस्तृत नेटवर्क था। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से पंद्रहवीं शताब्दी तक यह मार्ग अंतरराष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख माध्यम बना रहा। इस मार्ग से चीन का रेशम, भारत के मसाले एवं सूती वस्त्र, मध्य एशिया के घोड़े तथा पश्चिमी एशिया की धातुएँ और विलासिता की वस्तुएँ विभिन्न क्षेत्रों तक पहुँचती थीं। व्यापारिक गतिविधियों के साथ–साथ धर्म, दर्शन, कला, भाषा एवं विज्ञान का भी व्यापक प्रसार हुआ।

भारत इस नेटवर्क का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। मौर्य काल के पश्चात् आंतरिक एवं बाह्य व्यापारिक मार्गों के विकास ने भारत को मध्य एशिया एवं पश्चिम एशिया से जोड़ा। तक्षशिला, पाटलिपुत्र, ताम्रलिप्ति, काबुल, समरकंद एवं बुखारा जैसे नगर व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित हुए। समुद्री रेशम मार्ग के माध्यम से हिंद महासागर क्षेत्र में भी व्यापक व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। इसी मार्ग से बौद्ध धर्म का भारत से चीन, तिब्बत, कोरिया एवं जापान तक प्रसार हुआ, जिससे सांस्कृतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बल मिला। आधुनिक विद्वानों 'जैसे आंद्रे गुंडर फ्रैंक एवं जेनेट अबू–लगोद' ने यह तर्क दिया है कि यूरोपीय प्रभुत्व से पूर्व ही एशिया–केंद्रित एक विश्व आर्थिक तंत्र अस्तित्व में था। यह दृष्टिकोण रेशम मार्ग को प्रारंभिक वैश्विक व्यवस्था के रूप में देखने की आधारभूमि प्रदान करता है।

वैश्वीकरण की जड़ें : प्राचीन रेशम मार्ग से आधुनिक विश्व तक :

बीसवीं सदी की शुरुआत होते ही एक नया शब्द विश्व स्तर पर आया, जिसे अलग–अलग नामों से बोला गया – जैसे वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, ग्लोबलाइजेशन। इसके अंतर्गत विश्व की सीमाएँ टूट गईं और कहा जाने लगा कि विश्व एक गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया। सूचना क्रांति के आने के बाद हम विश्व के एक कोने में बैठे हुए दूसरे कोने की खबर ले सकते हैं। अर्थात्, वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विश्व के विभिन्न देश आपस में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं तकनीकी रूप से एक–दूसरे से जुड़ जाते हैं, जिसमें वस्तुओं, सेवाओं, विचारों, सूचनाओं एवं पूँजी का आदान–प्रदान वैश्विक स्तर पर होने लगता है।

वैश्वीकरण के संदर्भ में आंद्रे गुंडर फ्रैंक ने माना है कि '1500 से भी पहले एक विश्व आर्थिक प्रणाली मौजूद थी, जिसका केंद्र एशिया थाय बाद में यूरोप उसमें शामिल हो गया'। जेनेट अबू–लगोद ने बताया है कि तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में एशिया, मध्य एशिया, अरब एवं यूरोप एक व्यापारिक नेटवर्क का हिस्सा थे।

प्राचीन एवं आधुनिक सभ्यताओं में एक सामान्य बात यह है कि उनके विकास के कालक्रम में व्यापार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। व्यापार का प्रसार ने मानवीय आवश्यकताओं की ढेर सारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में अहम भूमिका निभाई है। इसी कारण विभिन्न संस्कृतियों का विलय एवं समन्वय देखने को मिलता है। (सिल्क रूट) रेशम मार्ग का भी ऐसा ही योगदान रहा हैकृएक ओर इसने भारत एवं चीन की संस्कृति को वैश्विक आधार प्रदान किया, तो दूसरी ओर यूरोप को उसकी आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति की। रेशम मार्ग से व्यापार की जाने वाली वस्तुएँ विभिन्न हाथों से होकर उसके अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचती थीं, क्योंकि भाषागत अवरोधों के कारण वस्तुओं को सीधे हजारों किलोमीटर दूर पहुँचाना संभव नहीं था। इसलिए मार्ग के बीच में कई व्यापारी होते थे, जो बिचौलियों का काम करते थे। वे वस्तुओं को एक निश्चित स्थान तक

पहुँचाकर उसे दूसरे व्यापारी को सौंप देते थे, फिर वह व्यापारी उसे आगे भेज देता था। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती थी, जब तक वस्तु अपने अंतिम उपभोक्ता तक न पहुँच जाती।

रेशम मार्ग और भारत के व्यापारिक संबंध :

प्राचीन काल से रेशम मार्ग और भारत के बीच व्यापारिक संबंध बने रहे। मौर्यों के पश्चात् का काल विदेशी व्यापार के लिए एक सुनहरा समय था। मौर्यों ने व्यापार के विकास और प्रगति के लिए प्रारंभिक आधार प्रदान किया, जिसमें आंतरिक यातायात के साधनों और मार्गों को काफी विकसित किया गया। पाटलिपुत्र को तक्षशिला से जोड़ने वाला मार्ग मौर्यों द्वारा बनवाया गया था। स्थल मार्ग पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति जुड़ा हुआ था, जो बर्मा और श्रीलंका के जहाजों के लिए एक प्रमुख बंदरगाह था। दक्षिण भारत के भूमि मार्ग मौर्यों के बाद अधिक विकसित हुए। मार्गों को नदी घाटियों के साथ, तटीय क्षेत्रों में या पहाड़ी दर्रों में विकसित किया गया था। इसके अलावा, देश के विभिन्न हिस्से अब व्यापार मार्गों से जुड़े हुए थे, जिनमें से कुछ मध्य एशिया और पश्चिम एशिया तक चले जाते थे। काबुल के साथ तक्षशिला से एक भूमि मार्ग जुड़ा हुआ था, जहाँ से मार्ग अलग–अलग दिशाओं में जाते थे। एक मार्ग कंधार से हेरात तक ईरान तक जाता था। यहाँ से व्यापारियों ने पूर्वी भूमध्य सागर में मानसूनी हवाओं के बारे में जानकारी दी, जो अरब सागर के माध्यम से यात्रा कर सकता था और इस प्रकार भारत तथा पश्चिम और मध्य एशिया के बंदरगाहों के बीच समय कम रह गया। पश्चिम तथा मध्य एशिया में पश्चिमी भारत के इंडो–ग्रीक, कुषाण तथा शक विजेताओं द्वारा घनिष्ठ संबंध स्थापित किए गए थे। मध्य एशिया से गुजरने वाले व्यापार मार्ग ने चीन को रोमन साम्राज्य के पश्चिमी प्रांतों से जोड़ा, जिसे 'सिल्क रूट' अथवा 'रेशम मार्ग' कहा जाता था, क्योंकि चीन से रेशम का अधिकांश व्यापार इसी मार्ग से होता था। एशिया तथा यूरोप के मध्य व्यापार स्थापित करने का सबसे प्रभावी तथा सुगम मार्ग रेशम मार्ग को माना जाता था, क्योंकि यह मार्ग एक विस्तृत भूभाग तक फैला हुआ था। यह न केवल पूर्व तथा दक्षिण एशिया को जोड़ता था, अपितु समस्त भारतीय उपमहाद्वीप को मध्य एशिया से होते हुए मध्य पूर्व, पूर्वी अफ्रीका तथा यूरोप तक जोड़ने का काम करता था।

इस मार्ग से केवल रेशम का ही व्यापार नहीं होता था, अपितु अन्य प्रकार की विलासिता तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं का भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक आदान–प्रदान होता था। दूसरी शताब्दी ई.पू. से पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक इस मार्ग ने वैश्विक व्यापार को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस मार्ग से वस्तुओं के साथ–साथ विचारों तथा संस्कृति का भी पारस्परिक आदान–प्रदान हुआय विचारों तथा सांस्कृतिक लेन–देन से विकास की नई परिभाषा बनी, वहीं उस दौर की बड़ी सभ्यताओं ने खुद को वैश्विक मानचित्र पर नये अंदाज में प्रस्तुत किया। जिस प्रकार रेशम मार्ग पर वस्तुओं का आदान–प्रदान होता था, उसी प्रकार संस्कृतियों का भी आदान–प्रदान हुआ। सूचनाओं के आदान–प्रदान ने नई प्रौद्योगिकियों तथा नवाचारों को जन्म दिया, जिन्होंने पूरी दुनिया को बदल दिया। चीन से लाए गए घोड़ों ने मंगोल साम्राज्य की शक्ति बढ़ाई, वहीं चीन से आए बारूद ने यूरोप तथा अन्य क्षेत्रों में युद्ध की प्रकृति बदल दी।

प्राचीन काल में रेशम मार्ग पर व्यापार के लिए उपयोगी परिवहन के साधन :

बेशक आज के वैश्वीकरण में हवाई यात्राओं का प्रचलन बढ़ गया है, परंतु आज भी समुद्री व्यापार के लिए प्राचीन साधनों जैसे पानी के जहाजों/समुद्री पोतों का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन काल में रेशम मार्ग

एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका को जोड़ने वाला प्रमुख व्यापारिक नेटवर्क था। इस मार्ग पर व्यापार के लिए समुद्री तथा स्थलीय दोनों माध्यमों का प्रयोग किया जाता था, इसलिए परिवहन के साधन भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार अलग—अलग थे। रेशम मार्ग मध्य एशिया, तकलामाकान तथा गोबी मरुस्थलों से होकर रेगिस्तानी क्षेत्रों में ऊँटों के कारवाँ गुजरते थे। ऊँट लंबे समय तक बिना पानी के चल सकते थे। और भारी माल जैसे रेशम की गांठें, मसाले और धातुएं ढोने में सक्षम थे। पर्वतीय और ऊबड़—खाबड़ मार्गों पर घोड़ों और खच्चरों का प्रयोग किया जाता था, क्योंकि वे संकरे दर्रों से आसानी से गुजर सकते थे। जहां मार्ग समतल और सुरक्षित थे, वहां गाड़ियों और बैलगाड़ियों का सीमित उपयोग होता था। रेशम मार्ग का एक महत्वपूर्ण भाग समुद्री मार्ग था, जिसे ''समुद्री रेशम मार्ग'' कहा जाता था। हिंद महासागर क्षेत्र में लकड़ी के जहाजों द्वारा चीन, भारत और अरब क्षेत्रों के बीच व्यापार होता था और मानसूनी हवाओं का लाभ लेकर लंबी यात्राएं की जाती थीं। जहां दुर्गम पर्वतीय इलाकों में पशु नहीं पहुंच पाते थे, वहां मानव श्रम के उपयोग द्वारा माल ढोया जाता था। इस प्रकार विविध परिवहन साधनों के सहयोग से ही रेशम मार्ग पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संभव हो पाया।

भारत का रेशम मार्ग द्वारा विभिन्न देशों की वस्तुओं का व्यापार :

रेशम मार्ग प्राचीन विश्व का एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक नेटवर्क था, जिसने भारत को एशिया, यूरोप और अफ्रीका के अनेक देशों से जोड़ा। इस मार्ग के माध्यम से भारत न केवल व्यापारिक वस्तुओं का केंद्र बना, बल्कि सांस्कृतिक और बौद्धिक आदान—प्रदान का भी प्रमुख माध्यम रहा।

चीन और भारत के मध्य रेशम मार्ग प्राचीन काल में व्यापार, संस्कृति और धर्म के आदान—प्रदान का एक महत्वपूर्ण माध्यम था। हान राजवंश (206 ई.पू.—220 ई.) के काल में पश्चिमी प्रदेशों से स्थापित संपर्कों के बाद यह मार्ग अधिक संगठित रूप से विकसित हुआ, जिसका उल्लेख सिमा च्यांग ने अपनी कृति शिजी (रिकॉर्ड्स ऑफ द ग्रैंड हिस्टोरियन) में किया है। चीन का रेशम विश्वविख्यात था और रोमन साम्राज्य के अभिजात वर्ग में इसे विलासिता तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता थाय इसकी अंतर्राष्ट्रीय मांग इतनी अधिक थी कि यह राजनयिक उपहार और कर के रूप में भी प्रयुक्त होता था।

रेशम मार्ग के स्थलीय मार्ग चीन को मध्य एशिया के नगरों जैसे काश्गर, खोतान और समरकंद के माध्यम से भारत, ईरान और आगे भूमध्यसागरीय क्षेत्रों से जोड़ते थे। इस मार्ग से चीन से भारत में रेशम, कागज और चीनी मिट्टी के बर्तन आते थे, जबकि भारत से मसाले, सूती वस्त्र, बहुमूल्य रत्न, हाथीदांत और औषधीय पदार्थ चीन भेजे जाते थे। व्यापार के साथ—साथ सांस्कृतिक संपर्क भी सुदृढ़ हुए और इसी मार्ग से बौद्ध धर्म का भारत से चीन में प्रसार हुआय अनेक बौद्ध भिक्षु और यात्री इन मार्गों से आवागमन करते रहे तथा धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद और प्रसार हुआ। इस प्रकार रेशम मार्ग केवल आर्थिक लेन—देन का साधन नहीं था, बल्कि उसने भारत और चीन के बीच दीर्घकालिक सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक संबंधों को भी सुदृढ़ किया।

मध्य एशियाई देशों के साथ व्यापार :

मध्य एशिया प्राचीन काल से ही भारत, चीन और पश्चिमी एशिया के मध्य व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सेतु के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। तुर्कमेनिस्तान, उज्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान, किर्गिस्तान और कजाकिस्तान जैसे क्षेत्र प्राचीन रेशम मार्ग का अभिन्न अंग थे। ये देश भारत और चीन के मध्य स्थलीय संपर्क का प्रमुख माध्यम थे। इस मार्ग से न केवल वस्तुओं का आदान—प्रदान होता था, बल्कि विचारों, धर्मों, कला और संस्कृति का भी

व्यापक प्रसार होता था।

विशेष रूप से समरकंद और बुखारा जैसे नगर, जो प्राचीन सोग्दियाना क्षेत्र में स्थित थे, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र थे। ये नगर चीन, ईरान और भूमध्यसागर को जोड़ने वाले प्रमुख स्थलीय मार्गों के जंक्शन पर स्थित थे। सोग्दियन व्यापारी इस व्यापारिक तंत्र के मुख्य संचालक थे। वे मध्य एशिया से लेकर चीन और भारत तक व्यापारिक नेटवर्क संचालित करते थे। रेशम, घोड़े, धातुएं, कीमती पत्थर तथा विलासिता की वस्तुएं इन मार्गों से होकर गुजरती थीं। सोग्दियन व्यापारियों की दक्षता और व्यापक संपर्कों के कारण समरकंद और बुखारा न केवल आर्थिक, बल्कि सांस्कृतिक आदान–प्रदान के भी प्रमुख केंद्र बन गए।

अफगानिस्तान भी भारत और मध्य एशिया के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी था। काबुल और बल्ख जैसे नगर व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्रों के रूप में विकसित हुए। ये नगर भारत को मध्य एशिया और पश्चिम एशिया से जोड़ते थे। उत्तर–पश्चिमी मार्गों से होकर भारतीय वस्तुएँ मध्य एशिया तक पहुँचती थीं और वहाँ से आगे पश्चिम की ओर जाती थीं। अफगानिस्तान के दर्रों 'विशेषकर खैबर दर्रा' ने इस संपर्क को सुगम बनाया। इस मार्ग से न केवल व्यापार हुआ, बल्कि बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का भी मध्य एशिया में प्रसार हुआ।

ईरान (प्राचीन फारस) भारत और रोमन विश्व के मध्य एक महत्वपूर्ण व्यापारिक कड़ी के रूप में कार्य करता था। ईरान के माध्यम से भारतीय वस्तुएँ पश्चिमी एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों तक पहुँचती थीं। रेशम, घोड़े, मसाले, सूती और रेशमी वस्त्र, बहुमूल्य रत्न तथा कीमती पत्थरों का व्यापार इस क्षेत्र से होकर होता था। भारत के मसाले 'विशेषकर काली मिर्च' रोमन साम्राज्य में अत्यधिक लोकप्रिय थे। इसके अतिरिक्त भारतीय वस्त्र और आभूषण भी पश्चिमी बाजारों में अत्यधिक मांग में थे।

पश्चिम एशिया के इराक, सीरिया और एशिया माइनर (आधुनिक तुर्की) जैसे क्षेत्र महत्वपूर्ण व्यापारिक पड़ाव थे। ये क्षेत्र यूनान और रोम की ओर जाने वाले अंतिम प्रमुख केंद्र थे। भारतीय व्यापारिक वस्तुएँ इन स्थानों तक पहुँचकर भूमध्यसागर के बंदरगाहों के माध्यम से यूरोप तक पहुँचती थीं। इस प्रकार मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के मार्गों ने भारत को प्राचीन विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्थानीय बाजारों को मजबूती :

रेशम मार्ग पर स्थित समरकंद, बुखारा, काशगर और बगदाद जैसे नगर व्यापारिक केंद्र के रूप में विकसित हुए। मध्य एशिया में समरकंद और बुखारा सोग्दियन व्यापारियों के कारण प्रमुख मंडियाँ बने, जहाँ रेशम, मसाले और कीमती पत्थरों का लेन–देन होता था। काशगर चीन और पश्चिमी एशिया को जोड़ने वाला द्वार था, जहाँ कारवांसराय और बाजारों से स्थानीय अर्थव्यवस्था को बल मिला। अब्बासी काल में बगदाद एक अंतरराष्ट्रीय व्यापार केंद्र बनकर उभरा, जहाँ एशिया और भूमध्यसागर के व्यापारिक मार्ग मिलते थे। इस प्रकार रेशम मार्ग के इन नगरों के आर्थिक उत्थान और शहरी विकास की मजबूत नींव रखी गई। इन शहरों में बाजार, सराय, गोदाम और मुद्रा व्यवस्था विकसित हुई। इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था मजबूत हुई और रोजगार के अवसर बढ़े।

बगदाद : अंतरराष्ट्रीय व्यापार का केंद्र :

8वीं से 10वीं सदी में अब्बासी खलाफत के समय बगदाद रेशम मार्ग के पश्चिमी छोर का सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय व्यापार केंद्र बना। यहाँ चीन, भारत, मध्य एशिया और भूमध्यसागर से आने वाला माल मिलता था। बगदाद से खलाफत की आय बढ़ी और बगदाद एक समृद्ध महानगर बना। बगदाद में बाजार, बैंकिंग जैसी

वित्तीय गतिविधियाँ और कर प्रणाली विकसित की गई। व्यापारिक समृद्धि ने शिक्षा और विज्ञान को भी बढ़ावा दिया।

वैश्वीकरण के आधुनिक पैरोकार जोर–शोर से कहते हैं कि जब से वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई है, तब से सांस्कृतिक, सामाजिक, वैचारिक आदान–प्रदान को गति मिली है। रेशम मार्ग पर चीन का रेशम, भारत के मसाले व सूती वस्त्र, मध्य एशिया के घोड़े और भूमध्य क्षेत्र की कीमती धातुएँ एक–दूसरे के देशों तक पहुँचती थी। यह आज की अंतर्राष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखला का प्रारंभिक रूप था। समरकंद, बुखारा, काशगर और बगदाद जैसे नगर ट्रांजिट हब बने, जहाँ बाजार, कारवांसराय, गोदाम और मुद्रा–विनिमय विकसित हुए। ये आधुनिक लॉजिस्टिक्स हब्स (वस्तुओं के बड़े बाजार) की तरह थे। व्यापार के साथ तकनीक और ज्ञान का भी प्रसार हुआ। कागज–निर्माण, औषधि–ज्ञान और खगोल विद्या जैसे क्षेत्रों में सीमा–पार प्रभाव दिखता है। हलाँकि प्राचीन वैश्वीकरण धीमा और जोखिमपूर्ण था, जबकि आधुनिक वैश्वीकरण डिजिटल तकनीक से संचालित और तीव्र है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि आज का वैश्वीकरण प्राचीन रेशम मार्ग में निहित जड़ों पर आधारित है। रेशम मार्ग के माध्यम से बौद्ध धर्म चीन, मध्य एशिया और पूर्व की ओर फैला। आज भूटान, कंबोडिया, म्यांमार, श्रीलंका, थाईलैंड, लाओस, मंगोलिया आदि देशों में बौद्ध धर्म राजधर्म बन गया। इससे धर्म के साथ–साथ विभिन्न सभ्यताओं के बीच सांस्कृतिक सहिष्णुता बढ़ी।

निष्कर्ष :

अंत में स्पष्ट करना चाहूँगी कि रेशम मार्ग केवल एक रास्ता नहीं था, अपितु ज्ञान, धार्मिक विचार, भाषा, कला और सांस्कृतिक तत्वों का आदान–प्रदान करने वाला मार्ग था। इसके माध्यम से भारत और एशिया के अन्य देशों के बीच गहरी सामाजिक–सांस्कृतिक निकटता विकसित हुई, क्योंकि यह मार्ग केवल व्यापार का साधन नहीं, बल्कि विचारों, धर्मों, कला और ज्ञान के आदान–प्रदान का सेतु था। भारत से बौद्ध धर्म, व्यापारी और विद्वान इसी मार्ग से मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, कोरिया और जापान तक पहुँचे, जिससे बौद्ध धर्म, भारतीय दर्शन, संस्कृति, भाषा और कलात्मक परंपराएँ वहाँ फैलीं। जी.के. लामा ने अपनी पुस्तक में बताया है कि किस प्रकार बौद्ध मठ, विश्वविद्यालय और ग्रंथ रेशम मार्ग के पड़ावों पर स्थापित हुए और स्थानीय समाज को प्रभावित किया। ह्वेनसांग ने लिखा है कि रेशम मार्ग पर विभिन्न धर्मों, विशेषकर भारतीय बौद्ध परंपरा के संपर्क से सांस्कृतिक संवाद और सामाजिक परिवर्तन हुआ। उन्होंने बताया कि कैसे रेशम मार्ग से होता हुआ कारवाँ–नगरों में भारतीय कला, मूर्तिकला और स्थापत्य के तत्व स्थानीय संस्कृतियों में समाहित हो गए। इस प्रकार रेशम मार्ग ने भारत और एशिया के अनेक क्षेत्रों के बीच स्थायी सामाजिक–सांस्कृतिक वैश्वीकरण को बनाए रखा, जिसका विकसित रूप आज देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. ऑल्सेन, थॉमस टी. (1974). द इंडियन ओशन एंड द मंगोल एम्पायर।
2. बेंटली, जेरी एच. (1993). ओल्ड वर्ल्ड एनकाउंटर्स : क्रॉस–कल्चरल कॉन्टैक्ट्स एंड एक्सचेंजेज इन प्री–मॉडर्न टाइम्स। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. चौधुरी, के. एन. (1985). ट्रेड एंड सिविलाइजेशन इन द इंडियन ओशन : एन इकोनॉमिक हिस्ट्री फ्रॉम

द राइज ऑफ इस्लाम टू 1750। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. फ्रैंक, आंद्रे गुंडर. (1998). री–ओरिएंट : ग्लोबल इकोनॉमी इन द एशियन एज (पृष्ठ 1–52)। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
5. फ्रैंकोपन, पीटर. (2015). द सिल्क रोड्स : ए न्यू हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड। ब्लूम्सबरी।
6. हैनसेन, वैलेरी. (2012). द सिल्क रोड : ए न्यू हिस्ट्री। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. लियू, शिनरू. (2010). द सिल्क रोड इन वर्ल्ड हिस्ट्री। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. प्लिनी द एल्डर. (प्रथम शताब्दी ईस्वी). नेचुरल हिस्ट्री।
9. सिनोर, डेनिस (सम्पा.). (1989). द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ अर्ली इनर एशिया। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. थापर, रोमिला. (2002). अर्ली इंडिया : फ्रॉम द ओरिजिन्स टू एडी 1300। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
11. द पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी। (प्रथम शताब्दी ईस्वी). पेंगुइन क्लासिक्स संस्करण।
12. व्हिटफील्ड, सुसान. (1999). लाइफ अलॉन्ग द सिल्क रोड। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
13. शुआनजांग (ह्वेनसांग). (7वीं शताब्दी ईस्वी). ग्रेट तांग रिकॉर्ड्स ऑन द वेस्टर्न रीजन (दा तांग शीयू जी)।
14. दलाई लामा. (1999). बौद्धिज्म ऑन द सिल्क रोड।

ई–मेल : anitasisodia231@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 111-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

कोख उसकी, इज्ज़त समाज की कैसे?
(विशेष संदर्भ :– शिवमूर्ती कृत ‘कुच्ची का कानून’ कहानी)

विशाल साहु

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक–753003, ओडिशा।

समाज में स्त्री, आदि से पुरुषतांत्रिक समाज द्वारा प्रताड़ित होती हुई नजर आती है। अपने अधिकारों तथा अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु जब नारी ने आवाज उठाई, तब समाज के पुरुषसत्तात्मक सोच ने उसे तमाम अपमानजनक शब्दों से अलंकृत कर उसके विद्रोहात्मक स्वर का गला घोंट दिया। जीवन के संघर्ष में अकेली जूझती हुई स्त्री कदम–कदम पर सावधानी बरतती है। हालांकि यह समाज स्त्री विषयक प्रत्येक मुद्दों को अति संवेदनशीलता के साथ ग्रहण करता है, परंतु आखिर में स्त्री को प्रत्येक क्षेत्र में समझौता करना पड़ता है। समाज कभी उसकी नियत पर सवाल खड़ा करता है तो, कभी उसकी चाल–ढाल पर, कभी उसकी कद–काठी पर तो, कभी उसकी कोख पर। परंतु आज की स्त्री अपनी अस्मिता के लिए समाज के हर उस पहलू के समक्ष विद्रोह करती है, जहाँ उसे बिना वजह प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। इसी बात का एक ज्वलंत तथा यथार्थपूर्ण उदाहरण शिवमूर्ती की लंबी कहानी ‘कुच्ची का कानून’ में परिलक्षित होता है।

आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य लेखन में शिवमूर्ती एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिनकी रचनाएँ लगभग सभी सामाजिक कोढ़ मान्यताओं के खिलाफ आवाज उठाती है। भारतीय ग्रामीण परिवेश का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण उनके साहित्य में स्वतः झलकता है। उनका साहित्य गाँव के प्रत्येक स्तम्भ को छुता हुआ, वहाँ व्याप्त विसंगतियों पर जोरदार प्रहार करता है। अपने साहित्य में मानवीय संवेदना को सुचारू रूप से प्रदर्शित करते हुए मानव अधिकार के प्रश्नों पर बड़े तार्किक रूप से विवेचन करने में शिवमूर्ती सिद्धहस्त मालूम पड़ते हैं। उनके व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए ‘मंच’ पत्रिका के ‘शिवमूर्ती विशेषांक’ में हिन्दी के अनन्य रचनाकार ‘संजीव’ कहते हैं, ”शिवमूर्ती यानि शिव की मूर्ती। अनेकानेक नंदियों–भृंगियों, भूतों–पिशाचों, डाकनियों–शाकनियों, रोगियों–अपाहिजों, नागों, चंद्रमाओं और परस्पर विरोधी मिथकों के जटाजूट में कल्याणी गंगा को भरमाए हुए महाकाल।”[1] वास्तव में अपने साहित्य के जरिए शिवमूर्ती समाज के उन तमाम शोषित तथा दलित वर्गों की सहायता करने की तर्कपूर्ण कोशिश करते हैं। समाज में स्त्री अस्मिता का प्रश्न एक अत्यंत संवेदनशील व प्रासंगिक मुद्दा है। एक पुरुष रचनाकार होते हुए भी अपने साहित्य में स्त्री अधिकार के कराहते हुए स्वर को बड़ी कुशलता पूर्वक दिखाने में वह एक सफल हस्ताक्षर हैं। ‘कुच्ची का कानून’ कहानी इस बात की कसौटी पर खरी उतरती है। हिन्दी के प्रख्यात आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के मतानुसार, ”एक भी ऐसा समकालीन रचनाकार नहीं है जिसके पास

कुच्ची जैसा सशक्त चरित्र हो। यह चरित्र निर्माण की क्षमता शिवमूर्ती को बड़ा कथाकार बनाती है।"[2]

दरअसल 'कुच्ची का कानून' शिवमूर्ती द्वारा लिखित चर्चित तथा आदर्शवाद की पैरवी करती हुई एक लंबी कहानी है। कहानी में 'कुच्ची' नामक स्त्री पात्र मुख्य चरित्र के रूप में सामने आती है। विवाह के कुछ वर्षों के अंतराल पर 'कुच्ची' विधवा हो जाती है। बिना संतान की विधवा की दूसरी शादी की बात होने पर 'कुच्ची' सास–ससूर के प्रति अपने कर्तव्य को ध्यान में रखती हुई शादी करने से इंकार कर देती है। 'कुच्ची' का इंकार उसके संपर्कीय जेठ की आँखों को नहीं भाता। वह 'कुच्ची' पर बुरी नजर डालता है। अपनी गलत मनसा में सफल न होने पर सारी संपत्ति के लोभवश वह 'कुच्ची' को उस गाँव से निकालने का हर संभव प्रयास करता है। चूंकि संतान न होने के कारण वह सभी की आँखों में चुभ रही थी, इस कारण 'कुच्ची' गर्भ धारण कर लेती है। बिना पति के गर्भ धारण करने के बाद समाज उसे अवांछित कोख ठहराता है। परंतु पूरे गाँव तथा पंचों के सामने 'कुच्ची' अपने तर्कों से यह साबित करती है कि उसकी कोख पर उसके सिवाय और किसी का अधिकार नहीं है। उसके तर्क के समक्ष पंच तथा पुरुष–वर्चस्व को घुटने टेकने पड़ते हैं। यहाँ स्त्री अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु समाज के साथ लड़ाई करती हुई नजर आती है।

समाज में जब कोई पति अपनी पत्नी की जीवितावस्था में काल को प्राप्त हो जाता है तब उसकी पत्नी समाज में विधवा कहलाती है। उम्र की परिपक्वता से पूर्व जब कोई स्त्री, विधवा हो जाती है तब समाज में उसका जीना दूभर हो जाता है। यह कहना कतई गलती न होगी कि वह स्त्री एक अभिशप्त की जिन्दगी जीती है। निसन्तान अगर कोई स्त्री विधवा बनती है तो उसके ठौर–ठिकाने पर समाज प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। समय चक्र में एक स्त्री सिर्फ अपने जीवन साथी को खोती है परंतु उसे वैधव्य उसके अपने देते हैं। 'कुच्ची' के पति के मर जाने के बाद 'कुच्ची' की दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है। उसके पिता उसे अपने साथ लेने के लिए आते हैं, परंतु अपने घर में रखने के लिए नहीं, उसकी दूसरी शादी करवाने के लिए। उपभोक्तावाद के इशारों पर नाचता हुआ यह मनुष्य भूल जाता है कि स्त्री एक वस्तु नहीं है, वह एक मनुष्य है। 'स्त्री' को यह समाज सदैव अपने ठिकाने के लिए एक पुरुष पर आश्रित होने के लिए बाध्य करता है। कहानी में लिखा है, "जिस खूँटे से बांधने के लिए उसे लाया गया था, जब वही नहीं रह गया हो..।"[3] स्त्री कोई गाय नहीं जो उसे पुरुष रूपी खूँटे से बांधा जाए। समाज अपने विचारों को स्त्री पर थोपने लगता है। 'कुच्ची' जब अपने पिता के साथ मायके नहीं जाती तब उसका संपर्कीय जेठ उस पर गंदी नियत डालता है। कई बार उसके साथ संबंध बनाने की बात करता है। इसके पीछे उसका कोई नेक इरादा नहीं अपितु उसकी कामुक भाव छुपी हुई थी। यहाँ पुरुष की निर्लज्जता का नग्न रूप प्रकट होता है। तथाकथित सामाजिक नियम के अनुसार जिस जेठ को छोटे भाई की पत्नी के साये से दूर रहना चाहिए था वह जेठ उसके साथ जबरदस्ती संबंध बनाना चाहता है। 'कुच्ची' के साथ जबरदस्ती करने के खातिर उसके जेठ को एक पुरुष मित्र उपाय देता है, "अकेले में मिल गई और नहीं मानती तो आगे बढ़कर गिरा देना। हो सकता है, दिखाने के लिए थोड़ी देर हाथ पैर झटके लेकिन अंत में चुप हो जाएगी। और अगर चीखी–चिल्लाई भी तो तुम्हारा क्या! वही बदनाम होगी और धीरे–धीरे टूट जाएगी, मुहँ काला कर दो तो कहीं जाने लायक रहेगी ही नहीं।"[4] इस उक्ति से स्त्री के प्रति पुरुष के मन से झाँक रही कुत्सित मनोदशा को देखा जा सकता है। पुरुष वर्चस्व सदैव एक स्त्री को अबला समझता है। यहाँ दोष पुरुष के साथ–साथ सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का है। पुरुष द्वारा यौन उत्पीड़ित हुई स्त्री को समाज कलंकिनी मान लेता

है। वह खुल कर अपनी पीड़ा को किसी के साथ साझा तक नहीं कर सकती। जबकि दोष यौन उत्पीड़न करने वाले पुरुष का होता है, किन्तु समाज उस पुरुष के खिलाफ सख्त न हो कर स्त्री के खिलाफ खड़ा होता है। इसी वजह से पुरुष आए दिन अपनी कामेच्छा की तृप्ति के लिए नारी का बलात्कार करता है। बलात्कार में एक स्त्री की इज्जत नहीं जाती, बल्कि पुरुषसत्ता उलग्न होती है एवं सभ्य कहलाने वाला यह समाज बेइज्जत होता है। संतान उत्पन्न न होने पर स्त्री को समाज 'बाझिन' की आख्या प्रदान करता है। यह सर्वज्ञात है कि संतान उत्पन्न के पीछे स्त्री एवं पुरुष दोनों की भागीदारी रहती है, परंतु संतान पैदा न होने पर समाज स्त्री को 'बाझिन' बना देता है, और सम्पूर्ण दोष का भार स्त्री पर लाद देता है। यह मानसिकता बिल्कुल एक सभ्य समाज का परिचायक नहीं है।

समाज की हीन मानसिकता से संघर्ष करती हुई स्त्री सर्वदा कुंठा से ग्रसित पाई जाती है। सामाजिक हिंसा तथा प्रताड़ना से बचने के लिए वह अपने ऊपर हो रहे जुल्म को सबसे छुपाने लगती है। 'कुच्ची' जब अपनी सास को अपने जेठ के गंदी करतूत के बारे में बताती है तब उसकी सास उस 'घटियारी' को पानी की तरह पी जाने की सलाह देती है, क्योंकि उसे पता है समाज इस वारदात के पीछे 'कुच्ची' को ही गलत ठहराएगा। पुरुष के गलत होते हुए भी उसकी गलती को नजरअंदाज कर सम्पूर्ण गलती का भार स्त्री पर लाद देना यह पुरुषसत्तात्मक समाज की एक कोढ़ मानसिकता है। परंतु 'सुघरा ठकुराइन' के माध्यम से कहानीकार स्त्री को इसी कुंठा से ऊपर उठाने की कोशिश करते हैं। भरे पंचायत में 'सुघरा' बेझिझक बोलती है, "औरत को यह धमकी सदियों से मिलती आ रही है, क्यों? क्योंकि ऊपर वाले ने ही औरत के साथ अन्याय कर दिया, उसकी छाती फुला दी और हौसला घटा दिया। जिस दिन से लड़की की छाती फूलने लगती है, उसका हौसला घटने लगता है, वह फुली हुई छाती पर गुमान करती है और उसी के चलते मारी जाती है।"[5] यहाँ पंचों के समक्ष एक स्त्री का ऐसा बोलना यह दर्शाता है कि आज की स्त्री जरूरत पड़ने पर अपनी कुंठा से ऊपर उठ कर समाज की गलती समाज को दिखा सकती है। इसलिए पंचायत में उपस्थित एक लड़की स्त्री के लिए बनी पुरानी मान्यताओं को तोड़ स्त्री के लिए नया कानून बनाने की बात कहती है, जिससे स्त्री एक मनुष्य की तरह जिंदा रह पाए।

नारी एक दूसरे की शत्रु नहीं होती, वह उसकी पक्की सहेली होती है। इसका उदाहरण 'कुच्ची का कानून' कहानी में मिलता है। कहते हैं सास और बहू की आपस में बनती नहीं है, परंतु यहाँ 'कुच्ची' की सास अपने बेटे की अकाल मृत्यु के बाद अपनी बहू को अपने बेटे की तरह दुलारती है। वह झगड़े का कारण 'कुच्ची' को नहीं अपितु उसके भतीजे को मानती है। पंचायत में अपनी बहू के पक्ष में खड़ी होती है। सिर्फ वही नहीं गाँव की अनेक स्त्रियाँ 'कुच्ची' के पक्ष में तर्क देती हैं। यहाँ कहानीकार यह प्रमाणित करते हैं कि एक स्त्री की पक्की सहेली एक स्त्री होती है। स्त्रियों के भीतर देखी जा रही पुरानी मान्यताओं को रौंदते हुए शिवमूर्ती इस कहानी के जरिए एक नए मूल्यबोध की प्रतिस्थापना करते हैं। एक स्त्री का साथ सदैव एक स्त्री को सशक्त बनाता है। अंत में 'कुच्ची' की सास पंचों के सामने कहती है, "यह मेरी बहू भी है, बेटी भी है। इसकी खुशी में ही मेरी खुशी है।"[6] यहाँ स्त्री की बदलती सकारात्मक मानसिकता उभर कर सामने आती है।

एक स्त्री के गर्भवती होने पर यह समाज उस गर्भ के कारण से उस स्त्री के सतीत्व की परख करता है। जब स्त्री अपने गर्भ का कारण बताने से परहेज करती है तब समाज की नजर में वह चरित्रहीन साबित होती

है। परंतु एक स्त्री की कोख उसकी निहायत निजी संपदा होती है। उस पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है। 'कुच्ची का कानून' कहानी मुख्यतः 'स्त्री–कोख' के अधिकार का प्रश्न खड़ा करती है। पति की मृत्यु के बाद जब 'कुच्ची' गर्भ धारण करती है तब उसके लिए पंचायत बैठाया जाता है। तब 'कुच्ची' भरी सभा में निडर रूप से कहती है 'बाझिन' की अपवाद से बचने तथा अपनी कोख का उद्धार करने हेतु उसने गर्भ धारण किया है। पंचायत बार–बार उसे बच्चे के पिता का नाम पूछता है, तब 'कुच्ची' बोलती है, "बच्चे के बाप का नाम जानने की न तो पंचायत को जरूरत है, न हक।"[7] वाकई में पंचायत न तो किसी के बच्चे का भरण पोषण करेगा, न ही लालन–पालन, तब उसे किसी बच्चे के पिता का परिचय जानने का अधिकार क्यों है? "बूंद को आदमी बनाने के लिए माँ को नौ महीने अपना खून पिलाना पड़ता है। बूंद सिर्फ बूंद होती है, आदमी का बच्चा नहीं होती।"[8] वास्तव में स्त्री के बिना पुरुष जब बच्चा पैदा नहीं कर सकता तब बच्चे पर सर्वप्रथम अधिकार पुरुष का किस प्रकार हो सकता है? यह विचार रख कर समाज एक माँ के नौ महीने के गर्भ धारण का कष्ट तथा मातृत्व का अपमान करता है। इस कहानी के जरिए एक अहम सवाल उठाया गया है कि, 'आखिर कब, स्त्री की कोख पर स्त्री का प्रथम अधिकार होगा?' पितृसत्तात्मक सोच रखने वाला यह समाज स्त्री से अपने बच्चे के पिता का परिचय पूछ कर सम्पूर्ण मातृत्व का मजाक बनाता है। परंतु इस कहानी के अंतिम दृश्य में कहानीकार यह दिशा निर्देश देते हैं कि स्त्री की कोख उसकी संपत्ति है। इस पर प्रश्न खड़ा करने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता।

अक्सर सामाजिक दबाव के नीचे स्त्री घुटने टेक देती है। परंतु इस कहानी की 'कुच्ची' किसी के दबाव में आकर अपने–आपको दोषी नहीं मानती। जब पंच उसकी करतूत के लिए गाँव की बदनामी होने वाली बात करते हैं, तब 'कुच्ची' कहती है, "जब मेरी भूख पूरे गाँव की भूख नहीं बनती, मेरा डर पूरे गाँव का डर नहीं बनता, तो मेरे किए हुए किसी काम से पूरे गाँव की नाक कैसे कट सकती है?"[9] 'कुच्ची' के इस तर्क से पूरे गाँव के मुँह पर ताला लग जाता है। वास्तव में जब स्त्री की यंत्रणा, समाज की यंत्रणा नहीं होती तब उसके किए से समाज बदनाम कैसे हो सकता है? 'कुच्ची' फिर कहती है, "मेरा आदमी तो एक बार मर कर फुरसत पा गया लेकिन बेसहारा समझकर हर आदमी किसी न किसी बहाने मुझे रोज मार रहा था।"[10] 'कुच्ची' की यह उक्ति सिर्फ एक उक्ति नहीं वरंच वहाँ मौजूद पंच तथा सभ्य समाज के गाल पर एक जोरदार तमाचा प्रतीत होता है। जब समाज एक अकेली तथा असहाय स्त्री की सुरक्षा नहीं कर सकता तो उसके कर्म पर प्रश्न उठाने का अधिकार भी उस समाज को नहीं है। यह समाज 'कुच्ची' जैसी स्त्रियों को बच्चा गोद लेने का अधिकार तो देता है परंतु अपनी कोख से बच्चा पैदा करने का अधिकार नहीं देता। यह पुरुषतांत्रिक समाज का एक बना बनाया हुआ परंपरावादी तथा अद्भूत विचार है। इसके पीछे स्त्री समाज को अपने वर्चस्व के नीचे दबाकर रखना पुरुष समाज का एकमात्र हीन लक्ष्य प्रतीत होता है।

अतः शिवमूर्ती पुरानी स्त्री विषयक परंपरावादी सोच को ध्वस्त कर स्त्री के लिए आधुनिक सोच से निर्मित एक समाज निर्माण करना चाहते हैं, जहाँ स्त्री का अधिकार किसी पुरुष के पास न हो कर स्वयं स्त्री के पास हो। यह प्रश्न सिर्फ स्त्री की कोख या उसके अधिकार की नहीं अपितु, उसके मनुष्य होने का है। जहाँ हम स्त्री–पुरुष समानता की बात करते हैं, वहाँ स्त्री समाज के प्रति उपेक्षा तथा उसके अधिकार हनन का विचार कतई एक स्वस्थ समाज का गठन नहीं कर सकता। स्त्री मनुष्यता में प्राण फूँकती है, इस अधिकार से वह

मातृतुल्य देवी है। उसका अपमान, आंशिक नहीं पूर्ण रूप से ईश्वरीय सत्ता का अपमान है। स्त्री की हार सम्पूर्ण मनुष्यता की हार है। इसलिए समाज को स्त्री के प्रति उपेक्षा अथवा हीनबोध का नहीं बल्कि सम्मानजनक दृष्टिकोण रखने की आवश्यकता है। स्त्री को कभी कुंठा अथवा हीन मानसिकता के भीतर नहीं रहना चाहिए, आवश्यकता आने पर स्त्री को अपने अधिकार के संरक्षण के लिए 'कुच्ची' की तरह आवाज उठानी चाहिए। तभी यह समाज स्त्री–शक्ति का वास्तविक परिचय पाकर उसे अपने अधिकार से वंचित नहीं रखेगा। पुरुष समाज स्त्री का सम्मान कर हारता नहीं बल्कि जीतता है, क्योंकि जिस समाज में स्त्री का सम्मान होता है वह समाज विकसित होता है।

संदर्भ :

1. खरे, मयंक (सं.), मंच (पत्रिका), जनवरी–मार्च 2011, पृ. सं. 128
2. शिवमूर्ती, कुच्ची का कानून, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, दूसरा संस्करण 2020, पिछला आवरण पृष्ठ।
3. वही, पृ. सं. 78
4. वही, पृ. सं. 95
5. वही, पृ. सं. 137
6. वही, पृ. सं. 140
7. वही, पृ. सं. 131
8. वही, पृ. सं. 134
9. वही, पृ. सं. 119
10. वही, पृ. सं. 118

ईमेल : vsahoo73@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 116-119
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

विश्व पटल पर हिंदी की स्थिति

डॉ. अलका शर्मा
सह प्रवक्ता, किशन लाल पब्लिक कॉलेज, रेवाड़ी 123401 (हरियाणा)

मानव जाति को एकता के सूत्र में बांधने वाली इकाइयों में भाषा महत्वपूर्ण इकाई है क्योंकि मनुष्य तथा किसी भी समाज की पहचान उसकी भाषा से होती है। मानव समाज में होने वाला कोई भी परिवर्तन चाहे वह भौगोलिक हो, मनोवैज्ञानिक हो या ऐतिहासिक हो, वह उस समाज की भाषा के स्वरूप को भी अवश्य प्रभावित करता है। निश्चित रूप से भाषा को मानव की सहचारिणी कहा जा सकता है।

लगभग पिछले डेढ़–दो सौ वर्षों से वैश्विक पटल पर हिंदी भाषा का विस्तार हुआ है। हिंदी भारत की आत्मा है जिसे भारत के करोड़ों लोगों द्वारा बोला जाता है। विश्व के अनेक देशों में करोड़ों भारतीय रह रहे हैं जिनमें से अधिकांश हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। यह विश्व के अनेक देशों में बोली व पढ़ाई जाती है। संसार की प्रमुख व शक्तिशाली भाषाओं के मध्य अपना स्थान बनाने के लिए संघर्षरत हिंदी की वैश्विकता का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मृति–न्यास के अध्यक्ष लक्ष्मीमल सिंघवी जी ने कहा है :–

'हिंदी विश्व के कोटि–कोटि जनगण का कंठ स्वर है, उनकी पहचान है, सांस्कृतिक अस्मिता का सुखद स्वरूप है, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का सेतु है।'

इसी प्रकार हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'गगनांचल' पत्रिका के संपादक श्री कन्हैयालाल नंदन जी ने अपने संपादकीय में लिखा है :

'पिछले दिनों विश्व की एक स्तरीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने हिंदी के अनेक रचनाकारों की कालजयी कृतियों के अनुवाद प्रकाशित करके अप्रत्यक्षतः हिंदी की अंतर्राष्ट्रीयता को प्रमाणित किया है।'

वे आगे कहते हैं :

'यदि इस बात पर ध्यान दें तो हम पाएंगे कि हिंदी मात्र एक राष्ट्रभाषा ही नहीं है वरन् वह मनुष्य की सर्वोच्च मानवीय अनुगूंजों की अभिव्यक्ति है जो उसकी अति समृद्ध संस्कृति की धात्री है'।

यदि हम विश्व के मानचित्र पर हिंदी की तलाश करते हैं तो पता चलता है कि संसार के सैंकड़ों देशों में भारतीय प्रवासी निवास करते हैं। जहां ये भारतीय प्रवासी रहते हैं वहां किसी न किसी रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भले ही हिंदी का अतीत काफी संघर्षमय रहा हो किंतु इसकी वर्तमान स्थिति बहुत मजबूत है। आज इसकी वैश्विक स्थिति सम्माननीय है। संपूर्ण विश्व में आज साहित्यिक रूप से हिंदी का प्रचार–प्रसार हो रहा है। विदेशों में बसे भारतीय लोगों की संख्या करोड़ों में है जिनमें से अधिकांश हिंदी का प्रयोग करते हैं।

हिंदी आज भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। वह विश्व भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। अब तक भारत में और भारत के बाहर ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलन हो चुके हैं जो क्रमशः नागपुर, मॉरीशस, नई दिल्ली, त्रिनिदाद, लंदन, सूरीनाम, न्यूयार्क (अमेरिका), जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका), भोपाल, मॉरीशस आदि स्थानों पर हुए हैं। इस प्रकार के सम्मेलन हिन्दी के विकास में महत्ती भूमिका निभाते हैं। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि आज भारत के साथ–साथ विदेशों में भी हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी है। इसका प्रमाण यह है कि भारत के केंद्रीय हिन्दी संस्थान में विदेशी छात्रों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ी है।

आज लगभग 67 देशों के विदेशी छात्र भारत के केंद्रीय हिन्दी संस्थानों में हिन्दी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। यही नहीं विदेशों में 40 से अधिक देशों में 600 से अधिक स्कूलों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी विशेष रूप से पढ़ाई जा रही है। भारत के बाहर जिन देशों में हिन्दी भाषा का बोलने, पढ़ने–लिखने तथा अध्ययन–अध्यापन की दृष्टि से प्रयोग हो रहा है उनमें भूटान, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव, इंडोनेशिया, फिजी, म्यांमार, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया आदि ऐसे अनेक देश हैं जो भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं।

इन प्रवासी भारतीयों की स्वाभाविक भाषा हिंदी है तथा इन्होंने हिंदी भाषा के विदेशों में प्रचार–प्रसार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही नहीं कजाकिस्तान, फ्रांस, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, चीन, इराक, सिंगापुर, हॉलैंड, हंगरी आदि के विश्वविद्यालयों में भी हिंदी भाषा के पठन–पाठन की व्यवस्था है।

हिन्दी आज भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। वह विश्व भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करने को अग्रसर है। अब तक भारत में 3 और भारत के बाहर 8 हिन्दी विश्व सम्मेलन हो चुके हैं। वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा अपना अस्तित्व बनाने में कामयाब भाषा सिद्ध हुई है। वर्तमान में हिन्दी भाषा को जानने, समझने और सीखने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। आज हिन्दी साहित्य भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों में रचा जा रहा है। इनमें एक ओर फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस और त्रिनिदाद जैसे भारत वंशी बाहुल्य देश शामिल हैं तो दूसरी ओर अमेरिका, ब्रिटेन, नॉर्वे, डेनमार्क, कनाडा जैसे विकसित एवम् विकासशील देशों में अनेक हिन्दी साहित्यकार साहित्य रचना कर रहे हैं।

इन साहित्यकारों द्वारा रचा गया साहित्य एक नए भावबोध का साहित्य है जिसमें एक नई बेचैनी और व्याकुलता है। आज दुनिया में अनेक देश हैं जहां हिंदी में साहित्य सृजन हो रहा है। यह साहित्य हमें अनजान देशों की संस्कृति व समाज से अवगत कराता है। इन साहित्यकारों में अभिमन्यु अनत, जोगिंदर सिंह कंवल, तेजेंद्र शर्मा, उषा राजे सक्सेना, स्नेहा ठाकुर, सुषम बेदी, अर्चना पैन्यूली, कृष्ण बिहारी आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतवंशी बाहुल्य देश में रचित हिंदी साहित्य में भारतीय संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन देशों के हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में फ्रांसीसी और अंग्रेज मालिकों के द्वारा भारतीय मजदूर, कुलियों आदि पर किए जा रहे अत्याचारों का चित्रण अत्यधिक प्रभावशाली शैली में किया है।

आज वैश्विक स्तर पर हिंदी का महत्व बहुत बढ़ गया है क्योंकि यह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है और भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक पहुंच के कारण यह संचार, शिक्षा, व्यापार

और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शक्तिशाली माध्यम बन गई है जिससे यह विश्व में एक महत्वपूर्ण संपर्क भाषा और विश्व भाषा के रूप में स्थापित हो रही है। विश्व में हिंदी का वर्चस्व तेजी से बढ़ रहा है। आज हिंदी विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन गई है। डिजिटल माध्यमों (इंटरनेट, सोशल मीडिया आदि) पर हिंदी सामग्री की भरमार है जिसने इसे वैश्विक डिजिटल स्वरूपों में लोकप्रिय बनाया है।

अमेरिका, ब्रिटेन, खाड़ी देशों और अन्य जगहों पर भारतीय मूल के लोगों की बढ़ती संख्या ने हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहुंचाया है। आज हिंदी भाषा को बोलने–समझने वालों की संख्या संसार में तीव्र गति से बढ़ रही है। विश्व के 132 देशों में रहने वाले भारतीय मूल के लगभग 2 करोड़ लोग हिंदी भाषा में ही अपना कार्य करते हैं। आज हिंदी शिक्षा, वाणिज्य और मनोरंजन के क्षेत्र में अपनी गहरी पैठ बना रही है और संयुक्त राष्ट्र में भी एक गैर आधिकारिक भाषा के रूप में शामिल है जिससे इसका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। आज लगभग 60 करोड लोग हिंदी बोलते हैं और दिन प्रतिदिन यह संख्या बढ़ रही है जिससे यह विश्व की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन गई है।

भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि मानव भाषा का प्रयोग परिवेश, स्थिति तथा संदर्भ के अनुसार बदलता है। आज के परिवेश और संदर्भ के अनुसार हिंदी भाषा केवल साहित्यिक या संप्रेषण की भाषा नहीं रही वह तो काम–काज, कार्य पद्धति, विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी, विधि, चिकित्सा, वाणिज्य के साथ–साथ संगणक, सेल्यूलर, इंटरनेट, सैटेलाइट, सूचना सुपर हाईवे की भाषा बनने लगी है। आज हिन्दी, जनसंचार माध्यमों की, समाज सापेक्ष सेवा माध्यम के रूप में प्रयुक्त हो रही है तथा सामाजिक संदर्भ के गतिशील प्रवाह में अपने गुणों को बढ़ा रही है। आज हिंदी संचार की भाषा बन भाषाई क्षमता तथा व्यवहार को गति प्रदान कर रही है। संचार भाषा के सभी गुण हिंदी में है जिसके कारण वह आज विश्व भाषा बन रही है।

आज हिंदी भारत के अतिरिक्त मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि देशों में बोली जाती है। आज विश्व के लगभग 200 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ो छोटे–बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में हिंदी की 35 से अधिक पत्र पत्रिकाएं नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं। इसके अतिरिक्त दो अंतर्जाल पत्रिकाएं जो विश्व में प्रतिमाह 6000 से अधिक लोगों द्वारा 120 देशों में पढ़ी जाती हैं, अनुभूति में अभिव्यक्ति www.anubhuti.hindi.org तथा www.abhivykti.hindi.org के पते पर इंटरनेट पर मुफ्त उपलब्ध है।

वैश्विक स्तर पर आज यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा अपनी लिपि और ध्वन्यात्मक उच्चारण के लिहाज से सबसे शुद्ध और विज्ञान सम्मत भाषा है जिसके एक अक्षर से एक ही ध्वनि निकलती है अन्य भाषाओं में यह वैज्ञानिकता नहीं पाई जाती।

निःसंदेह आने वाले समय में हिंदी का ओर अधिक विकास होगा इसके लिए जरूरी होगा कि व्यवहार में हिंदी का अधिक से अधिक शुद्ध प्रयोग हो तथा अपनी गौरवशाली परंपरा में उसे प्रमुखता से जोड़ा जाए। शैक्षिक व सामाजिक स्तर पर हिंदी में आए बदलाव के साथ उसके वास्तविक रूप का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग जरूरी है तभी हिंदी अपनी प्रतिभाशीलता के साथ अपनी खुद की पहचान के रूप में समृद्ध रहेगी और विश्व जनमानस के दिलों पर राज करेगी।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1 'स्मारिका' – सातवां विश्व हिंदी सम्मेलन जून 2003

2 'गगनांचल' – जुलाई से सितंबर 1999

3 'शोधगंगा' – पंचम अध्याय

4 'विश्व पटल पर हिंदी–आलेख' – डॉ. शशि सिंघल

5 'वैश्विक स्तर पर हिंदी–आलेख' – डॉ. रानू मुखर्जी

6 'वैश्विकता के संदर्भ में हिंदी' – डॉ. शैलजा पाटिल

7 'प्रवासी हिंदी साहित्य–वैश्विक परिदृश्य' – डॉ नवनीत कौर।

मोबाइल : 89013 66266

इमेल : sharmaalka125@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 120-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे–जोन युद्ध एवं दक्षिण एशिया : भारतीय सुरक्षा के विशेष संदर्भ में

विभांशु सिंह, शोध छात्र,
प्रो. विनोद कुमार सिंह, आचार्य,
रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।

सारांश :–

आज के युग में कोई देश चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो अपनी प्रतिरक्षा व्यवस्था कों पूर्ण तथा अभेद्य नहीं मान सकता। जहाँ तक हिन्द महासागर का प्रश्न है यह आज भी विश्व का एक मात्र ऐसा महासागर है जो किसी भी महाशक्ति की सीमा कों नहीं छूता लेकिन इसके बावजूद हिन्द महासागर क्षेत्र वर्तमान वैश्विक राजनीति में रणनीतिक प्रतिस्पर्धा का प्रमुख केंद्र बन गया है, जहाँ परंपरागत सैन्य युद्ध के स्थान पर ग्रे–जोन युद्ध की प्रवृत्ति तीव्र हो रही है। ग्रे–जोन युद्ध ऐसी रणनीति है जिसमें राज्य अथवा गैर–राज्य अभिनेता प्रत्यक्ष युद्ध की सीमा से नीचे रहते हुए साइबर हमले, सूचना दुष्प्रचार, आर्थिक दबाव, समुद्री मिलिशिया तथा प्रॉक्सी तत्वों के माध्यम से अपने रणनीतिक उद्देश्य प्राप्त करते हैं। हिन्द महासागर में चीन की बढ़ती समुद्री उपस्थिति, बंदरगाह कूटनीति, डिजिटल अवसंरचना में निवेश तथा अनुसंधान पोतों की गतिविधियाँ हिन्द महासागर में ग्रे–जोन रणनीति के प्रमुख उदाहरण हैं। पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित प्रॉक्सी नेटवर्क, तटीय क्षेत्रों में अवैध गतिविधियाँ और सूचना युद्ध इस चुनौती को और जटिल बनाते हैं। इन कार्रवाइयों का उद्देश्य प्रत्यक्ष सैन्य टकराव के बिना भारत की निर्णय–क्षमता को सीमित करना, क्षेत्रीय प्रभाव को कमजोर करना और शक्ति–संतुलन को क्रमिक रूप से बदलना है।

भारतीय सुरक्षा के लिए यह स्थिति बहुआयामी प्रभाव उत्पन्न करती है। भारत का अधिकांश समुद्री व्यापार, ऊर्जा आपूर्ति और सामरिक संचार मार्ग हिन्द महासागर पर निर्भर हैं, जो ग्रे–जोन गतिविधियों से संवेदनशील बन जाते हैं। भारत द्वारा अपनाए गए प्रयासों में SAGAR पहल, समुद्री क्षेत्र जागरूकता, तटीय निगरानी तंत्र, QUAD सहयोग तथा पड़ोसी देशों के साथ रक्षा साझेदारी का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र दक्षिण एशिया के संदर्भ में ग्रे–जोन युद्ध के स्वरूप और भारतीय सुरक्षा पर उसके प्रभावों का मूल्यांकन प्रस्तुत करता है, तथा यह निष्कर्ष देता है कि ग्रे–जोन युद्ध भविष्य की स्थायी सुरक्षा चुनौती है, जिसका सामना केवल पारंपरिक सैन्य उपायों से संभव नहीं है। भारत को कूटनीतिक, तकनीकी, आर्थिक और कानूनी क्षमताओं को एकीकृत करते हुए समग्र राष्ट्रीय रणनीति विकसित करनी होगी, जिससे हिन्द महासागर

क्षेत्र में उसकी सुरक्षा और सामरिक हित संरक्षित रह सके।

मुख्य शब्द – हिन्द महासागर क्षेत्र, ग्रे–जोन युद्धनीति, भारतीय समुद्री सुरक्षा परिदृश्य, अप्रत्यक्ष एवं गैर–पारंपरिक खतरे, रणनीतिक अस्पष्टता एवं दबाव, समुद्री क्षेत्रीय जागरूकता, असीमित युद्ध, साइबर युद्ध, समुद्री डोमेन जागरूकता, रणनीतिक प्रतिस्पर्धा, चीन की समुद्री रणनीति, दक्षिण एशियाई सुरक्षा।

प्रस्तावना –

हिन्द महासागर क्षेत्र आज की अंतरराष्ट्रीय राजनीति में रणनीतिक प्रतिस्पर्धा का एक प्रमुख केंद्र बन चुका है। यह क्षेत्र केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आर्थिक, सामरिक और राजनीतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विश्व व्यापार का एक बड़ा हिस्सा, विशेषकर ऊर्जा संसाधनों का परिवहन, हिन्द महासागर के समुद्री मार्गों पर निर्भर करता है। भारत सहित अनेक एशियाई, अफ्रीकी और पश्चिम एशियाई देशों की आर्थिक स्थिरता इन मार्गों की सुरक्षा से जुड़ी हुई है। इसी कारण हिन्द महासागर क्षेत्र में होने वाले किसी भी प्रकार के सुरक्षा परिवर्तन का सीधा प्रभाव दक्षिण एशिया की सामरिक स्थिति और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा पर पड़ता है।

समकालीन समय में इस क्षेत्र में शक्ति संघर्ष का स्वरूप परंपरागत सैन्य टकराव से भिन्न होता जा रहा है। अब राज्यों के बीच खुले युद्ध के बजाय ऐसे तरीकों का प्रयोग बढ़ रहा है, जो युद्ध और शांति के बीच के धूसर क्षेत्र में स्थित हैं। इस प्रकार की रणनीति को ग्रे–जोन युद्ध कहा जाता है। इसमें प्रत्यक्ष सैन्य आक्रमण से बचते हुए धीरे–धीरे रणनीतिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें आक्रामक गतिविधियाँ स्पष्ट रूप से युद्ध की श्रेणी में नहीं आतीं, जिससे उनके विरुद्ध तत्काल और कठोर सैन्य प्रतिक्रिया देना कठिन हो जाता है। ग्रे–जोन युद्ध में अनेक प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें साइबर हस्तक्षेप, सूचना एवं दुष्प्रचार, आर्थिक दबाव, समुद्री मिलिशिया, कानूनी अस्पष्टताओं का लाभ उठाना और प्रॉक्सी तत्वों का उपयोग शामिल है। ये सभी साधन मिलकर प्रतिद्वंद्वी राज्य की निर्णय–क्षमता, राजनीतिक स्थिरता और रणनीतिक स्वायत्तता को प्रभावित करते हैं। हिन्द महासागर क्षेत्र में अवसंरचनात्मक विकास, बंदरगाहों का निर्माण, समुद्री अनुसंधान गतिविधियाँ और डिजिटल नेटवर्क में निवेश जैसी पहलें कई बार केवल आर्थिक परियोजनाएँ प्रतीत होती हैं, किंतु दीर्घकाल में वे रणनीतिक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं।

दक्षिण एशिया में छोटे और मध्यम आकार के देशों की भूमिका भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। इन देशों की आर्थिक आवश्यकताएँ, राजनीतिक अस्थिरता और विकास की आकांक्षाएँ उन्हें बाहरी शक्तियों के प्रभाव के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। जब ये देश किसी एक शक्ति पर अत्यधिक निर्भर हो जाते हैं, तो उसका प्रभाव क्षेत्रीय संतुलन पर पड़ता है और भारत की पारंपरिक कूटनीतिक स्थिति को चुनौती मिलती है। इस प्रकार ग्रे–जोन युद्ध केवल प्रत्यक्ष टकराव का विषय नहीं रह जाता, बल्कि यह क्षेत्रीय राजनीति और कूटनीति को भी प्रभावित करता है। भारतीय सुरक्षा के विशेष संदर्भ में ग्रे–जोन युद्ध एक बहुआयामी चुनौती के रूप में सामने आता है। यह न केवल सैन्य क्षमताओं की परीक्षा लेता है, बल्कि कूटनीति, अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी और कानूनी ढाँचे की प्रभावशीलता को भी परखता है। पारंपरिक सुरक्षा दृष्टिकोण, जो मुख्यतः सैन्य खतरों पर केंद्रित रहा है, ग्रे–जोन जैसी अप्रत्यक्ष और अस्पष्ट चुनौतियों से निपटने में पर्याप्त नहीं सिद्ध होता। ऐसी परिस्थितियों में समग्र राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा और विभिन्न संस्थाओं के बीच समन्वय का महत्व बढ़ जाता है।

हिंद महासागर में ग्रे – जोन युद्ध एवं दक्षिण एशिया :–

हिन्द महासागर क्षेत्र में वर्तमान सुरक्षा परिदृश्य को समझने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि संघर्ष की पारंपरिक परिभाषाओं से बाहर निकलकर उन प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाए जो प्रत्यक्ष हिंसा के बिना भी रणनीतिक लाभ सुनिश्चित करती हैं। हाल के वर्षों में यह क्षेत्र ऐसी गतिविधियों का साक्षी बना है, जो औपचारिक रूप से न तो युद्ध की श्रेणी में आती हैं और न ही सामान्य सहयोग के दायरे में रखी जा सकती हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से प्रभाव, पहुँच और नियंत्रण को धीरे–धीरे विस्तारित किया जाता है, जिससे क्षेत्रीय स्थिरता पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है। ग्रे–जोन युद्ध की विशेषता यह है कि इसमें शक्ति का प्रयोग अदृश्य और क्रमिक रूप में होता है। समुद्री कानूनों की व्याख्या में लचीलापन, तकनीकी साधनों का रणनीतिक उपयोग, आर्थिक निर्भरता का निर्माण और सूचना प्रवाह को नियंत्रित करने जैसे उपाय इस संघर्ष के प्रमुख औजार बनते जा रहे हैं। हिन्द महासागर क्षेत्र में यह प्रवृत्ति इसलिए अधिक प्रभावी हो जाती है क्योंकि यहाँ कई राष्ट्र अपनी समुद्री क्षमताओं, निगरानी संसाधनों और नीतिगत स्पष्टता के अभाव से जूझ रहे हैं। परिणामस्वरूप, बाहरी और क्षेत्रीय शक्तियों को बिना प्रतिरोध के अपनी उपस्थिति मजबूत करने का अवसर मिल जाता है।

दक्षिण एशिया में ग्रे–जोन रणनीतियाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप ढल जाती हैं। कुछ देशों में आर्थिक सहायता और अवसंरचना विकास के माध्यम से दीर्घकालिक निर्भरता उत्पन्न की जाती है, जबकि कुछ स्थानों पर आंतरिक राजनीतिक विभाजनों का लाभ उठाकर प्रभाव विस्तार किया जाता है। इन प्रक्रियाओं में सैन्य शक्ति की प्रत्यक्ष भूमिका सीमित रहती है, किंतु उनके परिणाम रणनीतिक दृष्टि से अत्यंत गहरे होते हैं। यह स्थिति क्षेत्रीय देशों के लिए निर्णय लेना कठिन बना देती है, क्योंकि किसी स्पष्ट खतरे की अनुपस्थिति में प्रतिरोध को उचित ठहराना आसान नहीं होता।

हिन्द महासागर क्षेत्र में समुद्री गतिविधियों का स्वरूप भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाता है। अनुसंधान, सर्वेक्षण और व्यापारिक आवागमन के नाम पर की जाने वाली गतिविधियाँ कई बार सुरक्षा संबंधी प्रश्न खड़े करती हैं। चूँकि ये गतिविधियाँ अंतरराष्ट्रीय नियमों के भीतर संचालित होती प्रतीत होती हैं, इसलिए इनके पीछे निहित रणनीतिक उद्देश्य अक्सर अनदेखे रह जाते हैं। ग्रे–जोन युद्ध की यही विशेषता इसे पारंपरिक सुरक्षा तंत्र के लिए चुनौतीपूर्ण बनाती है।

भारतीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह स्थिति विशेष सावधानी की माँग करती है। भारत न केवल इस क्षेत्र का एक प्रमुख हितधारक है, बल्कि उसकी आंतरिक आर्थिक स्थिरता और बाहरी व्यापारिक संपर्क भी इसी समुद्री क्षेत्र पर निर्भर हैं। जब अप्रत्यक्ष रणनीतियों के माध्यम से समुद्री मार्गों, डिजिटल अवसंरचना या पड़ोसी देशों की नीतियों को प्रभावित किया जाता है, तो उसका प्रभाव भारत की व्यापक सुरक्षा व्यवस्था पर पड़ता है। यह प्रभाव अचानक दिखाई नहीं देता, बल्कि समय के साथ धीरे–धीरे स्पष्ट होता है। भारत के लिए चुनौती यह नहीं है कि वह इन गतिविधियों का सैन्य उत्तर दे, बल्कि यह है कि वह समय रहते इनके प्रभाव को पहचान सके। ग्रे–जोन युद्ध की प्रकृति ऐसी होती है कि प्रतिक्रिया में थोड़ी सी भी देरी रणनीतिक नुकसान में बदल सकती है। इसलिए भारतीय सुरक्षा दृष्टिकोण में सतत निगरानी, बहु–क्षेत्रीय समन्वय और नीति स्तर पर लचीलापन आवश्यक हो जाता है।

ग्रे–जोन युद्ध का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह क्षेत्रीय सहयोग को कमजोर करता है। जब

देशों के बीच अविश्वास बढ़ता है और गतिविधियों की वास्तविक मंशा स्पष्ट नहीं रहती, तो साझा सुरक्षा ढाँचे प्रभावी नहीं रह पाते। दक्षिण एशिया में पहले से मौजूद राजनीतिक मतभेद और सुरक्षा चिंताएँ इस स्थिति को और जटिल बना देती हैं। परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय मंच अपनी पूरी क्षमता से कार्य नहीं कर पाते और बाहरी प्रभाव के लिए स्थान बनता जाता है। इस संदर्भ में तकनीकी प्रगति की भूमिका को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। साइबर माध्यम, उपग्रह आधारित निगरानी और सूचना प्रबंधन ने ग्रे–जोन युद्ध को अधिक सूक्ष्म और प्रभावी बना दिया है। हिन्द महासागर क्षेत्र में इन तकनीकों का प्रयोग केवल सैन्य उद्देश्यों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वे आर्थिक और प्रशासनिक संरचनाओं को भी प्रभावित करते हैं। इससे सुरक्षा की परिभाषा और भी व्यापक हो जाती है, जिसमें पारंपरिक रक्षा के साथ–साथ गैर–सैन्य तत्वों को भी शामिल करना पड़ता है।

हिन्द महासागर क्षेत्र में बदलती परिस्थितियाँ यह संकेत देती हैं कि भविष्य की सुरक्षा चुनौतियाँ स्पष्ट सीमाओं में बंधी नहीं होंगी। दक्षिण एशिया में ग्रे–जोन युद्ध का प्रभाव केवल एक देश तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह पूरे क्षेत्र की स्थिरता को प्रभावित करता है। ऐसे में भारतीय सुरक्षा के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह न केवल अपनी क्षमताओं को सुदृढ़ करे, बल्कि क्षेत्रीय देशों के साथ विश्वास–आधारित सहयोग को भी प्रोत्साहित करे।

भारतीय सुरक्षा :–

हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे–जोन युद्ध की बढ़ती प्रवृत्ति भारतीय सुरक्षा के लिए ऐसे जोखिम उत्पन्न करती है, जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देते, लेकिन दीर्घकाल में भारत की रणनीतिक स्थिति को कमजोर कर सकते हैं। इन गतिविधियों का सबसे पहला प्रभाव भारत की समुद्री सुरक्षा अवधारणा पर पड़ता है, क्योंकि पारंपरिक खतरे की पहचान यहाँ कठिन हो जाती है। जब चुनौती किसी स्पष्ट सैन्य आक्रमण के रूप में सामने नहीं आती, तो सुरक्षा एजेंसियों के लिए यह तय करना कठिन हो जाता है कि प्रतिक्रिया किस स्तर पर और किस माध्यम से दी जाए। इससे निर्णय–प्रक्रिया में असमंजस और विलंब की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। भारतीय सुरक्षा पर ग्रे–जोन युद्ध का एक गंभीर प्रभाव समुद्री डोमेन में सूचनात्मक अस्पष्टता के रूप में उभरता है। अनुसंधान, सर्वेक्षण या वाणिज्यिक गतिविधियों के आवरण में की जाने वाली गतिविधियाँ भारत की समुद्री जागरूकता प्रणाली पर दबाव डालती हैं। जब किसी गतिविधि की मंशा स्पष्ट नहीं होती, तो उसे संभावित खतरे के रूप में चिह्नित करना कानूनी और कूटनीतिक दोनों स्तरों पर चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इससे भारत की निगरानी क्षमता भले ही तकनीकी रूप से सुदृढ़ हो, लेकिन उसका प्रभावी उपयोग सीमित हो सकता है। ग्रे–जोन रणनीतियाँ भारतीय सुरक्षा को अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक क्षेत्र में भी प्रभावित करती हैं। समुद्री मार्गों से जुड़े अनौपचारिक दबाव, लॉजिस्टिक नेटवर्क पर सूक्ष्म हस्तक्षेप और बंदरगाह आधारित गतिविधियों के माध्यम से भारत की आपूर्ति श्रृंखलाओं पर प्रभाव डाला जा सकता है। चूँकि ये प्रभाव अचानक नहीं बल्कि क्रमिक होते हैं, इसलिए इन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे के रूप में समय रहते पहचानना कठिन हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच की रेखा धुंधली होने लगती है।

भारतीय सुरक्षा के लिए एक और महत्वपूर्ण चिंता रणनीतिक स्वायत्तता से जुड़ी है। ग्रे–जोन युद्ध का उद्देश्य अक्सर किसी देश को सीधे टकराव में उलझाना नहीं, बल्कि उसे ऐसी स्थिति में लाना होता है जहाँ उसके विकल्प सीमित हो जाएँ। जब भारत को हर कदम पर कूटनीतिक संतुलन, कानूनी सीमाओं और क्षेत्रीय

प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखना पड़ता है, तब उसकी स्वतंत्र निर्णय क्षमता पर अप्रत्यक्ष दबाव पड़ता है। यह स्थिति भारत की दीर्घकालिक सुरक्षा नीति के लिए चुनौती बन सकती है। सूचना और संचार के क्षेत्र में ग्रे–जोन गतिविधियाँ भारतीय सुरक्षा ढाँचे को एक नए प्रकार के जोखिम के सामने खड़ा करती हैं। सूचना प्रवाह को प्रभावित करने, कथानक निर्माण और धारणाओं को आकार देने के प्रयास भारत के रणनीतिक वातावरण को प्रभावित कर सकते हैं। जब किसी सुरक्षा मुद्दे को लेकर भ्रम या विरोधाभासी सूचनाएँ फैलती हैं, तो नीति–निर्माण और सार्वजनिक समर्थन दोनों प्रभावित होते हैं। इससे आंतरिक स्थिरता और बाहरी प्रतिक्रिया के बीच संतुलन बनाए रखना कठिन हो जाता है।

आंतरिक सुरक्षा के संदर्भ में भी ग्रे–जोन युद्ध के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। समुद्री क्षेत्र में होने वाली अप्रत्यक्ष गतिविधियाँ तटीय राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था, कानून प्रवर्तन एजेंसियों और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर असर डाल सकती हैं। जब बाहरी प्रभाव आंतरिक कमजोरियों से जुड़ जाते हैं, तो वे राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अधिक जटिल चुनौती का रूप ले लेते हैं। भारतीय सुरक्षा नीति के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि ग्रे–जोन युद्ध की स्थिति में प्रतिरोध की सीमा क्या होनी चाहिए। अत्यधिक प्रतिक्रिया कूटनीतिक तनाव को बढ़ा सकती है, जबकि कम प्रतिक्रिया रणनीतिक नुकसान का कारण बन सकती है। यह दुविधा भारत को ऐसी स्थिति में ला देती है जहाँ हर कदम को बहु–स्तरीय प्रभावों के संदर्भ में तौलना पड़ता है। इससे सुरक्षा नीति अधिक सतर्क तो बनती है, लेकिन कई बार कम निर्णायक भी हो सकती है। अंततः, हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे–जोन युद्ध भारतीय सुरक्षा के लिए किसी एक आयाम तक सीमित खतरा नहीं है। यह भारत की रणनीतिक सोच, संस्थागत प्रतिक्रिया और दीर्घकालिक नीति निर्माण को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। इसकी सबसे बड़ी चुनौती यही है कि यह भारत को निरंतर दबाव की स्थिति में रखता है, बिना किसी स्पष्ट संघर्ष के। ऐसे में भारतीय सुरक्षा के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह इन अप्रत्यक्ष प्रभावों को समय रहते पहचान कर, संतुलित और दूरदर्शी रणनीति विकसित करें, जिससे राष्ट्रीय हितों की रक्षा बिना अनावश्यक टकराव के की जा सके।

निष्कर्ष :–

हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे–जोन युद्ध की निरंतर सक्रियता भारतीय सुरक्षा के लिए यह संकेत देती है कि भविष्य की चुनौतियाँ अचानक नहीं, बल्कि धीरे–धीरे और निरंतर दबाव के रूप में सामने आएँगी। इसका सबसे गहरा प्रभाव इस तथ्य में निहित है कि भारत को अब सुरक्षा खतरों का आकलन केवल युद्ध या शांति की पारंपरिक श्रेणियों में नहीं करना होगा। भारतीय सुरक्षा व्यवस्था को ऐसे वातावरण में कार्य करना पड़ेगा जहाँ खतरे की पहचान स्पष्ट नहीं होगी, किंतु उसका रणनीतिक प्रभाव वास्तविक और स्थायी होगा। यह स्थिति भारत को लगातार सतर्क रहने की अवस्था में रखेगी, जिससे संसाधनों, ध्यान और नीति–निर्माण पर दीर्घकालिक दबाव बना रहेगा। भारतीय सुरक्षा पर इसका एक महत्वपूर्ण प्रभाव रणनीतिक पूर्वानुमान की जटिलता के रूप में दिखाई देगा। जब चुनौती का स्वरूप अस्पष्ट होता है, तो दीर्घकालिक योजना बनाना कठिन हो जाता है। ग्रे–जोन युद्ध भारत को ऐसी परिस्थितियों में ला सकता है जहाँ उसे हर कदम पर यह विचार करना पड़ेगा कि किसी कार्रवाई का परिणाम केवल तत्काल नहीं, बल्कि भविष्य में किस प्रकार सामने आएगा। इससे भारतीय सुरक्षा नीति अधिक सतर्क और गणनात्मक हो सकती है, लेकिन साथ ही उसमें जोखिम लेने की क्षमता सीमित होने की

संभावना भी बढ़ जाती है। इस प्रकार के संघर्ष का एक और प्रभाव यह होगा कि भारतीय सुरक्षा को निरंतर बहु–स्तरीय दबाव का सामना करना पड़ेगा। कोई एक घटना निर्णायक नहीं होगी, बल्कि कई छोटी–छोटी गतिविधियाँ मिलकर रणनीतिक असंतुलन उत्पन्न करेंगी। इससे भारत के लिए यह आवश्यक हो जाएगा कि वह सुरक्षा को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखे, न कि प्रतिक्रिया–आधारित व्यवस्था के रूप में। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो अप्रत्यक्ष चुनौतियाँ धीरे–धीरे भारत की सामरिक स्थिति को कमजोर कर सकती हैं, बिना किसी स्पष्ट चेतावनी के।

ग्रे–जोन युद्ध भारतीय सुरक्षा की प्राथमिकताओं को भी पुनर्परिभाषित करने के लिए बाध्य करेगा। पारंपरिक सैन्य शक्ति की उपयोगिता बनी रहेगी, लेकिन वह अकेले पर्याप्त नहीं होगी। सुरक्षा के ऐसे क्षेत्रों को भी समान महत्व देना होगा, जो पहले द्वितीयक माने जाते थे। यदि इन क्षेत्रों पर समय रहते ध्यान नहीं दिया गया, तो भारत को अपनी ही क्षमताओं के बावजूद रणनीतिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। यह स्थिति भारतीय सुरक्षा के लिए एक संरचनात्मक चुनौती का रूप ले सकती है। भारतीय सुरक्षा पर इसका प्रभाव कूटनीतिक स्तर पर भी दिखाई देगा। ग्रे–जोन युद्ध की प्रकृति भारत को ऐसी स्थिति में डाल सकती है जहाँ हर सुरक्षा निर्णय का कूटनीतिक अर्थ निकाल लिया जाए। इससे भारत के लिए संतुलन बनाना कठिन होगाकृएक ओर राष्ट्रीय हितों की रक्षा और दूसरी ओर क्षेत्रीय स्थिरता की छवि बनाए रखना। यदि यह संतुलन बिगड़ता है, तो भारत की रणनीतिक विश्वसनीयता और नेतृत्व भूमिका पर भी प्रश्न खड़े हो सकते हैं।

आंतरिक रूप से, भारतीय सुरक्षा के लिए यह स्थिति नीति–निर्माण और संस्थागत समन्वय की परीक्षा होगी। जब खतरे स्पष्ट नहीं होते, तब विभिन्न एजेंसियों के बीच समन्वय की आवश्यकता बढ़ जाती है। यदि यह समन्वय प्रभावी नहीं हुआ, तो ग्रे–जोन गतिविधियाँ भारत की आंतरिक कमजोरियों का लाभ उठा सकती हैं। इसका प्रभाव सुरक्षा प्रतिक्रिया की गति और गुणवत्ता दोनों पर पड़ सकता है, जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा ढाँचा अपेक्षित स्तर पर कार्य नहीं कर पाएगा। ग्रे–जोन युद्ध का दीर्घकालिक प्रभाव यह भी हो सकता है कि भारतीय सुरक्षा नीति अधिक रक्षात्मक हो जाए। लगातार अप्रत्यक्ष दबाव की स्थिति में भारत अपनी ऊर्जा नुकसान को रोकने में अधिक लगाएगा, बजाय इसके कि वह नए अवसरों और रणनीतिक विस्तार पर ध्यान केंद्रित करे। इससे भारत की सामरिक पहल क्षमता सीमित हो सकती है, जो किसी भी उभरती शक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा मानी जाती है। भारतीय सुरक्षा के संदर्भ में यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रे–जोन युद्ध का प्रभाव केवल बाहरी नहीं रहता। जब बाहरी दबाव लंबे समय तक बना रहता है, तो उसका प्रभाव आंतरिक निर्णयों, प्राथमिकताओं और संसाधन वितरण पर भी पड़ता है। यदि इस दबाव को सही ढंग से प्रबंधित नहीं किया गया, तो यह भारत की दीर्घकालिक सुरक्षा सोच को प्रतिक्रियात्मक बना सकता है, जो रणनीतिक रूप से अनुकूल स्थिति नहीं मानी जाती।

अंततः, हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे–जोन युद्ध भारतीय सुरक्षा के लिए एक ऐसी चुनौती के रूप में सामने आता है, जो न तो तत्काल संकट पैदा करता है और न ही स्पष्ट समाधान प्रस्तुत करता है। इसका सबसे बड़ा प्रभाव यही है कि यह भारत को निरंतर अनिश्चितता की स्थिति में रखता है। ऐसी स्थिति में भारतीय सुरक्षा के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह होगी कि वह धैर्य, सतर्कता और दीर्घकालिक दृष्टि के साथ अपनी रणनीति को आगे बढ़ाए। यदि भारत इस अप्रत्यक्ष संघर्ष की प्रकृति को समय रहते समझकर संतुलित प्रतिक्रिया विकसित कर लेता है, तो वह न केवल अपने सुरक्षा हितों की रक्षा कर सकेगा, बल्कि इस जटिल वातावरण में अपनी रणनीतिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाए रखेगा।

सन्दर्भ सूची :-

1. Brewster, D. (2018). India and China at sea: Competition for naval dominance in the Indian Ocean. Oxford University Press.
2. Till, G. (2018). Seapower: A guide for the twenty-first century (4th ed.). Routledge.
3. Erickson, A. S. (Ed.). (2022). Maritime gray zone operations: Challenges and countermeasures in the Indo-Pacific. Naval Institute Press.
4. Pant, H. V. (2020). India's national security: Challenges and dilemmas. Polity Press.
5. Mishra, V. (2019). India's maritime strategy and security dilemmas in the Indian Ocean. Strategic Analysis, 43(3), 215–229. https://doi.org/10.1080/09700161.2019.1615734?
6. Scott, D. (2018). The Indo-Pacific in US strategy: Responding to power shifts. Rising Powers Quarterly, 3(2), 19–43.
7. Singh, A. (2020). Grey zone conflicts and India's evolving security doctrine. Journal of Defence Studies, 14(2), 67–82.
8. Freedman, L. (2019). The future of war: A history. PublicAffairs.
9. Cordesman, A. H. (2020). Hybrid warfare and gray zone threats. Center for Strategic and International Studies Report. https://www.csis.org/analysis/hybrid-warfare-and-gray-zone-threats?
10. Holmes, J. R. (2014). What is hybrid warfare? The Diplomat. https://thediplomat.com/2014/07/what-is-hybrid-warfare?
11. Jaishankar, S. (2020). The India way: Strategies for an uncertain world. HarperCollins India.
12. Walt, S. M. (2018). The return of great power politics. Foreign Affairs, 97(1), 10–15.
13. Kaplan, R. D. (2010). Monsoon: The Indian Ocean and the future of American power. Random House.
14. World Bank. (2020). Trade and maritime security in the Indian Ocean Region. World Bank Publications.
15. Indian Ministry of Defence. (2024). Annual report 2023–24. Government of India.
16. Singh, R. (2021). India's maritime security strategy in the Indian Ocean Region. Defence Studies, 21(3), 312–329. https://doi.org/10.1080/14702436.2021.1901023
17. Pant, H. V., & Rej, A. (2018). India's emerging maritime strategy. Defence Studies, 18(4), 431–449. https://doi.org/10.1080/14702436.2018.1521164
18. Brewster, D. (2016). India's security challenges in the Indian Ocean. Defence Studies, 16(4), 342–359. https://doi.org/10.1080/14702436.2016.1229288
19. Mishra, V., & Baruah, D. M. (2020). The evolving security architecture in the Indian Ocean. Journal of the Indian Ocean Region, 16(2), 145–160. https://doi.org/10.1080/19480881.2020.1762145
20. Scott, D. (2019). Strategic competition in the Indian Ocean and India's security role. Defence & Security Analysis, 35(2), 125–140. https://doi.org/10.1080/14751798.2019.1590705

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 127-131

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

ग्रामीण स्त्रियों की लोमहर्षक त्रासदी का यथार्थ (‘औरत’ उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

डॉ० शशि कुमार शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
वर्द्धमान विश्वविद्यालय, गोलापबाग–713104

शिवप्रसाद सिंह हिंदी के श्रेष्ठ और संवेदनशील उपन्यासकार हैं। उनमें स्त्रियों के प्रति सम्मान, सहानुभूति और संवेदना की भावना विद्यमान हैं। उनके इस संवेदनशील व्यक्तित्व ने ‘औरत’ नामक उपन्यास की रचना की। यह रचना गाँवों में जीवन–यापन कर रहें स्त्रियों की पीड़ा और त्रासदी को मुकम्मल रुप में प्रस्तुत करती है। शिवप्रसाद सिंह की इसी संवेदना पर टिप्पणी करते हुए रामचंद्र तिवारी ने कहा है–”शिवप्रसाद सिंह नयी संवेदना के रचनाकार हैं। उन्होंने अस्तित्त्ववादी चिंतन, मार्क्सवादी विचार–पद्धति तथा अरविन्द–दर्शन के तत्त्वों के बीच से अपनी संवेदना का विस्तार किया है।“[1] शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण व्यवस्था की नब्ज को पकड़ते हुए, वहाँ की स्त्रियों पर हुए अत्याचारों के विविध रूपों को उद्‌घाटित किया है। अपनी तीक्ष्ण और पैनी दृष्टि तथा दूरदर्शिता के कारण ही उन्होंने स्त्री जीवन से संबंधित त्रासदी के वैविद्य रूपों को ग्रामीण यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में चिन्हित किया है।

भारतीय संविधान में स्त्रियों को अनेक अधिकार दिए गए हैं। शहरों में तो स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत और जागरूक हैं, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश स्त्रियों को न ही संविधान की जानकारी है और न ही वे अपने अधिकारों से परिचित हैं। इसके मूल में आर्थिक समस्या, शिक्षा का अभाव तथा सामाजिक विषमता की भावना ही प्रबल दिखाई पड़ती है। शहरों में रोजगार के साधन गाँवों की तुलना में अधिक है जबकि गाँवों में बेकारी की समस्या शहरों की तुलना में अधिक है। परिणामतः ग्रामीण स्त्रियों को किसी न किसी प्रकार से परिस्थितियों की चपेट में आकर शोषाण का शिकार होना पड़ता है। सरकारी संस्थाओं और समाजशात्रियों द्वारा जनगणना के दौरान स्त्रियों के जीवन से संबंधित कई प्रकार के आकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं। इन आकड़ों में स्त्रियों के जीवन को पहले से उन्न्त और उत्कृष्ट बताया जाता है। जबकि यह आकड़े यथार्थ को हु–ब–हु प्रस्तुत करने में असक्षम साबित होता है। शिवप्रसाद सिंह ने इस उपन्यास में औरतों से संबंधित उन आकड़ों को मिथ्या प्रमाणित किया है जो समाजशास्त्रियों और सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती है। बलदेव कुमार ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है– ”भारतीय औरतों की व्यथा और उसके औरतपन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का केंद्र बिंदु है। यह वह औरत है, जिसका चेहरा, जिसका व्यक्तित्व सरकारी आँकड़ों में दिखाई गई औरत से पूरी तरह

भिन्न है। यह उपन्यास खुशफहमियों के अँधेरे में उजाले की सही किरण है, जिसके द्वारा पाठक औरत के व्यक्तित्व के विभिन्न 'शेड्ज' को वास्तविक रूप में देख सकता है।"[2]

उपन्यास का नायक शिवेंद्र हैं। वे समाजशास्त्री और शोध प्रबंध का निर्देशक हैं। उन्होंने अपने मित्र प्रेमस्वरूप को 'पूर्वांचल में नारी की स्थिति' विषय पर शोध करने का मौका दिया। प्रेमस्वरूप के अंदर उत्साह और जुनून भरा हुआ है। वह चाहता है कि गाँवों में घूमघूम कर औरतों से बातें करके शोध को यथार्थ का रूप दिया जाए। चूँकि शिवेंद्र एक व्यवहारिक और संवेदनशील व्यक्ति है। वे जानते हैं कि गाँवों में कितना भी चक्कर लगाया जाए, पर यथार्थ को पूर्णयतरू प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है। दर–दर की ठोकरें खाकर कितना भी सामग्री इकट्ठा की जाए, वह अधूरा ही रहेगा। स्त्रियों का भविष्य सरकारी आँकड़ों के अनुसार तो बेहतर है, परंतु शिवप्रसाद सिंह के अनुसार कुछ इस प्रकार है– "औरतों की इस भीड़ में पचास फीसदी वे लड़कियाँ है जो चार पाँच साल के अंदर करमू पानी कर्मनाशा के पनघट को छोड़कर किसी और पनघट को खोजने चली जाएंगी? शेष पचास फीसद तो पाँच साल के भीतर यहां आई हुई व्याहताएँ हैं, जिनके मन को कोई जनता नहीं। जहाँ नदी नहीं होती, वहाँ कुआँ ही पनघट होता है।"[3] अतः शिवप्रसाद सिंह ने स्पष्ट किया है कि कठोर परिश्रम करके भी कठोर सत्य को प्रतिस्थापित करना मील का पत्थर तय करना है। उनका मानना है कि शोध के जरिये ग्रामीण औरतों की पीड़ा को पकड़ा का सकता है। सटिक आँकड़े इक्ट्ठे किए जाते हैं किंतु अंततः बने बनाए आँकड़ों को ही लिपिबद्ध किया जाता है। लेखक ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं– "तुम्हारे शोध प्रबंध के निर्णायक वे समाजशास्त्री ही होंगे जो नारी–जागरण पर शोध कराकर और करके विद्या–मंदिरों में ऊंची कुर्सियों पर बैठे हैं। ...जब सारे आंकड़े एक जैसे हैं, तो तुम्हारे अलग कैसे हो सकते हैं?"[4]

शिवेंद्र अपने मित्र प्रेमस्वरूप को ग्रामीण जीवन की एक झलक दिखने हेतु अपने गाँव लेकर आता है। इसी दौरान शिवेंद्र और उसके रिश्ते के चाचा सोबरन राय से कहा सुनी हो जाती है। अपने मित्र के सामने ही शिवेंद्र को चाचा की बात सुननी पड़ती है। उन्होंने शिवेंद्र से कहा कि जिस प्रकार उसने 'सोना' और 'रूपा' का उद्दार किया था, उसी प्रकार की भूमिका 'तेतिया' के प्रति भी निभायें। इस प्रकार के वाद–विवाद को सुनने के पश्चात् मित्र प्रेमस्वरूप के मन में व्याप्त प्रश्नों के प्रति उत्साह बढ़ता जाता है। वह प्रश्न करता है। उत्तर आने लगते हैं। इस प्रकार ग्रामीण स्त्रियों की सच्चाई परत दर परत खुलती जाती हैं।

'सोनवा' इस उपन्यास की एक ऐसी स्त्री है, जो कभी जिद्दीपन पर उतर आती है और कभी मन की दुर्बलताओं का शिकार हो जाती है। कभी वह तथाकथित धर्मपिता सोबरन राय द्वारा दिए गए उपहारों पर इठलाती है और कभी शिवेंद्र के प्रेमरूपी विरह की ज्वाला में तड़पती हुई नजर आती है। कभी वह मजदूरनियों का पक्ष लेती हुई सत्याग्रह करती है और कभी रणचण्डी बन जाती है। इन तमाम कार्यों को अंजाम देने के दौरान ही, उसे सोबरन राय की वासना का शिकार बनना पड़ता है। इस प्रकार अन्याय और अत्याचार सोबरन राय द्वारा किया जाता है और 'सोनवा' अपने परिवार वालों की नजरों से गिर जाती है। उसी का भाई उस पर आरोप लगाते हुए कहता है कि "बड़ी बहन नहीं हरजाई और चुड़ैल है।"[5] 'सोनवा' पर अत्याचार होता रहा। वह लाख कोशिश करके भी अपनी अस्मत की रक्षा नहीं कर पाई। रोती रही, चिल्लाती रही, तड़पती रही पर सोबरन राय ने उसकी एक न सुनी। उसने स्पष्ट रूप से कहा– "मैं बेबस थी। उसके लठैतों ने मेरे हाथ–पैर बांध दिए थे। मैंने बहुत कोशिश की। चिल्लाई। सोबरन ने खुद मेरे मुंह में अपना गमछा "ठूंस दिया। मेरा शरीर पसीने–पसीने हो रहा

था—पर मैं अकेली औरत कर क्या सकती थी।"[6] इस प्रकार 'सोनवा' का जीवन सिर्फ बाहर के लोगों से ही कलंकित नहीं होता अपितु परिवार वालों ने भी उस पर लांछन लगाकर उसके घाव में नमक का काम किया। बेवस और असहाय सोनवा अंततरू जहर पीकर जान दे देती है। मृत्यु के पश्चात् परिवार वालों को अपनी गलती का एहसास होता है किंतु तब तक काफी देर हो चूँकि थी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिंदा रहने पर 'सोनवा' के पीड़ा और दर्द को हाशिए पर रखा गया, नजरअंदाज किया जाता रहा, किन्तु प्राण त्यागने के बाद सहानुभूति के घड़ियाली आँसू बहाये जाते हैं।

शिवप्रसाद सिंह ग्रामीण यथार्थ के चितेरे थे। उन्हें ग्रामीण स्त्रियों के विविध यथार्थ का अनुभव था। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अपनी कन्या 'मंजू' को लेकर उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा था। ग्रामीण स्त्रियों को एक स्तर प्रदान करने के लिए उन्होंने हर सम्भव प्रयास किया। संक्षेप में कहा जाए तो स्त्रियों की पीड़ा का अनुभव उन्होंने काफी बारीकी से किया था। इसी भोगे हुए अनुभव की अभिव्यक्ति उन्होंने 'औरत' नामक उपन्यास में किया है। टी० एस० इलियट ने लिखा है— "There is always a separation between the man who suffers and the artist who creats and the greater the saperation the greater the artist." अर्थात् 'भोगने वाले प्राणी और रचना करने वाले कलाकार में सदा एक अलगाव बना रहता है। जितना ही बड़ा वह अलगाव है, उतना ही बड़ा कलाकार होता।' सुदर्शन तिवारी भी गरीब सुखिया का बलात्कार करता है। रूपवा जब सुदर्शन को सजा दिलवाने हेतु हरीश की मदद से सबूत इक्कठा करती है, तो सुदर्शन पुलिस की सहायता से रूपवा का जीवन भी समाप्त कर देता है। इस प्रकार की त्रासद सच्चाई को लेखक ने दलित स्त्री के संदर्भ में भी प्रस्तुत किया है। स्त्रीयों की पीड़ा इतनी गहरी है कि उसे लेखक ने इन शब्दों में बया किया है—"घबराने की बात नहीं है रिसर्चर, यह तो सिर्फ एक छींटा है। कभी धार देखना हो तो मेरे साथ पुनः आना करमूपुरा।"[7]

'औरत' उपन्यास के अन्य स्त्री पात्र जैसे रूपवा, राजी, चंद्रा, रोशन, सुखिया और प्रतिभा बंसल सब किसी न किसी प्रकार से पीड़ित और शोषित हैं। चुनौतियों का मुकाबला ये उपर्युक्त पात्र अपने—अपने ढ़ंग से करते हैं। 'चंद्रा' और 'प्रतिभा' साहसी स्त्रियाँ हैं। वे चुनौतियाँ और समस्याओं का सामना करते—करते चूर हो जाती हैं, पर पराजय को स्वीकार नहीं करती। वे फिर से फिर से साहस और शौर्य का परिचय देते हुए प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्व को बनाए रखती हैं। चंद्रा को जायदाद के कारण लालची संबंधियों के षड्यंत्रों का सामना करना पड़ता है, जबकि प्रतिभा का प्रेमी उसे इसलिए छोड़ देता है कि उसे घर से निकलकर बाहर काम करने वाली हर औरत चरित्रहीन लगती है। 'प्रतिभा बंसल' पुलिस अधीक्षक जैसे सम्मानित पद पर कार्यरत है। फिर भी सुदर्शन उसे 'राँड', 'चरित्रहीन', और 'दो कौड़ी की औरत' जैसे अपशब्दों का प्रयोग करता है। न्याय का साथ देने पर 'प्रतिभा' का तबादला करवा दिया जाता है और वह भी यह कह कर कि वह एक चरित्रहीन औरत है जो किसी भी इज्जतदार और नेक इंशान को बे—इज्जत कर सकती है। लेखक के शब्दों में—"इससे जो ठेस लगी थी प्रतिभा के मन पर वह जरा—सा छेड़ देने से प्रतिशोध में बदल जाती थी। वह गलत काम करने वाले हर जालिम को पीटते वक्त वही कहती जो उसे ठुकराते वक्त कहा गया था, यानी औरत चरित्रहीन होती है, औरत चरित्रहीन होती है।"[8]

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में स्त्री सामाजिक यथार्थ के रूप में उभर कर आती है। वह कभी गृहिणी के रूप में अपनी भूमिका निभाती है, कभी पत्नी के रूप में और कभी माता के रूप में। वह अनगिनत कष्टों को

सहकर भी अपने कर्तव्यों का पालन भलिभाँती करती है। लेखक ने विवाह के पश्चात् स्त्री के जीवन में घटने वाली विविध आयामों का भी चित्रण किया है। कनिया का विवाह बुझारथ से हो जाता है। विवाह के पश्चात् कनिया का जीवन निराशा और घुटन से भर जाता है क्योंकि उसके पति बुझारथ एक आवारा, बदमाश तथा गैर जिम्मेदार प्रवृत्ति का युवक है। परिणामतः विवाह के कुछ ही समय बाद कनिया अपने पति से अलग हो जाती है। मीरपुर की हवेली में जैयपाल सिंह की मृत्यु हो जाती है। मृत्युशैया पर लेटे बूढ़े ससुर को दिये हुए वचन तथा मान–अपमान को भूलकर परिवार की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए करैता चली आती है। वह एक कुलीन खानदान की नारी है जो नालायक और दुष्ट बुझारथ के साथ सिर्फ अपनी पारिवारिक मान–मर्यादा को बरकरार रखने के लिए घुट–घुट कर जी रही है।

'पटनहिया' भाभी के माध्यम से भी लेखक ने भारतीय नारी के त्याग और संयमरूपी संस्कार को स्वर दिया गया है। पटनहिया भाभी एक पढ़ी–लिखी, व्यवहार कुशल, वाकपटु तथा संस्कार–सम्पन्न परिवार की कन्या है। उसमें एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुण विद्यमान हैं। यही कारण है कि पति के नामर्द होने पर भी वह संयम के साथ जीवन यापन करती है। भारतीय जीवन–परम्पराओं का निर्वाह वह भली–भाँति करती है। उसमें यौन संबंधों के प्रति एक ललक है, एक प्रकार की अतृप्ति है, फिर भी वह अनुशासन और संयम का अतिक्रमण नहीं करती। पटनहिया भाभी के प्रति विपिन, शशिकांत और देवनाथ के मन में एक इच्छा छिपी रहती है। तीनों किसी न किसी रूप में भाभी के प्रिय बनना चाहते हैं । लाख कोशिश करके भी वे सब असफल ही रहते हैं।

हजारों वर्षों का भारतीय इतिहास ने नारी को रत्न का दर्जा प्रदान किया है। कभी उसे देवी के रूप में देखा गया, तो कभी चंडी के रूप में। लेकिन सच्चाई यह है कि औरतों को लुटने, ठगने, धोखा देने और किसी न किसी तिकड़म में फसाने का सिलसिला आज भी जारी है। औरतों की नियति पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने कहा है– "औरत की कीमत ही क्या है इस समाज में। वह चाहे हिंदू हो चाहे मुसलमान। वह चाहे हरिजन हो या पठान सबकी एक नियति है।"[9] इस प्रकार लेखक ने ग्रामीण जीवन से संबंधित विविध समस्याओं के साथ–साथ औरतों की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। पारूकांत देसाई के शब्दानुसार–"लेखक ने 'करेता' गाँव के माध्यम से स्वाधीनता–प्राप्ति के बाद के भारतीय–जन जीवन की नाना वैतरणियों को तलाशने का प्रामाणिक प्रत्यन किया है।"[9] औरतों को सम्मान न देना, उनके अधिकारों को छिन कर उन्हें प्रताड़ित करना आदि कारणों से हमारा देश आज भी अपमानित है। शादी से पूर्व उसे पिता के अधिन रखा जाता है, विवाह हो जाने के बाद पति के गिरफ्त में रहती है, विधवा हो जाने पर पुत्र के सहारे जीती है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अगर कोई विधवा से विवाह भी करता भी है, तो उसे दया और असहाय वस्तु मानकर करता है, न की सम्मान की भावना से। यही कारण है कि आज भी हमारे गाँव में, समाज में और देश में स्त्रियों की दशा बदत्तर है, प्रताड़ित है। लेखक ने इस संदर्भ में टिप्पणी करते हुए कहा है–"आज पुरी दुनिया में हिंदुस्तान की बेइज्जती इसीलिए हो रही है कि वह अस्सी करोड़ जनता वाला देश अपनी चालीस करोड़ स्त्रियों को गुलाम की तरह 'ट्रीट' करता है।"[10]

अंततः कहा जा सकता है कि शिवप्रसाद सिंह ने 'औरत' उपन्यास में ग्रामीण स्त्रियों की त्रासदी के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित किया है। उन्होंने यह दर्शाया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आदि से अंत तक स्त्रियाँ शोषण की चक्की में पिसती रहती हैं। लाख कोशिश करने पर भी वे किसी न किसी प्रकार से छली जाती है, ठगी जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्त्रियों के प्रति शिवप्रसाद सिंह की दृष्टि स्वस्थ और कल्याणकारी

है। उनके स्त्री पात्र पतिव्रताएँ भी है, पतिताएँ भी है, वेश्याएँ भी है, गुलाम भी है, रक्षिताएँ भी है, वंचिताएँ भी और विद्रोहीणी भी। शहरों में जब स्त्रियों पर अत्याचार किया जाता है, तो उनमें से कुछ की ध्वनि दूर–दूर तक सुनाई देती है, जबकि ग्रामीण स्त्रियों की पीड़ा की गूंज उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है। शिवप्रसाद सिंह स्त्रियों की इसी पीड़ा और छटपटाहट को विराम देकर गतिशील जीवन प्रदान करना चाहते हैं।

संदर्भ :

1. तिवारी, रामचंद्र, मानव–चेतना के ऊर्ध्व स्तरों का साक्षात्कार, सं०–अरुणेश नीरन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र० सं०– 1994, पृ० 171
2. कुमार, बलदेव, औरत : खुशफहमियों के अँधेरे में उजाले की सही किरण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र० सं० 1995 पृ० 226
3. सिंह, शिवप्रसाद, औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2002, पृ० 7
4. वही, पृ० 8
5. वही, पृ० 106
6. वही, पृ० 26
7. सिंह, शिवप्रसाद, औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2002, पृ०
8. वही, पृ० 107
9. देसाई, पारुकांत, हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०–2002, पृ. 206
10. वही, पृ० सिंह, शिवप्रसाद, औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2002, पृ० 109

shashibu07@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 132-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

झारखण्ड के उराँव जनजाति की युवागृह संस्था

डॉ० प्रमीला उराँव

असिस्टेंट प्रोफेसर, कुँड़ुख़ विभाग

करमचन्द भगत महाविद्यालय, बेड़ो, राँची।

राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

उराँव समाज में युवागृह को धुमकुड़िया कहा जाता है। पुरूषों के धुमकुड़िया को 'जोंख़ एड़पा' कहते है, और महिलाओं के धुमकुड़िया को 'पेल्लो एड़पा' कहते है। पुरूषों की यह संस्था उराँव समाज के लिए धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और अन्य पहलुओं पर काम करता है। यह संगठन उराँव आदिवासियों के बीच शुरू से ही चला आ रहा है। इस संगठन के सदस्य धांगर कहलाते है। ये धांगर या धुमकुड़िया के सदस्य तीन श्रेणियों में विभाजित रहते है। पहला कार्यरत नवयुवक धांगर, दूसरा मझतुड़िया याने बीच के धांगर, जो नये धांगरों के चुनाव के पहले कार्यरत थे और तीसरे नम्बर में बूढ़े धांगर याने 'कोंहा जोंख़र' या पचगी जोंख़र। इस प्रकार छोटे–छोटे बच्चों और अति बूढ़ों को छोड़कर समाज के सभी योग्य पुरूष इस संस्था के सदस्य बन कर एक सूत्र में बंध जाते है। नवयुवक धांगर ही वर्तमान समय के सभी कार्यक्रमों में कार्यरत रहते है। समाज के सभी कार्यों का सम्पादन करते है। जरूरत पड़ने पर बीच के मझतुड़िया धांगर नवयुवक धांगरों के कार्यों में मदद करते है। पचगी धांगर और दूसरे धांगरों के बीच सलाहकार का काम करते है ये दिमागी मदद देते है।

इनके संचालन या नेता कोटवार कहलाते है। तीनों श्रेणियों के लिए अलग–अलग तीन कोटवार होते है। कोटवारों का काम संस्था के सदस्यों को अनुशासित रखना, पर्व–त्योहार के फूल लाकर नृत्य मण्डली में बाँटना और नृत्य में शामिल नहीं होने पर युवकों को घर से खोज–खोज कर निकालना, नहीं निकलने पर युवकों को बिन्दी–पुआल से बने कोर्रा (कोड़े) से मार–मारकर नृत्य अखाड़े में भेजना है। युवकों के सामाजिक और सामाजिक कार्यों के लिए मध्यस्ता करना। ये ही युवकों की ओर से काम कराने वालों के साथ लेन–देन के विषय में बात करते है।

नवयुवक धांगरों के धुमकुड़िया संस्था में शामिल होने की विधि को 'जोंख़ मंखना' कहते है। प्रत्येक तीन वर्षों में युवकों की बहाली धुमकुड़िया में नियमानुसार की जाती है। इन युवकों की आयु दस वर्ष से लेकर बीस वर्षों तक की होती है। इस अवस्था में ये समाज के कार्यों को करने के लिए सक्षम होते है। हरेक उराँव सरना परिवार के लड़के को इस संस्था का सदस्य होना अनिवार्य है। इनका कार्य काल तीन वर्षों का होता है। किन्तु जब तक नये धांगरों का चुनाव नहीं होता है ये ही समाज के कार्यों को संभालते है। जिस गाँव के युवक या लड़के छोटे–छोटे रहते हैं उस गाँव में चुनाव की अवधि पाँच, सात या दस वर्षों तक की भी हो जाती है।

माघ महीने के नये चाँद में गाँव वाले जंगलों में शिकार खेलने जाते हैं। इस शिकार में जितने भी जानवर मारे गए हो, उन्हें वे लाकर शिकर चंडी की जगह में काट कर माँस बनाते है। चुनाव के समय तीनों श्रेणियों के धांगरों को उपस्थित रहना जरूरी है। ये सभी मिलकर विचार–विमर्श करते हैं कि किस–किस उराँव परिवार में कौन–कौन लड़के धुमकुड़िया में बहाल होने योग्य है। उपस्थित सभी लोग मन ही मन में विचार करते है। इसके बाद में वे एक–एक करके अपना विचार प्रगट करते है। अंतिम निर्णय सर्वसम्मति से होती है। इन तीनों श्रेणियों के विचारों पर आधारित फैसलों के मुताबिक मारे गये शिकारों के माँसों को सखुए की पत्तियों में लपेट कर उन्हीं–उन्हीं के घरों में भेज दिए जाते है जिन–जिन घरों के लड़के धुमकुड़िया के सदस्य हो रहे है। इसकी सम्पुष्टि मूतरी चण्डी पर चढ़ायी गयी काली पठिया के माँसों को प्रसाद के रूप में खाने के बाद होती है। बकरे या काली पठिया के इस बली को 'एड़ा मोख़ना' कहा जाता है। पत्ते में लपेट कर दिये गए माँस को 'पत्ता' कहते है। नये धांगरों के चुनाव के समय इन्हें अविवाहित होना है।

इन नये धांगरों की भर्ती के बाद पुराने नवयुवक धांगर मझतुड़िया धांगरों की पचगी (बूढ़े) धांगरों में आप से आप परिणत हो जाते है। इसके बाद अपना–अपना कार्य करना शुरू कर देते है। दरअसल में नवयुवक धांगर ही कार्यों की सत्ता संभालते हैं। इन्हीं को समाज के सभी कार्यो को देखना है। पर्व–त्योहारों, धर्म–कर्म, दुःख–सुख, नाच–गान, पूजा–पाठ इत्यादि के कार्यों को नवयुवक धांगर, मझतुड़िया धांगरों की मदद और बूढ़े धांगरों की सलाह पर करते है।

नवयुक्त धांगर धुमकुड़िया के प्रशिक्षण से आज्ञाकारी, कर्त्तव्य–परायण और अनुशासनशील बन जाते है इस प्रकार मेहमान की इज्जत करना, बड़ों का आदर–सत्कार या सम्मान करना उराँव समाज का एक सामाजिक धरोहर है, इसकी सीख धुमकुड़िया के माध्यम से ही दी जाती है। धुमकुड़िया युवकों के अपने तरीके का पाठशाला, ज्ञानोदय करने वाला संस्था है। इसमें ज्ञान की सीख दी जाती है। धुमकुड़िया अखाड़े के पास बना होता है। यह एक बड़ी कोठरी होती थी, जिसमें खिड़की नहीं होते थे दरवाजा नीचा रहता था। इससे जाड़ा और गर्मी कम लगती है। इस धुमकुड़िया घर में लड़कियों को घुसना मना था। पहले स्कूल नहीं थे, यही धुमकुड़िया पाठशाला का रोल अदा करता था। मझतुड़िया धांगर की प्रशिक्षण देते थे। ये शिक्षक या गुरू रूप में काम करते थे। धुमकुड़िया का संचालन जोंख़ कोटवार और महतो धांगर करते है।

पेल्लो धुमकुड़िया का दूसरा नाम पेल्लो एड़पा है। जोंख़ धुमकुड़िया अखाड़े से सटा रहता है किन्तु पेल्लो धुमकुड़िया किसी विधवा के घर में रहता है। इसका घर अखड़े के नजदीक होना जरूरी नहीं है। विधवा की खाली घर पर निर्भर करता है कि पेल्लो एड़पा उराँव समाज के महिलाओं की संस्था या संगठन है। यह संस्था औरतों का धार्मिक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं के लिए है। संस्था नवयुवक धांगरों की संस्था के समान ही हरेक बिन्दुओं पर कार्य करती है। यह समाज की महिला सेना है।

युवकों की तरह ही पेल्लो धुमकुड़िया की सदस्य का चुनाव भी नियमतः तीन वर्षों के लिए होता है। चुनाव की अवधि लड़कियों के बढ़ने या उम्र पर निर्भर करती है। अगर लड़कियाँ छोटी–छोटी हैं तो इनका भी चुनाव, तीन, पाँच, सात या दस वर्षों में होती है। संगठन तीन श्रेणियों में बाँटी जाती है किन्तु मझतुड़िया और बूढ़ी औरतों की संख्या बहुत कम रहती है, क्योंकि लड़कियाँ शादी होकर दूसरे–दूसरे गाँव में चली जाती है और अपनी सदस्यता खो देती है। दूसरे गाँवों से आयी बहू इस संस्था की सदस्य नहीं बन सकती है, किन्तु बाहर से सभी

सामाजिक कार्यों में इस संगठन को सहयोग करती है, कुछ लड़कियाँ लड़कों के प्रेम बंधन में बन्धकर गाँव में ही रह जाती है और कई लड़कियाँ अविवाहित रह कर माँ—बाप के घर में रह जाती है। इनकी सदस्यता बनी रहती है। ऐसी लड़कियाँ तीनों प्रकार की श्रेणियों के लिए सदस्य बनने का हक रखती है। प्रथम श्रेणी की सदस्यों की संख्या सबसे अधिक रहती है। क्योंकि इसमें गाँव की सभी अविवाहित लड़कियाँ रहती है। दरअसल में ये ही लड़कियाँ पेल्लो धुमकुड़िया का कार्य—भार संभालती हैं।

इस धुमकुड़िया संगठन के कारण ही उस समय औरतों में इतना संगठन, साहस, एकता और अनुशासन था। इसका कारण धुमकुड़िया का निपुण प्रशिक्षण ही था। प्रशिक्षण के बल पर ये समाज के लिए एक मजबूत स्तम्भ याने सेना बन जाती थी। अभी भी आदिवासी औरतें वीर—धीर और साहसी होती है जो अपने—आप में नमूना स्वरूप है। ये घनघोर जंगलों में बाघ—भेड़, चीता, हाथी, साँप, बिच्छू और तरह—तरह के अन्य भयानक और विषैले जीव—जन्तुओं के बीच अकेली ही निर्भयतापूर्वक घूमती—फिरती है, और समय पड़ने पर उनसे मुकाबला भी करती है।

निष्कर्ष :–

धुमकुड़िया सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण का केन्द्र बन सकते है। आधुनिक धुमकुड़िया मात्र युवाओं तक सीमित न रहे, आदिवासी समाज में बुजुर्गों के अनुभव एवं ज्ञान का एक विशिष्ट स्थान है। यह अनमोल ज्ञान हमें किसी किताबो में नहीं मिलेगा। आज जो आदिवासी समाज से पारम्परिक ज्ञान, सामाजिक, सांस्कृतिक बोध, आदिवासी मौलिकता विलुप्त हो रही है। समृद्ध गीत—संगीत अपभ्रंश हो रहे है, ऐसे चुनौतियों को बुजुर्गों के संरक्षण में प्रभावी रूप से रोका या नियंत्रण किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. उराँव—सरना धर्म और संस्कृति, भीखू तिर्की, झारखण्ड झरोखा, रातु रोड, राँची, प्रथम संस्करण, 2011
2. झारखण्ड : भूमि और भूमि पुत्र (परिचयात्मक एवं तुलनात्मक) डॉ० बिमला चरण शर्मा, झारखण्ड झरोखा, रातु रोड, राँची, प्रथम संस्करण—2011
3. सामाजिक सांस्कृति मानवशास्त्र, विजय शंकर उपाध्याय गया पाण्डेय, क्राउन पब्लिकेशन, द्वितीय संस्करण, 2013

मो० नं० : 8434634784

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 135-142

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

वर्तमान संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली और उच्च शिक्षा : एक समन्वित अध्ययन

डॉ. सुबोध कुमार

सहायक प्राध्यापक

आरटीसी बी. एड. महाविद्यालय रांची, झारखंड, रांची विश्वविद्यालय रांची।

सार :

भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System – IKS) विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध ज्ञान परंपराओं में से एक है, जिसका आधार वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र, योग तथा नैतिक जीवन–दृष्टि पर आधारित है। यह प्रणाली केवल विषयगत ज्ञान तक सीमित न होकर व्यक्ति के समग्र विकास–बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पर बल देती है। समकालीन वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था के युग में उच्च शिक्षा के समक्ष गुणवत्ता, नवाचार, मूल्यपरकता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी चुनौतियाँ उपस्थित हैं। ऐसे संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली का पुनर्समावेश शिक्षा को अधिक समग्र, सांस्कृतिक रूप से सशक्त और सतत विकासोन्मुख बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

यह अध्ययन वैचारिक एवं नीतिगत विश्लेषण पर आधारित है, जिसमें National Education Policy 2020 तथा University Grants Commission की पहलों के आलोक में भारतीय ज्ञान प्रणाली के उच्च शिक्षा में एकीकरण की संभावनाओं का परीक्षण किया गया है। अध्ययन में दस्तावेजीय विश्लेषण, विषयवस्तु विश्लेषण तथा तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। निष्कर्षतः यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल सांस्कृतिक पुनर्जागरण का माध्यम है, बल्कि यह आलोचनात्मक चिंतन, नैतिक बोध, पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी प्रोत्साहित करती है। तथापि, इसके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के बीच संतुलित समन्वय, पाठ्यक्रम पुनर्संरचना तथा अनुसंधान–संवर्धन आवश्यक है। यह अध्ययन उच्च शिक्षा सुधार के विमर्श में एक सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द : भारतीय ज्ञान प्रणाली, उच्च शिक्षा, समन्वित दृष्टिकोण, नई शिक्षा नीति 2020, बहुविषयक शिक्षा, मूल्यपरक एवं सतत विकास।

प्रस्तावना :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आत्मा, उसकी सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास का मूल आधार होती है। किसी समाज की उन्नति केवल आर्थिक संसाधनों से नहीं, बल्कि उसकी ज्ञान–परंपरा, वैचारिक समृद्धि और

नैतिक मूल्यों से निर्धारित होती है। भारत की शिक्षा परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध परंपराओं में से एक रही है। यहाँ ज्ञान को केवल सूचना या कौशल के रूप में नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन, आत्म–विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वित माध्यम के रूप में देखा गया। भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge System – IKS) इसी व्यापक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली का मूल स्वरूप वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, साहित्य, कला और शिल्प परंपराओं में परिलक्षित होता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, विशेषकर गुरुकुल परंपरा, व्यक्ति के समग्र विकास–शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक पर बल देती थी। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्ति नहीं, बल्कि 'विद्या' के माध्यम से आत्म–साक्षात्कार और समाजोपयोगी जीवन की तैयारी था। इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा प्रणाली मूल्यपरक, अनुभवाधारित और बहुविषयक रही है।

इतिहास के विभिन्न चरणों में भारत की ज्ञान–परंपरा ने विश्व को महत्वपूर्ण योगदान दिए। शून्य और दशमलव पद्धति की खोज, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति, योग और ध्यान की परंपरा, न्याय और वैशेषिक दर्शन की तार्किक संरचना, तथा पर्यावरणीय संतुलन की अवधारणा ये सभी भारतीय ज्ञान प्रणाली की वैश्विक प्रासंगिकता को सिद्ध करते हैं। किंतु औपनिवेशिक काल में पश्चिमी शिक्षा मॉडल के प्रभाव से भारतीय शिक्षा की पारंपरिक संरचना में परिवर्तन आया। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने आधुनिक विज्ञान, तर्क और प्रशासनिक संरचना का विकास किया, परंतु इसके साथ ही भारतीय ज्ञान परंपरा को मुख्यधारा से हाशिए पर भी धकेल दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय शिक्षा व्यवस्था में कई सुधार हुए, किंतु उच्च शिक्षा का ढाँचा मुख्यतः पश्चिमी मॉडल पर आधारित रहा। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अनुसंधान, तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का विस्तार हुआ, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा का समुचित समावेश अपेक्षित स्तर पर नहीं हो सका। परिणामस्वरूप शिक्षा में नैतिकता, सांस्कृतिक आत्मबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व के आयाम अपेक्षाकृत कमजोर पड़े।

इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण, तकनीकी क्रांति और ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था के उदय ने उच्च शिक्षा के स्वरूप को व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया है। आज उच्च शिक्षा केवल डिग्री प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि नवाचार, अनुसंधान, कौशल–विकास और अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का आधार बन चुकी है। डिजिटल प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव–प्रौद्योगिकी और सतत विकास जैसे क्षेत्रों में निरंतर प्रगति हो रही है। ऐसे परिवर्तित परिदृश्य में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भारतीय उच्च शिक्षा केवल वैश्विक मॉडल का अनुकरण करे, या अपनी सांस्कृतिक जड़ों और ज्ञान–परंपरा के साथ संतुलन स्थापित करे?

इसी संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली की पुर्नस्थापना और उसका उच्च शिक्षा में समन्वय एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली को केवल अतीत की धरोहर के रूप में नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों के समाधान के स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। पर्यावरण संकट, मानसिक तनाव, नैतिक पतन और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ आधुनिक शिक्षा प्रणाली के सामने गंभीर प्रश्न खड़े करती हैं। भारतीय परंपरा में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और प्रकृति के साथ संतुलन जैसी अवधारणाएँ इन समस्याओं के समाधान की दिशा में वैचारिक आधार प्रदान करती हैं।

इस वैचारिक पुनरुत्थान को नीतिगत समर्थन भी प्राप्त हुआ है। National Education Policy 2020 ने

भारतीय ज्ञान प्रणाली को शिक्षा के सभी स्तरों पर समाहित करने पर विशेष बल दिया है। नीति में बहुविषयक शिक्षा, मातृभाषा में अध्ययन, कौशल विकास, अनुसंधान की गुणवत्ता और भारतीय भाषाओं के संवर्धन की बात कही गई है। उच्च शिक्षा के संदर्भ में नीति यह स्पष्ट करती है कि भारतीय दर्शन, योग, आयुर्वेद, गणित, साहित्य और सांस्कृतिक परंपराओं को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए। इसका उद्देश्य छात्रों में सांस्कृतिक आत्मविश्वास, आलोचनात्मक चिंतन और नैतिक चेतना का विकास करना है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक उच्च शिक्षा का समन्वय केवल पाठ्यक्रमीय परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शोध, नवाचार और नीति—निर्माण के स्तर पर भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए, पर्यावरणीय अध्ययन में भारतीय पारंपरिक ज्ञान का उपयोग सतत विकास मॉडल विकसित करने में सहायक हो सकता है। योग और ध्यान मानसिक स्वास्थ्य और तनाव—प्रबंधन के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ समन्वित किए जा सकते हैं। इसी प्रकार, प्रबंधन और नेतृत्व अध्ययन में गीता के कर्मयोग सिद्धांत या अर्थशास्त्र के प्राचीन सिद्धांत समकालीन संदर्भ में प्रासंगिक हो सकते हैं।

हालाँकि, इस समन्वय की प्रक्रिया सरल नहीं है। एक ओर परंपरा के संरक्षण की आवश्यकता है, तो दूसरी ओर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैश्विक मानकों का पालन भी अनिवार्य है। यदि भारतीय ज्ञान प्रणाली को केवल सांस्कृतिक गौरव के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा और उसके वैज्ञानिक परीक्षण तथा आलोचनात्मक विश्लेषण की उपेक्षा की जाएगी, तो यह शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। अतः आवश्यक है कि IKS का अध्ययन तुलनात्मक, शोध—आधारित और अंतरविषयक दृष्टिकोण से किया जाए।

समकालीन उच्च शिक्षा की प्रमुख चुनौतियों 'गुणवत्ता, मौलिक अनुसंधान, नैतिकता, रोजगारपरकता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा' को ध्यान में रखते हुए भारतीय ज्ञान प्रणाली का समन्वित मॉडल विकसित किया जा सकता है। यह मॉडल परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करते हुए शिक्षा को अधिक समग्र, मानवीय और सतत विकासोन्मुख बना सकता है। भारतीय संदर्भ में 'ज्ञान—समाज' (Knowledge Society) की अवधारणा तभी साकार होगी जब शिक्षा केवल तकनीकी दक्षता तक सीमित न रहकर मूल्यपरक और सांस्कृतिक रूप से सशक्त भी हो।

इस अध्ययन की प्रासंगिकता इसी तथ्य में निहित है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक उच्च शिक्षा के बीच संतुलित संवाद स्थापित करना समय की आवश्यकता है। यह न केवल शैक्षिक सुधार का प्रश्न है, बल्कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की प्रक्रिया से भी जुड़ा हुआ है। यदि उच्च शिक्षा भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों 'समग्रता, नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और प्रकृति—संतुलन' से समृद्ध होती है, तो भारत वैश्विक स्तर पर एक विशिष्ट ज्ञान—परंपरा का नेतृत्व कर सकता है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल सिद्धांतों का विश्लेषण करना, उन्हें समकालीन उच्च शिक्षा के संदर्भ में परखना तथा दोनों के समन्वय से उत्पन्न संभावनाओं और चुनौतियों का विवेचन करना है। यह शोध वैचारिक आधार पर यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक उच्च शिक्षा का संतुलित समन्वय भारत को एक सशक्त, नैतिक और ज्ञान—आधारित राष्ट्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

उद्देश्य :

1. **भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल सिद्धांतों एवं उनकी समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करना :**

इस उद्देश्य के अंतर्गत भारतीय ज्ञान प्रणाली की दार्शनिक, नैतिक एवं बहुविषयक विशेषताओं का अध्ययन किया जाएगा तथा यह विश्लेषण किया जाएगा कि वैश्वीकरण और ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था के वर्तमान संदर्भ में ये सिद्धांत किस प्रकार प्रासंगिक हैं।

2. **National Education Policy 2020 के आलोक में उच्च शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली के एकीकरण की नीतिगत दिशा का परीक्षण करना :**

इसका उद्देश्य यह समझना है कि नीति–स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा को किस प्रकार उच्च शिक्षा संरचना, बहुविषयक दृष्टिकोण, भाषा–नीति एवं मूल्य–आधारित शिक्षा से जोड़ा गया है, तथा इसकी वैचारिक आधारभूमि क्या है।

3. **भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक उच्च शिक्षा के समन्वित मॉडल की संभावनाओं एवं चुनौतियों का सैद्धांतिक मूल्यांकन करना :**

इस उद्देश्य के अंतर्गत परंपरा और आधुनिकता के संतुलन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मूल्यपरकता तथा सतत विकास के संदर्भ में एक समन्वित शिक्षा मॉडल की आवश्यकता और उसकी व्यवहारिक चुनौतियों का विश्लेषण किया जाएगा।

साहित्य समीक्षा :

1. **भारतीय ज्ञान प्रणाली की दार्शनिक आधारभूमि :**

S. Radhakrishnan (1927) ने Indian Philosophy में भारतीय दर्शन को जीवन और ज्ञान की समग्र परंपरा के रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने शिक्षा को नैतिकता, आध्यात्मिकता और बौद्धिक विकास के समन्वय के रूप में देखा। इसी प्रकार Aurobindo Ghose (1911, पुनर्मुद्रित 1990) ने The Renaissance in India में शिक्षा को मानव की अंतर्निहित चेतना और सृजनात्मक शक्तियों के विकास का साधन माना। ये अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि भारतीय ज्ञान प्रणाली मूलतः समग्र और मूल्य–आधारित है।

2. **प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा :**

Radhakumud Mookerji (1947) ने Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist में गुरुकुल परंपरा, तक्षशिला और नालंदा की शिक्षण–पद्धति का ऐतिहासिक विश्लेषण किया। उन्होंने दर्शाया कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में बहुविषयक अध्ययन, संवाद–पद्धति तथा आचार–आधारित जीवनशैली का विशेष महत्व था। यह दृष्टिकोण आधुनिक बहुविषयक शिक्षा की अवधारणा से साम्य रखता है।

3. **औपनिवेशिक शिक्षा नीति का प्रभाव :**

Thomas Babington Macaulay (1835) के 'Minute on Indian Education' ने भारतीय शिक्षा प्रणाली को अंग्रेजी माध्यम एवं पाश्चात्य ज्ञान की ओर उन्मुख किया। इतिहासकारों और शिक्षा–विश्लेषकों ने इस नीति को भारतीय परंपरागत ज्ञान के हाशियाकरण का कारण माना है। औपनिवेशिक शिक्षा ढाँचे ने भारतीय ज्ञान परंपरा की निरंतरता को प्रभावित किया।

4. समकालीन शिक्षा नीति और भारतीय ज्ञान प्रणाली :

National Education Policy 2020 (2020) में भारतीय ज्ञान प्रणाली, मातृभाषा–आधारित शिक्षण, बहुविषयक संरचना तथा मूल्य–आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। नीति दस्तावेज में IKS को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम और शोध में समाहित करने की स्पष्ट अनुशंसा की गई है। समकालीन शोध (2020–2023) इस नीति को भारतीय परंपरा और आधुनिकता के समन्वय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम मानते हैं।

5. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी ज्ञान :

UNESCO (2017) ने 'Local and Indigenous Knowledge Systems (LINKS)' कार्यक्रम के अंतर्गत स्वदेशी ज्ञान को सतत विकास और सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण के लिए आवश्यक बताया। इसी प्रकार United Nations (2015) के 'Sustainable Development Goals (SDGs)' में स्थानीय ज्ञान की भूमिका को मान्यता दी गई है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली का विमर्श वैश्विक संदर्भ में भी प्रासंगिक है।

अनुसंधान विधि :

यह अध्ययन पूर्णतः वैचारिक एवं दार्शनिक विश्लेषण पर आधारित है। इसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणाली और समकालीन उच्च शिक्षा के मध्य अंतर्संबंधों का सैद्धांतिक परीक्षण करना है।

1. शोध की प्रकृति :

यह शोध गुणात्मक, व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक स्वरूप का है, जिसमें विचारों, सिद्धांतों और नीतिगत अवधारणाओं का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है।

2. वैचारिक ढाँचा :

अध्ययन भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल तत्त्व 'समग्रता, नैतिकता, बहुविषयकता एवं मूल्यपरकता' को केंद्रीय अवधारणाओं के रूप में ग्रहण करता है तथा इन्हें समकालीन उच्च शिक्षा की संरचना के साथ तुलनात्मक रूप से परखता है।

3. विश्लेषण की पद्धति :

अध्ययन में तर्कप्रधान व्याख्यात्मक, तथा तुलनात्मक, पद्धति का प्रयोग किया गया है। विशेष रूप से National Education Policy 2020 के अंतर्गत प्रतिपादित भारतीय ज्ञान प्रणाली के सिद्धांतों का सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया है।

4. अध्ययन की सीमा :

यह शोध अनुभवजन्य परीक्षण के स्थान पर वैचारिक विमर्श तक सीमित है और इसका उद्देश्य सैद्धांतिक आधार निर्मित करना है, न कि सांख्यिकीय निष्कर्ष प्रस्तुत करना।

परिणाम एवं चर्चा :

भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल ऐतिहासिक या सांस्कृतिक विरासत तक सीमित अवधारणा नहीं है, बल्कि समकालीन उच्च शिक्षा के लिए एक सशक्त बौद्धिक एवं नैतिक आधार प्रदान करती है। अध्ययन के दौरान यह तथ्य उभरकर सामने आया कि भारतीय ज्ञान परंपरा शिक्षा को मनुष्य के समग्र विकास की प्रक्रिया के रूप में देखती है, जिसमें बौद्धिक प्रगति के साथ–साथ नैतिकता, आचरण और आत्मबोध को भी समान महत्व दिया जाता है। यह दृष्टिकोण वर्तमान समय की रोजगार–केंद्रित और बाजारोन्मुख शिक्षा प्रणाली के बीच संतुलन स्थापित

करने की क्षमता रखता है। इस संदर्भ में S. Radhakrishnan द्वारा प्रतिपादित समग्र शिक्षा की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है, जिसमें शिक्षा को मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का साधन माना गया है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि भारतीय ज्ञान प्रणाली मूलतः बहुविषयक प्रकृति की रही है। प्राचीन शिक्षा परंपरा में विभिन्न विषयों के मध्य संवाद और समन्वय का विशेष महत्व था। यह दृष्टिकोण आधुनिक उच्च शिक्षा में उभरती बहुविषयक (Multidisciplinary) अवधारणा से मेल खाता है। National Education Policy 2020 (2020) में बहुविषयक विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा भारतीय ज्ञान प्रणाली के पाठ्यक्रम में समावेशन पर विशेष बल दिया गया है। वैचारिक विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि इस नीति को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए, तो यह भारतीय परंपरा और आधुनिक शैक्षिक संरचना के बीच एक सेतु का कार्य कर सकती है। तथापि, इसके क्रियान्वयन में पाठ्यचर्या के पुनर्गठन, शोध–आधारित सामग्री के विकास तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण जैसी चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

परंपरा और आधुनिकता के संबंध में अध्ययन यह संकेत देता है कि दोनों के मध्य कोई अंतर्विरोध आवश्यक नहीं है। भारतीय चिंतन में तर्क, संवाद और अनुभव की परंपरा रही है, जो आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के मूल सिद्धांतों से विरोधाभासी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को समकालीन शोध–पद्धतियों और अकादमिक मानकों के अनुरूप पुनर्परिभाषित किया जाए, ताकि यह केवल सांस्कृतिक गौरव का प्रतीक न रहकर एक व्यवहारिक एवं प्रमाणिक ज्ञान–स्रोत के रूप में स्थापित हो सके। यदि यह संतुलन स्थापित किया जाता है, तो भारतीय ज्ञान प्रणाली वैश्विक अकादमिक विमर्श में भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकती है।

अध्ययन का एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में सतत विकास, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना अंतर्निहित है। वर्तमान समय में जब पर्यावरणीय संकट और सामाजिक असमानताएँ वैश्विक स्तर पर चिंता का विषय हैं, तब यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। उच्च शिक्षा में यदि इन सिद्धांतों को पाठ्यक्रम और शोध के माध्यम से एकीकृत किया जाए, तो विद्यार्थियों में न केवल ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति विकसित होगी, बल्कि सामाजिक और नैतिक चेतना भी सुदृढ़ होगी।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और समकालीन उच्च शिक्षा के मध्य संबंध पूरक एवं समन्वयी है। प्रस्तुत परिकल्पनाओं का वैचारिक परीक्षण यह दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली उच्च शिक्षा के मानवीय, बहुविषयक और मूल्यपरक स्वरूप को सुदृढ़ करने की क्षमता रखती है। यद्यपि इसके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु नीतिगत स्पष्टता, अकादमिक शोध की प्रामाणिकता तथा संरचनात्मक सुधार आवश्यक होंगे, तथापि सैद्धांतिक स्तर पर यह अध्ययन इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली उच्च शिक्षा को अधिक समग्र, उत्तरदायी और सतत विकासोन्मुख बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष यह कि, भारतीय ज्ञान प्रणाली समकालीन उच्च शिक्षा के लिए केवल सांस्कृतिक पुर्नस्मरण का माध्यम नहीं, बल्कि एक सशक्त दार्शनिक एवं शैक्षिक आधार है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य मात्र सूचना–प्राप्ति या व्यावसायिक दक्षता अर्जन नहीं था, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास, नैतिक परिष्कार और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्माण था। वर्तमान उच्च शिक्षा व्यवस्था, जो प्रायः

कौशल और प्रतिस्पर्धा पर केंद्रित है, उसमें मानवीय एवं मूल्यपरक आयामों की पुर्नस्थापना की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक संतुलित वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करती है।

अध्ययन ने यह भी संकेत दिया कि भारतीय ज्ञान प्रणाली की मूल प्रकृति बहुविषयक एवं संवादपरक रही है। प्राचीन शिक्षा परंपरा में विषयों के मध्य समन्वय, तर्क–वितर्क की पद्धति तथा गुरु–शिष्य संवाद की प्रक्रिया ज्ञानार्जन के प्रमुख साधन थे। यह दृष्टिकोण आधुनिक बहुविषयक शिक्षा के सिद्धांतों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। National Education Policy 2020 द्वारा भारतीय ज्ञान प्रणाली के समावेशन पर दिया गया बल इस दिशा में एक महत्वपूर्ण नीतिगत पहल है। तथापि, इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए पाठ्यचर्या का वैज्ञानिक पुनर्गठन, शोध–आधारित सामग्री का विकास तथा शिक्षकों का प्रशिक्षण अनिवार्य होगा।

परंपरा और आधुनिकता के संबंध में यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दोनों के मध्य विरोध की धारणा वस्तुतः आंशिक है। भारतीय चिंतन में तर्क, अनुभव और समालोचनात्मक दृष्टि का सुदृढ़ आधार विद्यमान रहा है, जो आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुरूप है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को समकालीन शोध–पद्धतियों और वैश्विक अकादमिक मानकों के अनुरूप पुनर्परिभाषित एवं प्रमाणित किया जाए। ऐसा होने पर यह न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, बल्कि अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक विमर्श में भी सार्थक योगदान दे सकती है।

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण आयाम यह भी है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व, सतत विकास और सामाजिक समरसता के सिद्धांत अंतर्निहित हैं। वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य, जिसमें पर्यावरणीय संकट और नैतिक अवमूल्यन प्रमुख चुनौतियाँ हैं, वहाँ यह दृष्टिकोण विशेष प्रासंगिकता रखता है। उच्च शिक्षा में यदि इन मूल्यों को संरचनात्मक रूप से एकीकृत किया जाए, तो यह विद्यार्थियों को केवल दक्ष कर्मी ही नहीं, बल्कि उत्तरदायी नागरिक बनाने में भी सहायक सिद्ध होगा।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली और समकालीन उच्च शिक्षा के मध्य संबंध पूरक एवं समन्वयी है। प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक स्तर पर इस तथ्य की पुष्टि करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली उच्च शिक्षा को अधिक मानवीय, बहुविषयक, मूल्यपरक एवं सतत विकासोन्मुख बनाने की क्षमता रखती है। भविष्य के शोध में इस वैचारिक आधार को अनुभवजन्य अध्ययन से पुष्ट किया जा सकता है, जिससे इसके व्यावहारिक प्रभावों का भी मूल्यांकन संभव हो सके। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान प्रणाली का समुचित और संतुलित समावेशन भारत को एक सुदृढ़ 'ज्ञान–समाज' की दिशा में अग्रसर कर सकता है।

सुझाव :

1. उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली का समन्वित समावेशन किया जाए, ताकि यह बहुविषयक संरचना के अंतर्गत सभी विषयों से जुड़ सके।
2. शिक्षक–प्रशिक्षण एवं संकाय विकास कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ, जिससे भारतीय ज्ञान प्रणाली की संतुलित एवं वैज्ञानिक प्रस्तुति सुनिश्चित हो सके।
3. अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहन दिया जाए, विशेषकर National Education Policy 2020 के अनुरूप भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित शोध–परियोजनाओं को बढ़ावा मिले।
4. प्राचीन ग्रंथों एवं पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, अनुवाद और संरक्षण किया जाए, ताकि वैश्विक स्तर

पर उनकी उपलब्धता और प्रमाणिकता बढ़े।

5. परंपरा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मध्य संतुलित समन्वय स्थापित किया जाए, जिससे उच्च शिक्षा अधिक मूल्यपरक, समग्र एवं सतत विकासोन्मुख बन सके।

संदर्भ सूची :

1. राधाकृष्णन, एस. (1927). भारतीय दर्शन (Indian Philosophy). लंदन : जॉर्ज एलन एंड अनविन।
2. मुखर्जी, राधाकुमुद. (1947). प्राचीन भारतीय शिक्षा : ब्राह्मणीय एवं बौद्ध (Ancient Indian Education). दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
3. घोष, अरविन्द. (1911 / 1990). भारत का पुनर्जागरण (The Renaissance in India). पांडिचेरी : श्री अरविन्द आश्रम।
4. गांधी, एम. के. (1937). नई तालीम. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन।
5. टैगोर, रवीन्द्रनाथ. (1917). राष्ट्रीयता और शिक्षा. कोलकाता : विश्वभारती।
6. दयानन्द सरस्वती. (1875). सत्यार्थ प्रकाश. अजमेर : वैदिक यंत्रालय।
7. विवेकानन्द, स्वामी. (1893ध1999). शिक्षा पर विचार. कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
8. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). National Education Policy 2020. नई दिल्ली : भारत सरकार।
9. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC). (2021). भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रकोष्ठ दिशा–निर्देश. नई दिल्ली : यूजीसी।
10. कपिल कपूर. (2019). भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा. नई दिल्ली : डी.के. प्रिंटवर्ल्ड।
11. शर्मा, रामनाथ. (2002). भारतीय शिक्षा का इतिहास. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
12. चतुर्वेदी, राजेश्वर. (2015). भारतीय संस्कृति और शिक्षा दर्शन. वाराणसी : चौखंबा प्रकाशन।
13. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र. (1990). भारतीय संस्कृति का विकास. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
14. अग्रवाल, जे.सी. (2010). भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ. नई दिल्ली : शिप्रा पब्लिकेशन।
15. सिंह, बी.एन. (2018). उच्च शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन।
16. यूनेस्को. (2017). स्थानीय एवं स्वदेशी ज्ञान प्रणाली (LINKS कार्यक्रम). पेरिसरू यूनेस्को।
17. संयुक्त राष्ट्र. (2015). सतत विकास लक्ष्य (SDGs) दस्तावेज. न्यूयॉर्क : संयुक्त राष्ट्र संगठन।
18. तिवारी, शिवकुमार. (2016). भारतीय ज्ञान परंपरा : स्वरूप और संभावनाएँ. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
19. मिश्रा, रमेश. (2021). नई शिक्षा नीति और भारतीय ज्ञान प्रणाली. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान।
20. त्रिपाठी, रामशरण. (2008). भारतीय दर्शन और शिक्षा चिंतन. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

Email ID - subodhkr475@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 143-146
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Educational Implications of Sankhya Philosophy

Dr. Manju

Abstract :

Sankhya Philosophy is one of the most prominent Vedic (orthodox) Philosophy and one of the oldest of Indian Philosophy. The great sage Kapila was the founder of the Sankhya school of Hindu philosophy which is also mentioned in the Mahabharata and the Upanishads. At first great sage Kapila gave this knowledge to disciple Asuri, then Asuri gave this knowledge to his disciple Pancasikha, which is beautifully described in the book Sankhyakarika.

Sankhya Philosophy, a dualistic Indian school, points education as a means to liberate the soul (Purusha) from matter (Prakriti) by achieving discriminative knowledge. Its educational implications emphasize holistic development, training organs, fostering self-discipline and fostering self-knowledge through perception, inference, and testimony. It promotes self-actualization by unveiling latent potential, aligning with modern learner-centric approaches focused on intellectual growth and moral development.

Keywords : Educational Implication, Sankhya Philosophy.

Introduction :

Sankhya philosophy can be interpreted as the "theory of Numbers or Enumeration", emphasizing the subtle principle of energies that govern the universe and all living being. The Indian philosophies are highly influenced by religion either directly or indirectly except Charvaka Philosophy. Some of them based on the philosophical logic of Vedas and believed to embody the intuitions of the seers of reality. Some are spiritual in nature and their ultimate aim is self realisation or Moksha/Nirvana except Charvaka philosophy which is totally realistic in Nature (Nrunalini, 2015).

The Sankhya Philosophy combines the basic doctrines of Sankhya and Yoga. The Sankhya represents the theory and Yoga represents the practical aspects. Sankhya is dualistic realism. It advocates two ultimate realities: Prakriti, matter and Purusha, self. In this both matter and spirit are equally real.

Purusha is the passive, witness consciousness, while Prakriti is the active, creative force,

evolving through its three gunas (Sattva, Rajas, Tamas) into the world, with liberation achieved by realizing their fundamental distinction.

Purusha (Consciousness) :

- **Nature :** Pure consciousness, eternal, unchanging, beyond attributes (nirguna), and actionless (nishkriya).
- **Role :** The silent witness (sakshi) to Prakriti's activities, a multitude of individual souls, not a single cosmic entity.
- **Experience :** Appears to act or suffer due to association with Prakriti, but is not the doer; it is an illusion of agency.

Prakriti (Matter/Nature) :

- **Nature :** Promordial, insentient (jada), active, and the source of all material existence, including mind and senses.

  Composition : Made of three fundamental qualities or dispositions (gunas) :
- **Sattva :** Purity, light, harmony, steadiness.
- **Rajas :** Activity, passion, movement.
- **Tamas :** Inertia, darkness, dullness.

Evolution : When unmanifested, Prakriti's gunas are in balance; its evolution into the world begins with the disturbance of this balance by Purusha's proximity producing intellect (Buddhi) and the rest of the tattvas (principles).

Samkhya accepts three source of valid knowledge; perception, inference and testimony. According to Samkhya philosophy ultimate aim of education is Liberation (moksholav) through vivekgyan.

Significance of the Present Study :

The relevance of this philosophy may be observed in the modern society and in the education system. The aim of the present education is development of innate possibilities of the learner and child centric education, through concept of Purusha, Prakriti, Satkarmabad of Sankhya philosophy. Besides these the aim of education are development of self value and to reduce the social and cultural degradation.

Features of Sankhya Philosophy :

1. **Metaphysical Aspects of Sankhya Philosophy :** It regarded as dualistic realism. It believes two ultimate realities Prakriti and Purusha. Purusha having subjective reality and Prakriti can be characterized by objective reality.
2. **Prakriti :** Prakriti is defined as the primary, eternal, unconscious, creative material cause of

the entire physical and mental universe. Prakriti is the combination of sattva, rajas and tamas. Sattva has the function of manifestation of an object to consciousness.

Rajas : It has function of activity because of its mobility and stimulation.

Tamas : It has function of restraint. It opposed the Sattvagunas because its heavy, laziness, drowsiness. It produce ignorance and darkness.

3. Purusha : It is eternal reality. It is above self arrogance, aversion and attachment. The order of creation is as follow :

(i) Mahat : Mahat is first component produced as a result of evolution. Cosmic in nature and Buddhi helps to identify the soul or the atman which differs from all physical objects and their qualities.

(ii) Ahamkara : The cosmic Buddhi becomes individuated and evolves into the cosmic egoism or Ahamkara.

(iii) Manas : According to Sankhya philosophy, Manas or mind is neither eternal nor atomic. It also can come into contact with the different sense organs. Mind helps to analyze and synthesize the sense data into determinate perceptions.

(iv) Jannendriyas : Jannendriyas are five sense organs; nose, ears, eyes, skin and tongue.

(v) Karmendriyas : These are five organs of action which reside in mouth, ears, feets, anus, sex organs.

(vi) Tanmantras : These are five tanmatras; sabda or sound, sparsa or touch, rupa or form, rasa or taste, gandha or smell.

(vii) Mahabhutas : These are five mahabhutas found in the cosmos namely; Air or Vayu, Fire or Agni, Akasa or Ether, water or Jala, Prithivi or Earth.

4. Epistemological Aspects of Samkhya Philosophy ?

Samkhya epistemology, a classical Indian philosophy recognize three independent source of valid knowledge (pramanas); perception (Pratyaksa), inference (Anumana), valid testimony (Sabda). It emphasizes a dualistic framework where knowledge arise from interaction between conscious Purusa (subject) and the intellectual faculties derived from Prakriti (material nature).

5. Axiology Aspects of Sankhya Philosophy ?

It based on liberation (Kaivalya) as a supreme value, achieved by distinguishing the conscious self (Purusa) from matter (Prakriti). It identifies suffering as inherent to worldly existence, caused by ignorance and values knowledge, ethical disciplines and detachment to end the cycle of pain.

Educational Implications of Sankhya Philosophy :

It emphasizes education as a process of unfolding inherent, latent potential, shifting from

material awareness to spiritual liberation. It advocates the child centered, individualized learning that trains the senses, intellect and ego to distinguish between the self and non-self.

Aim of Education ?

The ultimate goal is self realization and liberation (Kaivalya) through discriminative knowledge (Viveka-khyati). Proximal aims includes developing all round personality, fostering mental and physical health through yoga and providing true knowledge to end suffering.

- **Curriculum :** A balanced curriculum is proposed, incorporating natural science (to understand prakriti), yoga (for control of sense/mind), and philosophy (for self knowledge). It emphasizes understanding the three gunas (satva, rajas, tamas) to balance the learner's personality.
- **Discipline :** Education emphasizes self discipline and inner observation to achieve freedom and true knowledge.
- **Teaching Methods :** Methods emphasize experiential, observation-based and activity-based learning. Knowledge is acquired through the three pramanas.
- **Role of Teacher :** Teacher acts as a faciliator or guide, helping the child uncover their innate potential rather than imposing knowledge from outside.
- **Relevance to Modern Education :** Sankhya aligns with modern views on individualized instruction, child-centeredness, and the development of mental faculties. It reflects modern psychological theories where learning involves modifying the intellectual structure (buddhi).

Conclusion :

Sankhya Philosophy offers a profound and systematic approach to understanding the relation between consciousness and matter. By studying it, one gains insights into the timeless quest for self-realization and the transcendence of material limitations. Its emphasis on knowledge, discrenment, liberation continues to resonate with seekers of truth across the world.

References :

1. Indira Gandhi National Open University (IGNOU), SLM of Philosophical Perspective of Education - 3
2. Jha, G. (2014). The Samkhya-Tattva Kaumodi, Chaukhamba Sanskrit Pratishthan.
3. Krishna Kanta Handiqui State Open University, SLM of Philosophical Foundation of Education - (ODL), Block-2
4. Okafor, F.C. (1992). Philosophy of Education and Third World Perspective, Enugu: Brunswick Publishing Co. 4th ed., p. 21.
5. Swami Niranjanananda Saraswati, (2009). Samkhya Darshan: Yoga Perspective on Theories of Realism. Yoga Publications Trust. ISBN-9788186336595

7236manju@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 147-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श

LGBTQ+ Discourse in Contemporary Hindi Literature

जसवीर
शोधार्थी, हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा।

सार (Abstract)

यह शोध–पत्र समकालीन हिंदी साहित्य में उभरते LGBTQ+ विमर्श का विस्तृत, विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के पश्चात LGBTQ+ विमर्श हिंदी साहित्य में सामाजिक समावेशन के एक नए चरण को रेखांकित करता है। पूर्ववर्ती साहित्य में यह समुदाय या तो अनुपस्थित रहा या रूढ़ नैतिक छवियों में सीमित रहा, किंतु इक्कीसवीं सदी में कानूनी, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा डिजिटल परिवर्तनों के कारण पहचान, अस्मिता, प्रेम, आत्मस्वीकृति और अधिकार जैसे प्रश्न साहित्यिक विमर्श के केंद्र में आ गए हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि LGBTQ+ लेखन हिंदी साहित्य की भाषा, संरचना, दृष्टि और सौंदर्यबोध को पुनर्परिभाषित कर रहा है तथा उसे अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और मानवीय बना रहा है।

मूल शब्द : LGBTQ+, समकालीन हिंदी साहित्य, लैंगिक पहचान, अस्मिता, सामाजिक विमर्श, समावेशन।

प्रस्तावना :

साहित्य समाज की सामूहिक चेतना का संवेदनशील और ऐतिहासिक दस्तावेज होता है। सामाजिक संरचनाओं में होने वाले परिवर्तन, मानवीय संघर्ष और वैचारिक आंदोलन साहित्य में रूपांतरित होकर अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय समाज लंबे समय तक लैंगिक द्वैत की संरचना में बँधा रहा, जहाँ स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त किसी भी पहचान को सामाजिक वैधता नहीं मिली। इस व्यवस्था में LGBTQ+ समुदाय को हाशिए पर धकेल दिया गया, जिसका प्रभाव साहित्य पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में लंबे समय तक यह समुदाय मौन, उपेक्षा अथवा विकृत रूपों में ही उपस्थित रहा।

औपनिवेशिक काल और उसके बाद के हिंदी साहित्य में यौनिकता को नैतिक अनुशासन के कठोर ढाँचे में देखा गया। लैंगिक बहुलता को साहित्यिक विमर्श के योग्य नहीं माना गया, जिससे LGBTQ+ अनुभव अदृश्य बने रहे। यह स्थिति दर्शाती है कि साहित्य भी समाज की वैचारिक सीमाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं होता। किंतु जैसे–जैसे सामाजिक चेतना का विस्तार हुआ, वैसे–वैसे साहित्य की दृष्टि भी अधिक मानवीय और समावेशी होती चली गई।

समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श का विकास :

इक्कीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श का व्यवस्थित और सशक्त उभार

दिखाई देता है। वैश्वीकरण, शिक्षा का प्रसार, मानवाधिकार विमर्श, मीडिया विस्तार और डिजिटल संचार माध्यमों ने सामाजिक सोच को नई दिशा दी। विशेष रूप से धारा 377 के निरस्तीकरण ने भारतीय समाज में लैंगिक पहचान के प्रश्न को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। इस सामाजिक–वैधानिक परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा, जहाँ LGBTQ+ अनुभवों को अब अपराध या विचलन नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व के स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में LGBTQ+ पात्र अब निष्क्रिय या करुणा के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे संघर्षशील, आत्मनिर्णय लेने वाले और सामाजिक संरचनाओं को प्रश्नांकित करने वाले व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। उनकी कहानियों में पारिवारिक अस्वीकृति, सामाजिक बहिष्कार, मानसिक द्वंद्व, हिंसा और आत्मस्वीकृति की जटिल प्रक्रियाएँ संवेदनशीलता के साथ चित्रित होती हैं। इससे हिंदी कथा साहित्य का यथार्थबोध अधिक व्यापक और गहरा बनता है।

कविता के क्षेत्र में LGBTQ+ विमर्श अधिक आत्मकथ्यात्मक, भावनात्मक और प्रतिरोधात्मक रूप में सामने आता है। समकालीन कवि प्रेम, देह, पहचान, अकेलेपन और असुरक्षा के अनुभवों को नई काव्यात्मक भाषा में व्यक्त करते हैं। यह कविता सामाजिक नैतिकता की सीमाओं को चुनौती देती है और प्रेम को मानवीय संवेदना के सार्वभौमिक रूप में स्थापित करती है।

भाषा, शिल्प और सौंदर्यबोध में परिवर्तन :

LGBTQ+ विमर्श ने हिंदी साहित्य की भाषा को अधिक आत्मीय, अनुभव–आधारित और संवादात्मक बनाया है। जहाँ पारंपरिक साहित्यिक भाषा नैतिक अनुशासन और संकेतों में बँधी रहती थी, वहीं समकालीन लेखन में लेखक अपने अनुभवों को सीधे, ईमानदार और निर्भीक स्वर में अभिव्यक्त कर रहे हैं। इससे साहित्यिक अभिव्यक्ति अधिक प्रामाणिक और जीवंत बनती है।

सौंदर्यशास्त्र के स्तर पर यह विमर्श प्रेम, संबंध और पहचान की परंपरागत अवधारणाओं को पुनर्परिभाषित करता है। हिंदी साहित्य में प्रेम अब केवल विषमलैंगिक संबंधों तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि वह मानवीय अस्तित्व की समग्र अनुभूति बनता जा रहा है। इससे साहित्य की संवेदना अधिक व्यापक और समावेशी होती है।

डिजिटल माध्यम, आत्मकथात्मक लेखन और दृश्य संस्कृति :

डिजिटल माध्यमों ने LGBTQ+ विमर्श को अभूतपूर्व विस्तार प्रदान किया है। ब्लॉग, सोशल मीडिया, वेब–पत्रिकाएँ, पॉडकास्ट और स्वतंत्र प्रकाशन मंचों ने उन लेखकों को मंच दिया है जिन्हें पारंपरिक प्रकाशन संस्थानों से स्थान नहीं मिला था। इससे साहित्य अधिक लोकतांत्रिक हुआ है।

आत्मकथात्मक लेखन इस विमर्श को सामाजिक प्रामाणिकता प्रदान करता है। LGBTQ+ समुदाय के लेखकों द्वारा लिखे गए जीवन–वृत्तांत व्यक्तिगत अनुभवों को सामाजिक दस्तावेज में रूपांतरित करते हैं। साथ ही हाल के वर्षों में निर्मित डॉक्यूमेंट्री फिल्में 'जैसे 'Beyond the Binary' (2022), 'India's First Transgender Election Campaign' (2023) और 'Queer Campus' (2024)' इस विमर्श को दृश्य संस्कृति के माध्यम से व्यापक सामाजिक संवाद में बदल देती हैं।

LGBTQ+ अंतरराष्ट्रीय संदर्भ और तुलनात्मक दृष्टि :

समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श को अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में देखने से यह स्पष्ट होता है कि

यह विमर्श केवल भारतीय समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक क्वियर आंदोलनों, मानवाधिकार विमर्शों और साहित्यिक प्रवृत्तियों से निरंतर संवाद करता है। पश्चिमी देशों में 1960 के दशक के बाद विकसित हुए क्वियर आंदोलन 'विशेषतः स्टोनवॉल आंदोलन' ने साहित्य को राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया। इस वैश्विक साहित्यिक चेतना का प्रभाव समकालीन हिंदी लेखन में भी देखा जा सकता है।

अमेरिकी, यूरोपीय और लैटिन अमेरिकी साहित्य में LGBTQ+ लेखन ने जिस प्रकार मुख्यधारा साहित्य में स्थान बनाया, उससे यह सिद्ध होता है कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकता है। जेम्स बाल्डविन, जीन जेनेट, ऑड्री लॉर्ड और सारा अहमद जैसे लेखकों ने यौनिकता, पहचान और सत्ता–संरचनाओं के प्रश्नों को साहित्य के केंद्र में रखा। इन लेखकों के विचार अनुवाद, अकादमिक अध्ययन और डिजिटल माध्यमों के जरिए भारतीय साहित्यिक जगत तक पहुँचे।

हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श पश्चिमी अनुकरण न होकर स्थानीय अनुभवों की मौलिक अभिव्यक्ति है। भारतीय संदर्भ में यह विमर्श परिवार, जाति, धर्म और समुदाय जैसी जटिल संरचनाओं से संघर्ष करता है। इस तुलनात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य का क्वियर लेखन वैश्विक विमर्श से संवाद करते हुए भी अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टता बनाए रखता है।

एशिया और अफ्रीका के साहित्य में LGBTQ+ लेखन समान सामाजिक चुनौतियों से जूझता हुआ दिखाई देता है। इन क्षेत्रों में क्वियर पहचान धार्मिक नैतिकता, सामाजिक निषेध और कानूनी प्रतिबंधों के बीच अभिव्यक्त होती है। इन अनुभवों की तुलना हिंदी साहित्य से करने पर यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य का LGBTQ+ विमर्श वैश्विक दक्षिण के साहित्यिक संघर्षों से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है।

अंतरराष्ट्रीय डॉक्यूमेंट्री फिल्में, वेब–सीरीज और दृश्य माध्यम भी इस विमर्श को वैश्विक आयाम प्रदान करते हैं। नेटफ्लिक्स, बीबीसी, अल–जजीरा और स्वतंत्र फिल्म मंचों पर प्रदर्शित क्वियर डॉक्यूमेंट्रीज ने लैंगिक पहचान के अनुभवों को वैश्विक संवाद का हिस्सा बनाया है। भारतीय डॉक्यूमेंट्री परंपरा भी अब इस वैश्विक दृश्य संस्कृति से जुड़कर साहित्यिक विमर्श को नया आयाम दे रही है।

इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में हिंदी साहित्य का स्ळठज्फ़ विमर्श तुलनात्मक अध्ययन की एक समृद्ध भूमि प्रदान करता है। यह न केवल हिंदी साहित्य की वैश्विक उपस्थिति को सशक्त करता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि हिंदी साहित्य समकालीन वैश्विक मानवाधिकार और लैंगिक समानता विमर्श का सक्रिय सहभागी है।

सामाजिक अर्थवत्ता और आलोचनात्मक चुनौतियाँ :

यद्यपि LGBTQ+ विमर्श हिंदी साहित्य में निरंतर विस्तार पा रहा है, फिर भी इसके समक्ष कई सामाजिक और आलोचनात्मक चुनौतियाँ मौजूद हैं। कई बार इसे पाश्चात्य प्रभाव कहकर नकार दिया जाता है, जबकि वास्तव में यह भारतीय समाज के भीतर मौजूद अनुभवों की अभिव्यक्ति है। यह संघर्ष ही इस साहित्य को अधिक प्रश्नवाचक और सशक्त बनाता है।

यह विमर्श हिंदी साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक बनाता है क्योंकि यह उन अनुभवों को स्थान देता है जो लंबे समय तक मौन में रहे। इस प्रकार साहित्य बहुसंख्यक अनुभवों के दायरे से बाहर निकलकर समस्त मानवीय अनुभवों का प्रतिनिधि बनता है।

निष्कर्ष :

इस विस्तृत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श सामाजिक परिवर्तन की एक सशक्त वैचारिक धारा के रूप में स्थापित हो चुका है। यह विमर्श केवल पहचान की स्वीकृति नहीं, बल्कि साहित्यिक संरचनाओं, भाषा और सौंदर्यबोध के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया भी है। इसके माध्यम से हिंदी साहित्य अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और समकालीन बनता है। आने वाले समय में यह विमर्श हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

संदर्भ सूची (References) :

1. बटलर, जूडिथ (2023). जेंडर ट्रबल : पहचान का विमर्श. रूटलेज.
2. फूको, मिशेल (2022). लैंगिकता का इतिहास. पेंगुइन.
3. जगोज, एन्नामारी (2021). क्वियर थ्योरी : एक परिचय. एनवाईयू प्रेस.
4. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (2023). एशिया में LGBTQ+ की कानूनी पहचान. यूएनडीपी रिपोर्ट.
5. ILGA वर्ल्ड (2024). ग्लोबल प्राइड एवं समानता रिपोर्ट.
6. यूनेस्को (2022). सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में विविधता और समावेशन.
7. ह्यूमन राइट्स वॉच (2023). दक्षिण एशिया में LGBTQ+ अधिकार.
8. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत (2022). ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकार.
9. डॉक्यूमेंट्री : 'Beyond the Binary' (2022).
10. डॉक्यूमेंट्री : 'India's First Transgender Election Campaign' (2023).
11. डॉक्यूमेंट्री : 'Queer Campus – Voices from Indian Universities' (2024).
12. समकालीन हिंदी पत्रिकाएँ : हंस, तद्भव, कथादेश (2021–2025).

Phone : 9812070692

Email : jasvirphdhindi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 151-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Leadership Styles and Psychological Contracts in Indian Aviation : A Study of Employee Perceptions and Organizational Outcomes

Sanjay Kumar, Research Scholar
Dr. Sufiya Syed, Research Supervisor
Psychology Department, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha (Uttar Pradesh)

Abstract :

The Indian aviation industry operates within a complex environment marked by rapid expansion, strict regulatory frameworks, technological dependence, and high expectations regarding safety and service quality. In such a context, leadership practices and the psychological relationship between employees and organizations assume critical importance. This paper examines how leadership styles influence psychological contracts in the Indian aviation sector and how employee perceptions of these contracts shape organizational outcomes. Drawing upon established theories of leadership and psychological contracts, the study adopts a conceptual and analytical approach grounded in secondary data, policy documents, and sector-specific literature. The analysis reveals that leadership styles significantly affect the formation, maintenance, and violation of psychological contracts.

Transformational and participative leadership approaches tend to strengthen relational psychological contracts, fostering trust, commitment, and discretionary effort among employees. In contrast, rigid, inconsistent, or disengaged leadership practices contribute to psychological contract breaches, leading to dissatisfaction, reduced morale, and increased turnover intentions. The paper argues that sustainable organizational performance in Indian aviation depends not only on operational efficiency but also on leadership practices that recognize and manage employees' psychological expectations. The study contributes to organizational behavior literature by contextualizing leadership–psychological contract dynamics within the Indian aviation industry and offers policy-oriented recommendations for leadership development and human resource management.

Keywords :

Leadership Styles, Psychological Contracts, Indian Aviation Industry, Employee Perceptions, Organizational Performance, Human Resource Management.

Introduction :

Over the past two decades, the Indian aviation industry has emerged as one of the most dynamic sectors of the national economy. Liberalization policies, increased private participation, growth in domestic air travel, and government-led connectivity initiatives have significantly expanded the scope and scale of aviation operations in India. Alongside infrastructural development and market expansion, the industry has experienced persistent challenges related to workforce management, employee well-being, and organizational stability.

Aviation organizations rely heavily on human resources whose roles are directly linked to safety, service delivery, and operational reliability. Pilots, cabin crew, maintenance engineers, air traffic professionals, and ground staff perform under conditions characterized by time pressure, emotional labor, and high accountability. In such an environment, formal employment contracts alone are insufficient to explain employee attitudes and behavior. Instead, informal expectations, perceived obligations, and mutual trust between employees and employers become decisive factors influencing performance.

Leadership plays a central role in shaping these expectations. Leadership behavior communicates organizational values, priorities, and commitment toward employees. Employees, in turn, interpret leadership actions as signals that shape their psychological contracts with the organization. Psychological contracts represent employees' beliefs regarding what the organization owes them and what they owe the organization in return. When these beliefs are fulfilled, employees demonstrate loyalty and engagement; when violated, negative attitudes and behaviors often emerge.

This paper seeks to explore the relationship between leadership styles and psychological contracts in the Indian aviation industry, focusing on employee perceptions and their implications for organizational outcomes. By integrating leadership theory with psychological contract theory, the study offers a comprehensive understanding of employee–organization relationships in a high-risk, service-intensive sector.

Leadership Styles : Theoretical Perspectives :

Leadership has evolved from being viewed as a position of authority to being understood as a process of influence and interaction. Contemporary organizational studies emphasize that leadership effectiveness depends not only on decision-making power but also on the ability to motivate, inspire, and support employees.

1. **Transformational Leadership :**

Transformational leadership emphasizes vision, inspiration, and personal development. Leaders adopting this style encourage employees to transcend self-interest for the collective good of the organization. Such leaders focus on intellectual stimulation, individualized consideration, and ethical conduct. In service-oriented industries like aviation, transformational leadership is particularly relevant, as it fosters emotional commitment and a sense of shared purpose among employees.

2. **Transactional Leadership :**

Transactional leadership is based on structured exchanges between leaders and followers. Performance is managed through rewards, incentives, and corrective actions. This style emphasizes compliance with rules, procedures, and performance standards. While transactional leadership can ensure operational efficiency, excessive reliance on it may limit employee creativity and emotional engagement.

3. **Passive and Avoidant Leadership :**

Passive or avoidant leadership is characterized by a lack of proactive guidance and delayed decision-making. In safety-critical industries such as aviation, this style is often associated with uncertainty, role ambiguity, and diminished confidence in management. Employees may perceive such leadership as a lack of organizational support.

Psychological Contracts : Concept and Dimensions :

The concept of the psychological contract refers to the unwritten and subjective set of expectations that govern the relationship between employees and organizations. Unlike formal contracts, psychological contracts are based on perceptions, experiences, and interpretations.

Psychological contracts are commonly classified into two broad types :

- Transactional psychological contracts, which focus on economic exchange, job security, and short-term obligations.
- Relational psychological contracts, which emphasize long-term commitment, trust, career development, and socio-emotional support.
- Leadership behavior plays a critical role in shaping these contracts. Leaders act as representatives of the organization, and their actions are often interpreted as reflecting organizational intent.

Review of Literature :

Existing literature highlights a strong relationship between leadership styles and employee attitudes. Research consistently shows that transformational leadership enhances job satisfaction, organizational commitment, and trust, while reducing stress and turnover intentions. Transactional

leadership, although effective in achieving short-term goals, may not sustain long-term engagement if not complemented by relational practices.

Psychological contract research indicates that fulfillment of employee expectations leads to positive outcomes such as loyalty, engagement, and organizational citizenship behavior. Conversely, psychological contract breach has been linked to dissatisfaction, cynicism, and withdrawal behaviors. Studies within the aviation sector emphasize the importance of leadership in managing emotional labor, safety compliance, and service quality. However, there is limited literature that explicitly connects leadership styles with psychological contracts in the Indian aviation context. This gap underscores the relevance of the present study.

Objectives of the Study

The study is guided by the following objectives :

(1) To examine the nature of leadership styles prevalent in the Indian aviation industry.

(2) To analyze employees' psychological contracts within aviation organizations.

(3) To explore how leadership styles influence the formation and fulfillment of psychological contracts.

(4) To assess the impact of employee perceptions on organizational outcomes.

(5) To suggest strategies for strengthening leadership effectiveness and employee relations.

Research Methodology :

The study adopts a qualitative and conceptual research design. Secondary data have been collected from academic journals, books, industry reports, regulatory documents, and policy publications related to leadership, psychological contracts, and aviation management.

A descriptive and analytical approach is used to synthesize existing knowledge and contextualize it within the Indian aviation industry. This methodology enables a comprehensive understanding of complex behavioral phenomena without relying on primary survey data.

Employee Perceptions in Indian Aviation Organizations :

Employee perceptions in aviation organizations are shaped by leadership communication, fairness in scheduling, workload distribution, career advancement opportunities, and organizational support systems. Transformational leadership tends to create positive perceptions by emphasizing respect, transparency, and professional growth. Employees under such leadership often perceive their psychological contracts as relational and enduring.

In contrast, leadership practices that are overly authoritarian or inconsistent may create perceptions of inequity and insecurity. Employees may interpret such practices as violations of implicit promises, leading to psychological contract breach.

Leadership, Psychological Contracts, and Organizational Outcomes :

The relationship between leadership styles and psychological contracts has direct implications for organizational outcomes. Fulfilled psychological contracts are associated with higher organizational commitment, improved service quality, and proactive safety behavior. Employees who trust their leaders are more likely to invest discretionary effort and remain with the organization.

Psychological contract breaches, however, often result in emotional exhaustion, reduced engagement, and increased turnover intentions. In the aviation industry, such outcomes can compromise operational reliability and customer satisfaction.

Discussion :

The analysis indicates that leadership styles significantly influence the nature of psychological contracts in the Indian aviation industry. Transformational leadership strengthens relational psychological contracts, fostering trust and long-term commitment. Transactional leadership supports operational discipline but requires supplementation through supportive and participative practices. Passive leadership undermines employee confidence and weakens psychological contracts.

Given the competitive and high-risk nature of aviation operations, organizations must adopt leadership approaches that balance efficiency with empathy and ethical responsibility.

Conclusion :

This study highlights the critical role of leadership styles in shaping psychological contracts and influencing organizational outcomes in the Indian aviation sector. Sustainable organizational performance depends not only on technological and infrastructural capabilities but also on leadership practices that recognize and manage employees' psychological expectations. Strengthening leadership development and fostering positive psychological contracts can enhance employee well-being, service quality, and organizational resilience.

References :

i. Argyris, C. (1960). Understanding Organizational Behavior. Homewood : Dorsey Press.

ii. Bass, B. M., & Riggio, R. E. (2006). Transformational Leadership. Mahwah : Lawrence Erlbaum Associates.

iii. Conway, N., & Briner, R. B. (2005). Understanding Psychological Contracts at Work. Oxford : Oxford University Press.

iv. Rousseau, D. M. (1995). Psychological Contracts in Organizations. Thousand Oaks : Sage Publications.

v. Yukl, G. (2013). Leadership in Organizations. Boston : Pearson Education.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 156-161

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रभाव
(बिहार के विशेष सन्दर्भ में)

प्रोफेसर चन्द्रशेखर
परियोजना समन्वयक
समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक भारतीय संस्कृति वैश्विक आधार पर वर्तमान समय में भी उन्नति का परिचायक मानी जा रही है। संस्कृति मानव के भौतिक नीति के एवं आध्यात्मिक शक्ति को न केवल व्यक्तिगत बल्कि सर्वांगीण विकास में समुचित सहयोग प्रदान करते हुए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। संस्कृति के माध्यम से ही सम्पूर्ण राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण की प्रभावी रूप–रेखा का निर्धारण होता है। इस प्रकार संस्कृति के सन्दर्भ में सभ्यता उत्थान तत्वों के संरचनात्मक विकास एवं पल्लवन से सम्बन्धित होता है। विश्व की अनेक संस्कृतियों में बलेनो की संस्कृति, यूनान संस्कृति, असीरिया संस्कृति, में भारतीय संस्कृति को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यहाँ की संस्कृति प्राचीनता के साथ ही साथ समाज के विकास और उन्नयन में भी महत्वपूर्ण मानी गयी है। भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीनता के प्रभावी स्वरूप को निरन्तर के रूप में अग्रसर कर रही है। भारतीय संस्कृति ने मानवता के विकास से निर्धारित अपने परम लक्ष्य को विश्व बंधुत्व की भावना में परिवर्तित करते हुए सभी धर्म तथा अनुयायियों को विशेषता प्रदान की है। भारत में जातिगत भिन्नता तथा वर्ण की परिवर्तित समरूपता के कारण भी इसमें विविध प्रकार के विकासीय तत्वों को निहित किया गया है।

भारतीय धर्म व्यवस्था के अंतर्गत संस्कृति को कभी भी विशिष्टता अथवा कट्टरता के दिशा के स्वरूप में स्वीकार नहीं किया गया बल्कि सरल रूप में संस्कृति को एक विशिष्ट विकास के संदर्भ में स्वीकार किया गया है। जिसे सौहार्दपूर्ण वातावरण को सिद्धान्तों तथा सहृदयता से नियंत्रित करने वाली ग्रहणशीलता को निर्मित किया है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत सर्वांगीण विकास कर्मवाद, शांति, अहिंसा, त्याग, तपस्या, अवतारवाद, पुनर्जन्मवाद एवं आशावाद की विशिष्ट संस्कृति को स्वीकार किया जाता रहा है। भारतीय संस्कृति की प्राचीनता गौरवपूर्ण रही है किंतु वर्तमान समय में भी इसका उतना ही प्रभाव है जितना की सांस्कृतिक रूप से वह धर्म से सम्बद्ध होने के पश्चात भी यह संस्कृति के विकास तथा इससे सम्बन्धित नैतिक मूल्यों के प्रसार–प्रचार को कल्पवृक्ष की भांति फलदायी और प्रभावी माना जाता रहा है। इस कल्पवृक्ष के वृक्ष के रूप में निरन्तर विकसित शाखाओं ने राज्यों का निर्माण किया। जिसने संस्कृति के विकास को विकसित करते हुए सम्पूर्ण मानवता को

स्थिर करने का कार्य किया। साथ ही साथ सामन्तवादी विचारधारा को न केवल अस्वीकार किया वरन् इसे विकसित करने के लिए अलग–अलग शाखाओं को निर्मित करते हुए आने वाली बाधाओं को समाप्त करने का प्रयास किया। भारतीय संस्कृति ने जीवन एवं जगत के प्रति सर्वभूत हित होना ही अपना परम कर्तव्य समझा गया है। इसके विस्तार को मानवतावादी सभ्यता और प्रत्यक्ष के रूप में निर्मित किया।

भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण मानवता के विकास पर निर्भर रही है तथा वह अपने इस निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बसुधैव कुटुम्बकम् के प्रभावी स्वरूप को निर्मित करता है। भारतीय संस्कृति की परम्परा तथा प्राचीनता वर्तमान समय में विशालता उदारता तथा सहिष्णुता की भांति समाहित है। भारत विविध राज्यों में विभक्त एक सशक्त राष्ट्र है। जिसकी राष्ट्रीयता शांति, अहिंसा एवं विश्व बंधुत्व के संदेश की स्वीकृति है जो संस्कृति द्वारा मानवता के विकास के संदर्भ में आत्मा से सम्बद्ध शक्तियों के विकास द्वारा परिष्कृत है। यह संरक्षण ही संस्कृति के संवर्ग को परिमार्जित करने का भाव सूचक प्रेरणा प्रदान करता है। संस्कृति को मानव के नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक उपलब्धि की सामग्री के रूप में स्वीकार किया जाना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान तथा भावी जीवन का सर्वांगीण विकास करती है। संस्कृति की आत्मा के रूप में धर्म तथा धार्मिक क्रिया–कलाप एक अनुशासन नहीं बल्कि परिणाम होते हैं। जिससे समाज में सामूहिक परिवर्तन और विकास की प्रेरणा प्राप्त होती है।

संस्कृति के संदर्भ में विश्व प्रसिद्ध विचारक डॉ. संपूर्णानंद ने कहा है कि मानव का प्रत्येक विचार संस्कृति नहीं हो सकता है पर जिनका कार्यों से किसी देश विशेष के समस्त समाज पर कोई अमित छाप पड़े व स्थाई प्रभावी संस्कृति है, संस्कृत वह आधारशिला है जिसमें आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रसाद निर्मित होता है। रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति को मानवता के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से प्रभावित मानते हुए कहा है की संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में सर्वाधिक रूप में प्रभावित होता है। यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उचित प्रकार से व्याप्त है। जिस प्रकार से फूलों के अन्दर सुगंध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं युग युगांतर में होता है। समाजशास्त्री ग्रीन ने संस्कृति को ज्ञान व्यवहार विश्वास की उन आदर्श पद्धतियों तथा ज्ञान व्यवहार से उत्पन्न संसाधनों तथा साधनों की व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है जो समय के साथ परिवर्तित होता है अर्थात जो सामाजिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता है।

संस्कृति के संदर्भ में विद्वानों के मत में भिन्नता पाया जाता हैं किन्तु समग्रता के आधार पर यदि देखें तो संस्कृति को सामाजिक विकास और उन्नयन की क्रियाशीलता के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत में संस्कृति का विकास मान्यता, सम्बन्धों के विकास तथा उसके प्रभावी स्वरूप एवं संरचनात्मक विकास के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। भारत में सांस्कृतिक विकास को धार्मिक उन्नयन तथा प्रभावशीलता के रूप में स्वीकार किया जाता है। धर्म, संस्कृति की आत्मा के विकास के स्वरूप तथा उसकी लोकप्रियता में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहित करता है। भारत धर्म के उदय के केंद्र के रूप में संस्कृतियों के परिवर्तन तथा विकास को न केवल विकसित करता है वरन् संस्कृतियों के अंतर्गत उत्पन्न रूढ़ियों को प्रथाओं के माध्यम से स्थापित करते हुए समाप्त करने का प्रयास करता है। धर्म से उत्पन्न पंथों तथा सम्प्रदायों के विकास की परम्परा में भी संस्कृतियों का विशेष योगदान रहा है। जो मान्यता, विकास और उसके कर्म को स्वीकारते हैं। धार्मिक

क्रिया–कलाप, कर्मकाण्ड तथा उनसे सम्बद्ध विकास की सम्पूर्ण कल्याण नीति में संस्कृति का विशेष योगदान होता है। मानवीय गुणों के विकास के अंतर्गत संस्कृति मुख्य रूप से धर्म, कला, विज्ञान, शिल्प, आध्यात्मिक, नैतिकता तथा नियम से प्रभावित मानी जाती रही है। भारतीय परम्परा के अंतर्गत संस्कृति को उन सम्पूर्ण क्रियाओं की विशेषता के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। जो मानव के विकास और उन्नयन में महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित रही हैं अर्थात सामाजिक नियंत्रण तथा विकास पूर्ण रूप से संस्कृति पर आधारित होता है और संस्कृति विकास के परिदृश्य में सर्वाधिक रूप से धर्म से प्रभावित होती है। धर्म के नैतिक तथा मूल्य जनित व्यवहार संस्कृतियों के सांस्कृतिक मूल्यों और संरक्षण तथा सम्वर्धन में सहायक होते हैं।

सभ्यता के विकास के क्रम के अन्तर्गत संस्कृतियों द्वारा शिष्टाचार, व्यवहार, सामाजिक समरसता, संरक्षण, संवर्धन, तथा मानवीय गुणों और संरक्षण के रूप में विशेष रूप से कार्य किया जाता है। सभ्यता सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति भी संस्कृति पर पूर्ण रूप से आधारित होती है। भारत के धार्मिक नगरों में संस्कृतियों का विशेष रूप से संरक्षण, संवर्धन और पोषण माना जाता है इसका कारण है कि यहाँ संस्कृतियों के उत्थान, विकास और उसकी प्रगतिशीलता का न केवल निर्माण होता है वरन् सम परीक्षित रूप से उसका मूल्यांकन भी होता है तथा सांस्कृति समृद्धि के विविध आयामों को विकसित किया जाता है। भारत में उत्तर प्रदेश के काशी तथा बिहार में गया जैसे प्रभावित क्षेत्रों में संस्कृतियाँ विशेष रूप से धर्म से प्रभावित होकर के अपनी आदर्श व्यवस्था को स्थिर करती है। जिसके परिणामस्वरूप मानव नैतिक गुणों तथा धार्मिक कर्त्तव्यों के प्रति प्रेरित होकर के संस्कृति को स्वीकार करता है। यहाँ संस्कृतियों, विशेष रूप से सभी धर्म में समानान्तर व्यवस्था को लागू करते हुए मानवीय गुणों और व्यवहारों को संचालित तथा सम्बोधित करने की प्रेरणा प्रदान करता हैं। वैश्विक आधार पर परिवर्तन को उपभोक्तावादी संरक्षणवादी तथा नीतिगत सम्वर्धन की प्राप्ति होती है। यह सम्वर्धन केवल और केवल भौतिक सुखों में वृद्धि करने का मूल मंत्र निहित होता है जबकि भारत के अंतर्गत सांस्कृतिक विकास की परम्परा में मानवीय गुण और उससे सम्बन्धित नीतियों के विकास में विशेष रूप से बल प्रदान किया जाता है। इसका कारण है कि मनुष्य अपने भौतिक संसाधनों की समृद्धि और विकास को सिमितता के परिप्रेक्ष्य में निर्मित करने का प्रयास यह स्थिति केवल प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा विभेदीकरण को निर्मित करती है जिससे मानव से मानव के मध्य सम्बधों का विश्लेषण आर्थिक आधार पर होता है जबकि मानवीय गुण का ह्रास होने लगता है। भारतीय संस्कृति और परम्परा के अन्तर्गत इस प्रकार की नीतियों का व्यक्तिवादी तक सीमित होता है किंतु भारत में संस्कृतियों का निर्माण और विकास की परम्परा व्यक्तिवाद के स्थान पर सर्वधर्म सम्भाव्य की नीति पर आधारित होता है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता :–

प्राचीनता को सजाये हुए भारतीय संस्कृति अपनी विशेषता के रूप में भी मानी जाती रही है। उसका मूल कारण है कि भारतीय संस्कृति की प्राचीनता सामाजिक परिवर्तन तथा धर्म के उन्नय व विकास और पंथ तथा सम्प्रदाय के प्रचलन के पश्चात भी संस्कार की पूर्णता से प्रभावित देखी जाती रही है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत क्षेत्र तथा स्थानीय लोक परम्पराओं का विशेष रूप से समावेशन भाषा के माध्यम से तथा धार्मिक, क्रिया–कलापों की विशेषता के माध्यम से स्वीकार किया जाता रहा है। यह स्थिति सम्पूर्ण संस्कृति के विकास, विस्तार तथा उसके प्रभावी रूप में रचनात्मक रूप से पायी गयी है। संस्कृतियों के सन्दर्भ में भारत की प्राचीनता लगभग 5200 वर्ष पुरानी मानी गयी है। भारतीय संस्कृति की समृद्धि निरन्तर के रूप में भी मानी गयी है क्योंकि

संस्कृतियाँ विकास की परिपाटी में समय अथवा देश, काल से प्रभावित होकर प्राय लुप्त हो गयी हैं किंतु भारतीय संस्कृति की प्राचीनता आदर्श सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप भी विकसित रही है इसका मूल कारण है कि भारत में क्षेत्रीयता के स्थान पर सामूहिक समाज एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण कार्य धर्म के माध्यम से किया गया है। धार्मिक प्रधानता तथा इसकी विशेषता नवीन संस्कृतियों को सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव से प्रभावित होना माना गया है।

डॉ. बलदेव उपाध्याय ने संस्कृति के संदर्भ में इसके श्रेष्ठता का मापन आध्यात्मिक चिंतन को माना है उनका मानना है कि जिस संस्कृति के अंतर्गत आध्यात्मिक विचार जितने अधिक गहन और प्रभावी होंगे वह संस्कृति इतिहास में उतना अपना महत्वपूर्ण स्थान रखेगी। भारतीय संत तथा चिंतन परम्परा ने आरम्भ से ही संसार से परे अलौकिक सत्ता को स्वीकार किया है। भारत की आध्यात्मिकता ने विदेशी विशेषकर यूरोपीय तथा भारत में आने वाले अन्य धर्म पर अपना प्रभाव डाला है। यह प्रभाव संस्कृतियों के माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता और विकास की परिपाटी को समृद्ध करने की सार्थकता के रूप में देखा गया है। भारत की आध्यात्मिकता मानव जीवन का परम लक्ष्य माना गया है जिसके अंतर्गत ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना तथा साधनों के माध्यम से सांसारिक जीवन को सफल बनाते हुए मोक्ष को प्राप्त कर लेना महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत धार्मिक विकास और सामाजिक दैनिक जीवन के साथ ही साथ दैनिक जीवन की क्रियाविधि और उनकी सम्पन्नता को भी ग्रहण करना महत्वपूर्ण माना गया है। भारत के अंतर्गत विश्व के अन्य देशों से आये विदेशियों ने न केवल भारतीय रीति–रिवाज, धर्म, भाषा, संस्कार को आत्मसात किया वरन भारतीय संस्कृति के रूप में ज्योतिष, काल आदि को भी ग्रहण किया है इसका प्रभाव ही भारतीय संस्कृति की विशालता, व्यापकता तथा विविधता को प्रदर्शित करता है क्योंकि भारतीय संस्कृति के अंतर्गत जियो और जीनो दो के सिद्धांत का विस्तार विश्व के अन्य धर्म को मानने वाले लोगों पर विशेष रूप से पड़ा। भारतीय संस्कृति ने विश्व को शांति, अहिंसा, सद्भावना, राष्ट्रीयता तथा नेतृत्व भाव और अपनात्व के सिद्धांत को धार्मिक संस्था के परिप्रेक्ष्य में दिया है। भारत के अंतर्गत संचालित होने वाले सम्प्रदायों में किसी भी प्रकार का विभेद, संघर्ष, रक्तपात नहीं हुआ जबकि यूरोप में धार्मिक आधार पर परिवर्तन को मानव संघार के रूप में भी देखा गया है।

धार्मिक सहिष्णुता के संदर्भ में सम्राट अशोक के बारे में शिलालेख में इस बात का उल्लेख मिलता है कि लोग केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और बिना कारण दूसरे सम्प्रदाय की निंदा करते हैं जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता है वह सम्प्रदाय का भी संरक्षण करता है और दूसरे सम्प्रदाय को भी स्वीकार करता है। सभी सम्प्रदाय वाले विद्वान होते हैं और कल्याण का कार्य करते हैं भारतीयों की सिद्धांत विदेशी पर्यटकों को भी धार्मिक रूप से प्रभावित करता है वह यहाँ की धार्मिक संस्था के संदर्भ में आकर्षित किया। भारतीय संस्कृति की विशेषता के अंतर्गत सर्वांगीणता को मुख्य रूप से स्वीकार करना इसलिए भी आवश्यक माना गया है कि यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास को आवश्यक और महत्वपूर्ण शक्ति प्रदान करता है जबकि विश्व के अन्य संस्कृतियों में भौतिक विकास को स्वीकार किया जाता है किंतु आत्म ज्ञान और आत्मा के विकास तथा उसके संरक्षण और सर्वांगीणता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया जाता है। कर्मवाद के अंतर्गत भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति के कर्मवाद को मूल मंत्र के रूप में प्रेरणा प्रदान करती है। कर्मवाद के सिद्धांत को शांति एवं अहिंसा के सिद्धांत से सम्बद्ध करते हुए महत्वपूर्ण धर्म जैन, धर्म तथा बौद्ध धर्म संपूर्ण विश्व को मानवता और शांति

के अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। यह भारतीय संस्कृति की प्रेरणा तथा अभिप्रेरणा का प्रभाव था कि जीव और अजीव के प्रति अहिंसा की सहानुभूति को वर्तमान समय में भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जा रहा है। विश्व बंधुत्व की भावना को विकास के संदर्भ में भारतीय संस्कृति ने इसे सर्वाधिक विकसित किया है विभिन्नता में एकता के रूप में भारतीय संस्कृति ने जातीय, समुदायों, धर्मों में विभाजित होने के पश्चात भी विश्व बंधुत्व को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। राधाकमल मुखर्जी ने भारतवर्ष के अंतर्गत प्रचलित संस्कृतियों को स्वीकार करते हुए कहा कि भारत विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों, रीति–रिवाजों, धर्म, संस्कृतियों में विश्वास एवं भाषा, जातियों तथा सामाजिक व्यवस्था का एक संग्रहालय है। इतनी भिन्नता के पश्चात भी भारतीय संस्कृति की एकता स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। यह एकरूपता ही सांस्कृतिक एकता को प्रदर्शित करती है। सांस्कृतिक एकता के अंतर्गत विभिन्न जातियों एवं धर्म के मध्य होने वाले सांस्कृतिक क्रिया–कलाप, पर्व, त्यौहार, खान–पान, रहन–सहन, वस्त्र, आभूषण, कला, साहित्य, शिल्प तथा इनकी क्रिया–शीलता और पारस्परिक प्रभावशीलता को देखा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति के अंतर्गत बौद्ध, जैन, सनातन, इस्लाम, जैसी संस्कृतियों का सात्मीकरण है। भारत में अलग–अलग धर्म के अनुयायी निवास करते हैं किंतु इस विभिन्नता के पश्चात भी नैतिक सिद्धांतों में मूलभूत रूप से एकता और एकेश्वरवाद, आत्मा का अमृत तो कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष, निर्माण, भक्ति, योग, बोधिसत्व और तीर्थंकर आदि प्रयास सभी धर्म की निधि है। नियम, शील, तप, सदाचार, सत्य, अहिंसा, शांति यहाँ की प्रमुख संस्कृति का सिद्धांत हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य व्यक्ति का समाज का राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करना है। यह संस्कृति प्राचीनता के पश्चात भी वर्तमान समय में सुरक्षित है। जहाँ विश्व की अन्य विविध प्रकार की संस्कृतियों समाप्त हो गयी अथवा परिवर्तित हो गयी या प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होकर के नष्ट हो गयी वहीं भारतीय संस्कृति ने विश्व बंधुत्व की भावना नीति को विकसित करते हुए अपने अनुयायियों को विशेषता का स्थान प्रदान किया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति कर्मवाद की महत्वपूर्ण क्रिया–शीलता से प्रभावित तथा वर्तमान समय में भी मानव का पथ प्रदर्शन करते हुए उसे स्वार्थ, तथा हिंसा से मुक्ति देने का प्रयास कर रही है।

बिहार का सांस्कृतिक विकास :–

बिहार की संगीत परम्परा सदैव सही प्रभावशाली रही है। भारत के बिहार राज्य में नवरी, लगती, फाग चौती एवं पूर्वी जैसी संगीत की रचना की गयी थी। जिसमें संगीतज्ञ मोहम्मद राजा द्वारा निर्मित पाठ नाम के वाद्य यंत्र द्वारा विशिष्टता प्राप्त की गयी थी। काल के संदर्भ में बिहार राज्य सदैव से ही सम्पन्न रहा है। इस राज्य में अति प्राचीन विश्वविद्यालय नालंदा, विक्रमशिला, राजगिरी, वैशाली, पाटलिपुत्र जैसे अध्ययन–अध्यापन के केंद्र ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पुरातात्विक विषयों शिलालेखों, खंडहर, भग्नावेश इत्यादि से इस बात की पुष्टि की कि सदियों से अपनी विशेषता तथा सम्पन्नता को प्रदर्शित करते हैं। यह इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत में धर्म, नीति, चिंतन, मनन एवं संस्कृति बिहार की सम्प्रभुता से प्रभावित हुयी है। भाषा के अंतर्गत बिहार में विशेष रूप से मैथली भाषाओं की संख्या सर्वाधिक पायी गयी है। इसका मुख्य कारण है कि आंगिक तथा बाजिक भाषा इसमें सम्मिलित है। यह साहित्य के दृष्टिकोण से अत्यधिक प्रभावित है। धर्म एवं आध्यात्मिक के क्षेत्र में बिहार भूमि न केवल धर्म व भावनाओं का विकास किया है बल्कि उनकी पुष्टि भी किया है कि आध्यात्मिक विद्या एवं दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान यज्ञ वल्लभ के द्वारा शास्त्रार्थ से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के स्त्रोत मिलते

है। भारत के बिहार राज्य में सनातन धर्म का सबसे प्रभावित क्षेत्र गया माना जाता है। जो धार्मिक रूप से अपनी सम्प्रभुता को अति प्राचीन काल से निर्मित किये हुए हैं। भारतीय दर्शन के अंतर्गत बिहार का नाम विश्व प्रसिद्ध है क्योंकि यहाँ पर यह तपाचारियों की केंद्र बिंदु मानी जाती रही है। भारतीय सभ्यता में नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने भारतीय संस्कृति को विशेष रूप से महत्व प्रदान की है।

उपसमन्वयक – डॉक्टर ज्योति रानी अग्रवाल, डॉक्टर गरिमा, डॉक्टर श्रुति राय, डॉक्टर कौशल किशोर, डॉक्टर चिरंजीवी ठाकुर।

यह शोध कार्य भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा वित्तपोषित है और यह अध्ययन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली नामक परियोजना के अंतर्गत अनुदानित किया गया है। जिसका शीर्षक भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रभाव (बिहार के विशेष सन्दर्भ में) में है फाइल नंबर (ICSSR/RPD/RPR/202324/2026)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. गौड मोहिनी एवं श्रीवास्तव रश्मि (2022), बिहार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन, इंटरनेशनल जनरल आफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वॉल्यूम 10 इश्यू 8 अगस्त 2022
2. श्रीवास्तव कृष्ण चंद्र (2024), भारत की संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।
3. विद्यालंकार सत्य केतु (2003) जी. सी. प्रिंटर्स, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली।
4. चौधरी उमा (2020) लोक संस्कृति की अवधारणा, इंटरनेशनल जनरल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च एण्ड थॉट्स, वॉल्यूम 08, इश्यू 03, मार्च 2020

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 162-166
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : भारतीय समाज के परिप्रेक्ष में

विशेष सन्दर्भ : अलका सरावगी कृत 'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास

प्रीति प्रिया दास
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक–753003

शोध-सरांशिका :

अलका सरावगी कृत 'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में एक मील का पत्थर माना जाता है। इस कृति के लिए उन्हें सन् 1998 ई. में 'श्रीकांत वर्मा पुरस्कार' एवं सन् 2001 ई. में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इस उपन्यास के शीर्षक का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि 'कलिकथा' से तात्पर्य कोलकत्ता शहर की कथा ही नहीं अपितु उपन्यास के नायक किशोर बाबू के जीवन सफर की गाथा भी है। शीर्षक में प्रयुक्त 'बाइपास' शब्द इस उपन्यास का मुख्य शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है– शहर के बाहर जाने के लिए इस्तेमाल एक वैकल्पिक मार्ग या उपमार्ग। बाईपास एक प्रकार की सर्जरी भी होती है, जिसमें दिल को रक्त पहुँचाने रक्त वाहिकाओं को उपचार करने के बजाय ग्राफ्ट के सहायता से एक नए मार्ग के माध्यम से रक्त की आपूर्ति की जाती है। उसी प्रकार इस उपन्यास में लेखिका इस बात की और ध्यान आकर्षित करती हैं कि आज का समाज आधुनिकता के नाम पर मूल समस्याओं को नजरअंदाज करते हुए 'बाइपास' की तलाश कर रहा है। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य देश में बढ़ती अराजकता और नैतिक पतन की ओर ध्यान आकर्षित करना है। यह उपन्यास भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के परिणाम स्वरूप उत्पन्न सांस्कृतिक विघटनों, विड़म्बनाओं, अराजकताओं और समस्याओं को बेनकाब करता है। साथ ही इनसे उबरने के लिए ऐसे मार्गों की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है, जिसके माध्यम से समाज में स्वस्थ वातावरण स्थापित किया जा सकता है। इस उपन्यास में लेखिका यह संदेश देती हैं कि विदेशी पूंजी और संसाधनों को अपनाते हुए भी स्वदेशी संपदा को अनदेखा व बाईपास नहीं किया जाना चाहिए। भूत, वर्तमान और भविष्य के त्रिकोणीय परिप्रेक्ष्य में यह औपन्यासिक कृति आधुनिकता की चुनौतियों का हल तलाशते हुए मानवीय संवेदनाओं की वकालत करती है।

शोध–आलेख :

भूमण्डलीकरण (Globalization) एक प्रक्रिया है, जिसमें दुनिया भर में विभिन्न देशों और संस्थाओं के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और तकनीकी संबंधों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। इससे देशों के बीच वाणिज्य में वृद्धि होती है एवं अर्थ–व्यवस्था सुदृढ़ होने के साथ–साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी आदि क्षेत्रों में विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। सिर्फ यह नहीं भूमंडलीकरण के जरिए लोगों के बीच विचारधाराओं, जीवन शैली, सांस्कृतिक मान्यताओं का आदान–प्रदान बढ़ता है। भूमंडलीकरण की अवधारणा

पश्चिमी देशों में उद्भव हुई तथा बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भारत की अर्थनीति में बदलाव, इसको गति प्रदान की। इस संदर्भ में अभय कुमार दुब्बे 'भारत का भूमंडलीकरण' ग्रंथ में उल्लेख करते हैं– "पहली नजर में लगता है कि भूमंडलीकरण का यह पल अचानक कहीं से आया और हम पर हावी हो गया। लेकिन असल में इस लम्हें के लिये धीरे–धीरे कई साल से राष्ट्रातीत और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक जमीन पक रही थी। यह पल तब आया जब साकार राष्ट्र की वैकासिक आधुनिकता अपने वायदों को पूरा करने में नाकाम हो गई। ...अर्थात भारतीय अभिजन अपने पश्चिमीकरण को अमेरिकीकरण के रूप में देखने के लिए तैयार हो गये।"[1]

अलका सरावगी द्वारा रचित 'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास में वैश्वीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न चुनौतियों और संघर्षों को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। इस कृति का मुख्य लक्ष्य अतीत के गौरवमयी गाथा को समेटते हुए वर्तमान की जटिलताओं से घिरे भारतीयों को मार्ग दर्शन कराना है।

भारत आदर्श और नैतिकता की भूमि है। परंतु आज भारतीय जनता अपने जीवन मूल्यों से विमुख होकर यथार्थ से दूर भाग रहे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के जाल में फँस कर वे भौतिकतावाद की ऊंचाइयों को छूने का निरर्थक प्रयास करते जा रहे हैं। वस्तुओं के गुण–अवगुण भूलाकर बिना सोचे–समझे नकल करने में लगे हुए हैं। हम स्वाधीन देश के नागरिक हैं, चाहे यह बात कितनी ही बार और कितने दंभपूर्वक क्यों न कह लें पर वास्तविकता तो यह है कि हम आज भी मानसिक गुलाम के शिकार हैं। इस बात को उजागर करती हुई लेखिका उपन्यास में कहती हैं– "यहाँ सबके अपने–अपने सपने हैं, किशोर देखता है, पर कहीं वे सारे सपने एक जगह जुड़ जाते हैं। कारण यह है कि शत्रु का चेहरा साफ है– उसके चले जाने से ही एक नया सोने का सूरज उगेगा। यह किशोर को बाद में जाकर कई दशकों के बाद अहसास होता है कि जब शत्रु का चेहरा खोजने पर अपना ही चेहरा शीशे में नजर आने लगता है तो सारे सपने धुँधला जाते हैं। यहाँ तक कि कोई सपना बाकी नहीं बचता। बस, अपना पेट बचता है जो दिन–ब–दिन बढ़ती जरूरतों, इच्छाओं और चीजों के साथ–साथ बढ़ता जाता है और किसी तरह पूरा नहीं भरता।"[2] इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि भारतीयों को यकीन था कि औपनिवेशिक शासन सत्ता हटने के उपरांत स्वतंत्र भारत तथा विकसित भारत का निर्माण हो सकेगा। सिर्फ यही नहीं, भूमंडलीकरण प्रक्रिया से विकास की धारा को एक नयी गति मिलेगी, ऐसी सोच रखने वाले आशावादी भारतीयों को कठिन से कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास के नायक 'किशोर बाबू' हैं। हार्ट अटैक आने के बाद उनकी 'बाइपास' सर्जरी होती है। इसके उपरांत उनकी मानसिक अवस्था असंतुलित हो जाती है। इसी असंतुलन की स्थिति में वे रोज शाम होते ही पैदल सड़क पर घूमने निकल जाते और घूमते हुए अतीत की स्मृतियों में डूबते तथा उतरते रहते हैं। वास्तव में यह उतार चढ़ाव नई और पुरानी पीढ़ी तथा जीवनशैली के बीच का है। किशोर बाबू के मानसिक द्वन्द्व को आधार बनाकर लेखिका वर्तमान की जटिल यथार्थों से साक्षात्कार कराती हैं। नायक 'किशोर बाबू' और उनके मारवाड़ी परिवार की चार पीढियों को राजस्थान से आकार कलकत्ता में बसने तक कई कठिनाईयों, आशाओं, निराशाओं और अंतर्द्वंद्वों का सामना पड़ा। उपन्यास में इसकी चर्चा बड़ी कुशलतापूर्वक की गई है। एक तरफ जहाँ यह कृति मानवीय मनोविज्ञान एवं संवेदनाओं की गहराइयों को टटोलती है, वहीं दूसरी ओर यह राजनैतिक अस्थिरता, भारतीय अर्थतंत्र, सामाजिक विसंगतियाँ, भूमंडलीकरण के दौर में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण की वास्तविकता को भी उजागर करती है।

उपन्यास में 'अलका सरावगी' ने नायक 'किशोर बाबू' की जिंदगी के माध्यम से समय के तीन आयामों– अतीत, वर्तमान एवं भविष्य को प्रस्तुत किया है। पहली जिंदगी में वह अपने परिवार के साथ जी रहे होते हैं, यह समसामयिक यथार्थ को दर्शाती है। दूसरी जिंदगी की शुरुआत तब होती है जब वे मानसिक असंतुलन की स्थिति में अतीत की स्मृतियों में जीते हैं एवं तीसरी जिंदगी भविष्य की एक भयावह परिकल्पना है, जहाँ वे आने वाले समय की त्रासदियों का आकलन करते हैं। 'किशोर बाबू' का यह मानना है कि वर्तमान युग में सिर्फ प्रकृति के अतिरिक्त सब कुछ कृत्रिमता को भेंट चढ़ चुका है। 'विश्वग्राम' बनाने के होड़ में न केवल वस्तुएं और हथियार, बल्कि मानवीय आचार–विचार, व्यवहार और संवेदनाएं भी बिकाऊ बन गई हैं। लेखिका का मूल उद्देश्य इन बिखरते हुए जीवन मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों को पुनः स्थापित करना है, जो आधुनिकता के अंधानुकरण में कहीं ओझल हो गए हैं।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में पूंजीवाद के प्रसार, अंतर्राष्ट्रीय निगमनों के बढ़ते प्रभाव, समकालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ और भूमंडलीकरण के कारण बाजारवादी संस्कृति के आगमन एवं उसके परिणामों को चित्रित किया है। विकास के शिखर तक पहुँचाने वाली सीढ़ी समझ कर स्वागत किया गया भूमंडलीकरण व्यवस्था से समाज धीरे–धीरे विनाश की ओर बढ़ रहा है। मानव में मानविकता खत्म हो चली है। मनुष्य मशीन जैसे संवेदनहीन बन गया है। रिश्ते–नाते टूटने के साथ–साथ अकेलापन इस जमाने की खास समस्या बनी हुई है। भौतिकतावादी जीवन से मानव अब ऊब कर शांति की तलाश में जुट गया है।

इस सन्दर्भ में उपन्यास कहा गया है कि– "लोगों ने यह भी समझ लिया कि जिन सुविधाओं का भोग करने की उन्हें आदत पड़ गई थी, वे ही उनके कष्ट का कारण हैं। जिस–जिस ने जितनी सुविधा भोगी थी, उसे उतना ही कष्ट हुआ। बाकी लोग जैसे रहते आए थे, उसी तरह रहते रहे। ऐसे लोग जो अपने गाँवों के अमूल्य हवा–पानी–आकाश को छोड़कर शहरों में नरक जैसा जीवन बीताने आये थे, मुक्त हो गए। वे सब बड़े उत्साह से वापस गांवों की ओर लौट पड़े क्योंकि शहरों से मिले पैसे से वे कुछ ऐसा नहीं खरीद सकते थे, जो कोई काम आए। इसलिए वे वापस अपनी धरती की गोद में बैठने चल दिए।"[3] उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि महानगरों से गाँव की ओर वापसी, आधुनिकता का मोहभंग है। लोगों को अब समझने की आवश्यकता है कि जिस आरामदायक जीवन के वे आदि हो गए हैं, वही उनके दुखों का मूल कारण है। विकसित देशों में प्रदूषण की मात्रा अधिक होती है, जो जन–जीवन को हानी पहुंचती है।

इस संदर्भ में लेखिका ने उपन्यास में औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप क्षतिग्रस्त हरियाली, बढ़ते मशीन के प्रयोग और घटते श्रमशक्ति के बारे में चिंता प्रकट करती हुई कहती हैं– "पृथ्वी को बचाने का अब एक ही तरीका था कि आदमी का श्रम सारी मशीनों की जगह ले और यह श्रम अधिक–से–अधिक हरियाली के उत्पादन में लगे–ऐसी हरियाली, जिसमें किसी तरह के रसायन का प्रयोग न हो। अब पेड़–पौधों से उत्पन्न होने वाली ऑक्सीजन ही इस पृथ्वी को बचा सकती है।"[4] इसमें परिवेश के प्रति सजगता का भाव साफ झलकता है। औद्योगीकरण से प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है। वर्तमान प्रश्वास में ग्रहण करने वाली वायु तक शुद्ध नहीं है। लेखिका ने भविष्य के प्रति जन समुदाय को सचेत करवाती हुई कहती हैं कि– श्रमिकों के छँटनी और मशीनों के अधिकाधिक उपयोग से बेरोजगारी और घोर एकाकीपन बढ़ती जाएगी। इसलिए लेखिका ने मशीनों के कम

उपयोग तथा श्रम शक्ति के अधिक उपयोग पर विशेष बल दिया है। भविष्य में औद्योगिकरण के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक अधोपतन का मूल्य मानव जाति को चुकाना पड़ेगा। आलोचित पंक्ति के माध्यम से लेखिका ने वर्तमान की चुनौतीयों को प्रस्तुत कर उसका समाधान भी बताया है कि व्यक्ति आज हकीकत से भाग नहीं सकता। इस गंभीर वास्तविकता का सामना करते हुए उसका समाधान ढूँढना अति आवश्यक है, अन्यथा अगली पीढ़ी की प्राणशक्ति विनष्ट हो जाएगी।

बाजारवाद के प्रभाव को उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि– "ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत को जितना लूटा था, उससे हजार गुना लूट अब विदेशी कम्पनियाँ हमारे देश में कर रही है। डॉलर की तुलना में रुपये का दाम इतना गिरा दिया है कि यहाँ से एक करोड़ माल विदेश जाता है, तो उसकी कीमत मिलती है एक–चौथाई यानी सिर्फ पच्चीस लाख। कहते हैं कि हम आर्थिक रूप से फिर गुलाम हो गए हैं।"[5] वास्तव में बाजारवाद की समस्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। इस बाजारवाद ने केवल महानगरों और शहरों को ही नहीं अपितु गाँव को भी अपने चंगुल में फँसा कर मूल संस्कृति को नष्ट कर रहा है। युवा पीढ़ी आज तरक्की करने के लिए ऐसे महानगरों में बसना चाहती है जो शहर उनके सपनों को मुक्काम दे सकें और वे परिवार को भूल कर रिश्ते–नाते पीछे छोड़कर अपनी सफलता की और दौड़ लगा सकें। इस भाग–दौड़ भरी जिंदगी से सामाजिक विखंडन और अलगाव की स्थिति पैदा हो रही है। युवा पीढ़ी की अमेरिकी जीवनशैली एवं अंग्रेजी भाषा के प्रति अत्यधिक रुझान, मातृभूमि तथा मातृभाषा के प्रति वैमनस्यता को प्रतिपादित करती है। किशोर बाबू का बेटा इसीलिए खुस नहीं होता है कि उसके पिता 'गीता' पढ़ रहे हैं, बल्कि इसलिए खुश होता है कि वे अंग्रेजी भाषा में लिखित 'गीता' की टीका पढ़ते हैं।

इस संदर्भ में उनका बेटा कहता है– "संस्कृत इतनी पुरानी लैंग्वेज है और उसको जानने वाले लोग कहाँ हैं? एण्ड माइ फादर, जस्ट इमैजिन, गीता की टीका इंग्लिश में पढ़ रहे हैं।' इस बात से उनका लड़का परम मुग्ध है।"[6] विवेच्य उपन्यास के जरिए मानव जाति के इस पतन एवं भटकाव की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इन्हीं जटिल यथार्थों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करवाते हुए सामाजिक जागरूकता लाने की कोशिश की गई है। 'भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ' ग्रंथ में सच्चिदानंद सिन्हा 'वैश्वीकरण' के प्रभाव को रेखांकित करते हुए लिखते हैं– "वर्तमान स्थिति का चिंतनीय पहलू यह है कि भूमंडलीकरण की दौड़ ने इस औद्योगिक उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपनी गिरफ्त में सारे संसार को ले लिया है और जो स्वतंत्र संस्कृतियाँ अब तक जीवित हैं, तेजी से इसके प्रभाव में इसके मूल्यों को कबूल कर रही हैं, या मरणासन्न हैं इसलिए यह संभावना दिखाई नहीं देती कि इस सभ्यता की मौत से फिर कहीं से अचानक एक नई सभ्यता का विकास स्वतः हो जाएगा। हकीकत तो यह है कि प्रदूषण और संसाधनों के लोप से अपनी मौत के साथ यह सभी जीवन को मौत के मुँह में धकेल देगी। इसलिए एकमात्र उपाय विकास की इस दिशा को बदलना ही हो सकता है।"[6] सही में आज मानव अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति के आगे गिरवी रख कर पूर्वजों से अर्जित श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को विस्मृत करता चला जा रहा है। यह विस्मरण आगे चलकर उसके लिए विपत्ति का कारण बन सकता है।

'अलका सरावगी' अपने उपन्यास 'कलिकथाः वाया बाइपास' में भविष्य की इस संभावना एवं उससे उत्पन्न अराजकता के प्रति गहरी चिंता व्यक्त करती हैं। भूमंडलीकरण के मायाजाल में उलझे मानव को निकालने के लिए लेखिका सार्थक प्रयास करती हुई दिखाई पड़ती हैं। इस प्रक्रिया से पनपती अमानवीय प्रवृत्तियाँ जब

नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक ताने–बाने को छिन्न–भिन्न करने लगती है, ऐसे समय में नूतन एवं संभावनापूर्ण उपमार्गों की तलाश कर देश तथा समाज के विकास को सुचारू रूप से गति प्रदान करना आवश्यक होता है। परन्तु इस प्रक्रिया के दौरान अनिवार्यतः यह नहीं होना चाहिए कि अपने देश के संसाधनों को बाइपास करके विदेशी संसाधनों को अहमियत दी जाए। विकास के लिए आवश्यक है कि अपने देश के श्रम शक्ति और संपदाओं का उपयोग अधिक से अधिक हों। इससे एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण संभव हो पाएगा।

अतः हम कह सकते हैं कि 'अलका सरावगी' ने समसामयिक यथार्थ को एक नवीन दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है। वास्तव में हम एक ऐसे दौर में पहुँच चुके हैं जहाँ से इस व्यवस्था को छोड़ पाना संभव नहीं है, लेकिन इससे बचने के लिए ऐसे उपाय निकालना होगा, जिससे भूमंडलीकरण के नकारात्मक प्रभाव को दूर किया जा सकता है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से बड़ी निर्भीकता के साथ स्पष्ट रूप से अपनी बातों को सबके सम्मुख उपस्थापित किया है। 'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास इस दिशा में एक सफल और सार्थक उपन्यास साबित होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. दुबे, अभय कुमार, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली–110002, पृष्ठ संख्या– 23
2. सरावगी, अलका, कलिकथा : वाया बाइपास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2018, पृष्ठ संख्या– 19
3. वही, पृष्ठ संख्या– 231
4. वही, पृष्ठ संख्या– 230
5. वही, पृष्ठ संख्या– 174
6. वही, पृष्ठ संख्या– 224
7. सिन्हा, सच्चिदानंद, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली–110002, संस्करण– 2016, पृष्ठ संख्या– 206

ई–मेल– pritipriya0981@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 167-170
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

हिंदी साहित्य में आत्मकथा की परंपरा और आधुनिक अस्मिता विमर्श

डॉ. सबा रईस
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर बिहार।

आत्मकथा एक लेखक द्वारा स्वयं के भोगे हुए अनुभवों की एक सच्ची दास्तान होती है। आत्मकथा विधा विदेशी साहित्यक विधा है। आधुनिक काल के आरम्भ होने पर विदेशी संस्कृतियों से सम्पर्क के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में इस विधा का आगमन हुआ। हिन्दी में यह विधा अधिक लोकप्रिय भी नहीं रही है। असल में हिन्दी में आत्मकथा लेखन की कोई विकसित परम्परा नहीं रही है, पिछले एक डेढ़ दशक से ही इस पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। आत्मकथा में अप्रिय सच को कहना भी जरूरी होता है। बहुत हद तक हिन्दी में आत्मकथा के अभाव का यह भी एक कारण रहा है। "अच्छी आत्मकथा लिखने के लिये आवश्यक है कि लेखक में अप्रिय सच को कहने का साहस हो और उसके पाठकों में वैसे सच को सहने तथा स्वीकार करने का धैर्य भी हो। भारतीय साहित्य में आत्मकथा के अभाव का एक कारण शायद यह भी है कि यहाँ लगातार यह उपदेश दिया जाता रहा है कि सच बोलो, पर अप्रिय सच नहीं, ऐसे उपदेशों से जो मानसिकता बनती है वह अप्रिय सच कहने के साहस का नाश करती है और उसे स्वीकार करने के धैर्य का भी।"[i]

आत्मकथा विधा को समझने के लिये कुछ तथ्यों की चर्चा करना आवश्यक है, जैसे– भारत में आत्मकथा विधा का आविर्भाव किन सामाजिक और राजनैतिक कारणों के फलस्वरूप हुआ, हिन्दी में पहली आत्मकथा किसे माना जाना चाहिए? हिन्दी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन की शुरुआत कब से हुई और कौन सी प्रारम्भिक मुख्य अभिव्यक्तियाँ रही हैं? साथ ही वर्तमान साहित्यक परिदृश्य में आत्मकथा विधा की क्या हैसियत है और आधुनिक अस्मिता विमर्शों की प्रमाणिक अभिव्यक्ति में यह विधा कहाँ तक सहायक साबित हुई है?

वास्तव में आत्मकथा एक व्यक्ति विशेष द्वारा स्वयं लिखी गयी एवं प्रतिपादित की गयी एक सच्चा अभिलेख होती है। आत्मकथा को परिभाषित करते हुए विदेशी विद्वान राय पास्कल कहते हैं– "आत्मकथा जीवन को या उसके किसी एक भाग की वास्तविक घटनाओं को जिस समय में वह घटित हुई, उन समस्त चेष्टाओं को पुनर्गठित करती है। इसका मुख्य संबंध आत्मविवेचन से होता है, बाह्य विश्व से नहीं। यद्यपि व्यक्तित्व को अद्वितीय बनाने के लिये बाह्य विश्व को भी लाया जा सकता है और आवश्यकतानुसार छोड़ा भी जा सकता है। जीवन को पुनर्गठित करना एक असंभव कार्य है। एक ही दिन के आगे पीछे का अनुभव असीम होता है। इस

प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मकथा बीती हुई घटनाओं से बनती है। यह वैयक्तिक जीवन की कुछ स्थितियाँ बना देती है। उनमें संबंध स्थापित करती है, और उनकी व्याख्या करती है। इसके साथ ही वह अपने और बाह्य विश्व के निश्चित दृढ़ संबंध को प्रदर्शित करती है।"[ii] एक अन्य विदेशी विद्वान शिल्पे ने आत्मकथा को इस प्रकार परिभाषित किया है–"उसे लेखक के जीवन का एक श्रृंखलाबद्ध विवरण कह सकते हैं जिसमें वह अपने विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर उनको व्यवस्थित ढंग से सामने रखता है या फिर अपनी अंतर्दृष्टि से उनको संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करता है।"[ii] विदेशी विद्वानों से इतर भारतीय विद्वान आत्मकथा पर चर्चा करते हुए इसके लिये कुछ तत्वों को आवश्यक ठहराते हैं जैसे– लोकमंगल की कामना, यशोवृद्दि की अभिलाषा, आत्मान्वेषण (आत्म–साक्षात्कार के अर्थ में) एवं रहस्य का प्रकाशन प्रभृति को स्वीकार करना आवश्यक है।

आत्मकथा एक ऐसी विधा है जो जीवन से सीधे तौर पर सम्बद्ध होती है। इसी कारण इसे किसी खास शिल्प के बंधन में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। असल में आत्मकथा के मर्म को साबित करने के लिये किसी कलात्मक प्रतिभा से ज्यादा निश्छलता की जरूरत होती है। इस तरह देखें तो लेखक को किसी और दूसरी विधा में इतनी छूट नहीं है। इसी कारण इसे केवल लेखक तक ही सीमित करके नहीं देखा जा सकता।

'आत्मकथा' का विग्रह करें, तो पायेंगे कि 'आत्म' अपना है और 'कथा' सबकी है।"[iv] इस तरह देखें तो आत्मकथा कोई भी लिख सकता है। इसी तथ्य को समझाते हुए पंकज चतुर्वेदी कहते हैं–"साहित्य में आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जिसे हर हाल में जीवन वास्तव के अधीन रहना होता है। जिस तरह एक नैसर्गिक जिन्दगी का पहले से सोचा समझा शिल्प नहीं हो सकता, उसी तरह उसको जीने की भी कोई सुनिश्चित कला नहीं हो सकती। वहाँ अप्रत्याशित परिस्थितियों से सीधी मुठभेड़ होती है, जिसमें सीखे हुए दाँव–पेंच बेकार जा सकते हैं। यह जरूर है कि इस संघर्ष में से रीते हाथ लेकर कोई नहीं लौटता। सब के पास कुछ न कुछ मार्मिक निष्कर्ष होते हैं। इनसे जुड़ा कोई प्रश्नाकुल आवेग होता है, जिसे हम अपने हाथ में थामे हुए नहीं रह सकते। रहते हैं तो भाव और भाषा की संभावनाएँ कुंठित हो जाती हैं।"[v]

हिन्दी साहित्य में यदि आत्मकथा विधा की बात की जाए तो कुछ गिनी चुनी आत्मकथाएं ही नजर आती हैं। भारत में प्राचीन काल में आत्मकथा की कोई विकसित परम्परा दिखाई नहीं देती मूल रूप से आत्मकथा के व्यवस्थित लेखन का विकास आधुनिक काल से ही शुरु होता है। "पराधीन भारत में अंग्रेजी शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार प्रसार की बदौलत कुछ नये जीवन मूल्य अस्तित्व में आये, एक नयी वैज्ञानिक चेतना के प्रति आत्मीयता बढ़ी। आत्मकथा लेखन के लिये अनिवार्य कुछ परिस्थितियाँ निर्मित हुईं। इतिहास को ज्ञान के एक स्वायत्त और विशिष्टि अनुशासन के रूप में मान्यता मिली। ऐतिहासिक सत्य और अतीत की स्वायत्तता और अतीत की रोशनी में वर्तमान की व्याख्या–सरीखी अवधारणाओं को भारत में जबर्दस्त स्वीकृति प्राप्त होने लगी। पाश्चात्य संस्कृति से हिन्दुस्तानी संस्कृति के घात संघात की व्यापक प्रक्रिया में पड़कर भारतीय जनों को लगा कि उनके समक्ष पहचान का संकट खड़ा हो गया है। इसलिए आवश्यक रूप से बदल गये समय संदर्भों की कसौटी पर रखकर 'आत्म' को विश्लेषित करने की उसे ठीक से समझने और उसकी दिशाएं तय करने की जरूरत आन पड़ी।"[vi]

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु ने सामान्य गद्य रूप में आत्मकथा का एक अंश लिखा– 'कुछ

आपबीती कुछ जगबीती। भारतेन्दु मंडल के सुधाकर द्विवेदी ने 'रामकहानी' नाम से आत्मकथा लिखी, अम्बिकादत्त व्यास ने 'निज वृन्तात' लिखा। इसी दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हुए प्रेमचन्द ने १६३२ में हंस का एक 'आत्मकथांक' का संयोजन और संपादन किया। हिन्दी में पहली चर्चित आत्मकथा की बात की जाए तो यह श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' थी। १६४६ में पाँच खंडों में राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन–यात्रा' आई। इसके बाद कुछ अन्य लेखकों की आत्मकथाएं भी चर्चित रहीं परन्तु यशपाल की 'सिंहावलोकन' और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर' अत्यधिक महत्वपूर्ण आत्मकथाएं थीं। हरिवंश राय बच्चन ने भी चार खंडों में अपनी आत्मकथा लिखी, जो काफी विवादास्पद भी रही। हिन्दी में एक और आत्मकथा की बहुत चर्चा होती है– गाँधी जी की 'सत्य के प्रयोग'। यह आत्मकथा मूल रूप से हिन्दी में नहीं लिखी गयी परन्तु हिन्दी में यह सर्वाधिक चर्चित आत्मकथाओं में गिनी जाती है।

बावजूद कुछ अच्छी आत्मकथाओं के हिन्दी में अधिकतर आत्मकथा विधा उपेक्षित ही रही है। वह तो पिछले डेढ़ दशक में अस्मिता विमर्शों के उभार ने इसमें नई जान फूंकी है। पिछले दिनों आईं दलित और स्त्री आत्मकथाओं ने साहित्य जगत में काफी हलचल मचाई है। अपने जीवन अनुभवों की प्रमाणिक अभिव्यक्ति के लिये दलितों और स्त्रियों ने आत्मकथा विधा का सहारा लिया। बहुत हद तक वे अपनी इस कोशिश में सफल भी हुए हैं। इन आत्मकथाओं ने आत्मकथा लेखन को एक नई दिशा दी। साथ ही परंपरागत आत्मकथा की संस्कृति से हटकर एक नयी संस्कृति का सृजन भी किया। परंपरागत आत्मकथाओं में 'आत्मबद्धता' और 'मैं' तत्व पर अधिक जोर दिया जाता रहा है। इसके विपरीत दलित और स्त्री आत्मकथाओं में यह दोनों तत्व बहुत हद तक नहीं दिखाई देते हैं। इसी तथ्य को समझाते हुए मैनेजर पांडे कहते हैं "गांधी की आत्मकथा का नाम है 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग', राहुल जी की आत्मकथा है 'मेरी जीवन यात्रा', सहजानंद सरस्वती की आत्मकथा है 'मेरा जीवन संघर्ष' और राजेन्द्र यादव की आत्मकथा का नाम है 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ'.......(मैं)।––––कुछ दलित और स्त्री आत्मकथाओं के शीर्षक को देखिये– 'अपने अपने पिंजरे' (मोहनदास नैमिशराय), 'तिरस्कृत' (सूरज पाल चौहान), और 'कस्तूरी कुंडल बसै' (मैत्रेयी पुष्पा)। दलितों की आत्मकथाओं में केवल आत्म की कथा नहीं होती, बल्कि उससे अधिक अपने समुदाय के शोषण, दमन, यातना और जीवन संघर्ष की कथा होती हैं।"[vii]

पंपरागत आत्मकथाओं से इतर दलित और स्त्री आत्मकथाओं में प्रतिरोध और आक्रोश की भी सशक्त अभिव्यक्ति दर्ज हुई है। साथ ही इन आत्मकथाओं ने आत्मकथा विधा को व्यक्तिवाद से भी मुक्ति दिलाई। अस्मिता–विमर्श से जुड़ी आत्मकथाओं में सामाजिकता अधिक रूप से मुखरित हुई है। "दलितों और स्त्रियों की आत्मकथाएँ अपने समुदाय की कथाएं भी हैं।"[viii]

संदर्भ :

i) मैनेजर पांडे, 'सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे' 'हंस' जुलाई २००४, संपादक राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या–३१

ii) डॉ. कमलापति उपाध्याय, 'हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन' – साहित्य रत्नालय, गिलिस बाजार कानपुर, प्रथम संस्करण १६६२, पृष्ठ संख्या–०१

iii) डॉ. कमलापति उपाध्याय, 'हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन' प्रकाशक– साहित्य रत्नालय,

गिलिस बाजार कानपुर, प्रथम संस्करण १९९२, पृष्ठ संख्या–०२

iv) पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, वाणी प्रकाशन– नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००३, भूमिका से

v) वही, भूमिका से।

vi) वही. पृष्ठ संख्या–५२

vii) मैनेजर पांडे, सावर्जनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे' लेख से राजेन्द्र यादव का कथन, हंस अक्टूबर २००४ पृष्ठ संख्या–३४

viii) वही।

सन्दर्भ-ग्रन्थ :

1. स्त्री उपेक्षिता सीमोन द बोउवार / प्रस्तुति डॉ. प्रभा खेतान।
2. श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा, संस्करण–2004
3. प्रभा खेतान 'हंस की नारीवादी उड़ान' हंस मार्च २००४
4. अनामिका 'स्त्रीत्व का मानचित्र' सारांश प्रकाशन, दिल्ली संस्करण २०००
5. अनामिका 'पानी जो पत्थर पीता है' वाणी प्रकाशन– नई दिल्ली।
6. अभय कुमार दुबे (संपादक) आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण–२००२
7. अरविन्द जैन 'औरत अस्तित्व और अस्मिता' सारांश प्रकाशन प्राइवेट लि. दिल्ली संस्करण १९९९
8. अर्चना वर्मा, 'अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर' मेधा बुक्स, नवीन शादहरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण २००८
9. आशारानी व्होरा 'नारी विद्रोह के भारतीय मंच' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली संस्करण १९९१
10. उमा शुक्ल 'भारतीय नारी रू अस्मिता की पहचान, लोकभारती प्रकाशन संस्करण–१९९४
11. ऊषा कीर्ति रणावत, 'प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००७
12. कमलापति उपाध्याय – 'हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन'– साहित्य रत्नालय, गिलिस बाजार, कानपुर, प्रथम संस्करण १९९२।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 171-175
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

जैन आगमों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन लेश्याओं के विशेष संदर्भ में

जीतू, शोधच्छात्रा
जामिया मिल्लिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110025

सारांश :

जैन दर्शन भारतीय दार्शनिक परंपरा में अत्यधिक महत्त्व रखता है। इसकी मूल शिक्षाएँ जैन आगमों में है इन जैन आगमों की रचना प्राकृत भाषा में है, क्योंकि प्राकृत भाषा उस समय जन भाषा थी, सभी जन इस भाषा में सुरक्षित मूल शिक्षाओं को सरलता से प्राप्त कर सकते थे। भगवान महावीर के उपदेश भी इसी प्राकृत भाषा में संरक्षित है ताकि प्रत्येक वर्ग से संबंधित व्यक्ति सहजता से इनको समझ सके। ये मानसिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक एवं दार्शनिक आदि स्तरों पर मुख्य है। आत्मा शुद्ध है परन्तु समय के अनुसार कर्मों में आसक्ति एवं संसर्ग के कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन देखे जाते है। जिसमें लेश्याओं का विशेष स्थान है यह आत्मिक पतन एवं उन्नति दोनों से संबंधित है। आधुनिक संदर्भ में भी इसकी प्रासंगिकता देखी जा सकती है।

कूट शब्द : लेश्या, कषाय, दर्शन, मनोविज्ञान, कर्म–बंध, चेतना, प्रेक्षा ध्यान।

भूमिका :

जैन आगम :

प्राकृत भाषा के माध्यम से जैन दर्शन व्यवहारिक, कल्याणकारी एवं अनुभवजन्य है। इसका उद्देश्य आत्म–शुद्धि एवं नैतिकता आदि है। प्राकृत भाषा केवल भाषा न होकर तात्विक चिंतन का माध्यम बन गई है। जिसमें लेश्या विशेष महत्व रखती है। लेश्याओं का कर्म–बंधन तथा मोक्ष मार्ग में इनकी भूमिका भी स्पष्टता से देखी जा सकती है। लेश्या आत्मा का स्थायी गुण नहीं अपितु मन, वचन, एवं काय के द्वारा मिश्रण से उत्पन्न अस्थायी गुण है यह आत्मा के सूक्ष्म परिणामों को स्थूल कर्मों से जोड़ती है, यह लेश्याओं का वह संबंध है जो आत्मा के भाव और कर्म के पुद्‌गलों के बीच सेतु का कार्य करती है। यह न केवल आध्यात्मिक अवधारणा है अपितु मानव मनोविज्ञान अर्थात (human psychology) एवं व्यवहारवाद (Behaviourism) का स्वरूप है।

लेश्या :

लेश्या का सिद्धांत जिसमें छः लेश्याएं – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्‌म और शुक्ल है।

कृष्णादि द्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्या शब्द प्रयुज्यते।। [1]

जिस प्रकार स्फटिक मणि के पास नीला, काला आदि रंग रखने पर वह मणि उसी प्रकार का दिखता है उसी प्रकार कषायों के योग से जो आत्मा के परिणाम है उसे लेश्या कहा गया है।

सा षड्विधा – कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या चेति। [2]

लेश्या की प्रकृति :

इनमें से तीन शुभ – कृष्ण, नील, कपोत व तीन अशुभ – पीत, पद्म, शुक्ल होती हैं। राग व कषाय से मुक्त जीवों को लेश्या नहीं होती। शरीर के रंग को द्रव्य लेश्या कहते हैं। द्रव्य लेश्या आयु पर्यंत समान रहती है परंतु भाव लेश्या जीवों के परिणामों के अनुसार परिवर्तनशील रहती है। लेश्या अर्थात् आभा या कान्ति। जिन परिणामों के द्वारा आत्मा कर्मों के साथ चिपकता है वह लेश्या है।[3]

लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति।[4]

कृष्ण लेश्या – दुराग्रह, उपदेशावमानन, तीव्र वैर, अतिक्रोध, दुर्मुख, निर्दयता, क्लेश, ताप, हिंसा, असंतोष आदि परम तामसभाव कृष्णलेश्या के लक्षण हैं।[5] इसको मनोविज्ञान की शैली में Antisocial personality कहा जाता है।

नील लेश्या – आलस्य, मूर्खता, कार्यानिष्ठा, भीरुता, अतिविषयाभिलाषा, अतिगृद्धि, माया, तृष्णा, अतिमान, वंचना, अनृत भाषण, चपलता, अतिलोभ आदि भाव नीललेश्या के लक्षण हैं।[6] इसको Passive-Aggressive Behaviour कहा जाता है।

कपोत लेश्या – मात्सर्य, पैशुन्य, परपरिभव, आत्मा प्रशंसा परपरिवाद, जीवन नैराश्य, प्रशंसक को धन देना, युद्ध मरणोद्यम आदि कापोत लेश्या के लक्षण हैं।[7] जिसे Depressive / Critical Mentality कहा जाता है।

पीत लेश्या – दृढ़ता, मित्रता, दयालुता, सत्यवादिता, दानशीलत्व, स्वकार्य–पटुता, सर्वधर्म समदर्शित्व आदि तेजोलेश्या के लक्षण हैं।[8] वैज्ञानिक भाषा मै इसको संतुलित (Balanced) कहा गया।

पद्म लेश्या – सत्यवाक्, क्षमा, सात्विकदान, पांडित्य, गुरु–देवता पूजन में रुचि आदि पद्म लेश्या के लक्षण हैं।[9] यह High Emotional Intelligence मनोवैज्ञानिक लक्षण के रूप में है।

शुक्ल लेश्या – निर्वैर, वीतरागता, शत्रु के भी दोषों पर दृष्टि न देना, निंदा न करना, पाप कार्यों से उदासीनता, श्रेयोमार्ग रुचि आदि शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।[10] यह मनोविज्ञान की भाषा में self & Actualization अर्थात् उच्चतम मानसिक संतुलन की श्रेणी में आता है।

इन्द्रियां अपने विषयों में आसक्त रहती है परंतु मन सभी इन्द्रियों के साथ मिलकर कार्य करता है, सर्वार्थग्राहक है। जैन आगमों में मन दो प्रकार का कहा गया है, **मनः द्विविधः द्रव्यमनः भावमनः च।**[11] मनोवर्गणा के पुद्गलों से द्रव्यमन तथा आत्मतत्त्व के चिंतन–मनन से भावमन। मन से संबंधित विज्ञान मनोविज्ञान जो लेश्या के संदर्भ में विशेष है जिसमें लेश्या विभिन्न पक्षों में मानसिक स्तरों के भावों को संदर्भित करती है।

लेश्या और कर्म–बंध :

जैन दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा में अत्यधिक महत्त्व रखता है। इसकी मूल शिक्षाएँ जैन आगमों में है, इन जैन आगमों की रचना प्राकृत भाषा में है, क्योंकि प्राकृत भाषा जन भाषा थी, ताकि प्रत्येक वर्ग से संबंधित मनुष्य सहजता से इनमे उपलब्ध विषय को समझ सके। प्रचुर मात्रा में लिखित सामग्री प्राकृत में उपलब्ध है। सभी इस भाषा में सुरक्षित मूल शिक्षाओं को सरलता से प्राप्त कर सकते थे।

ये मानसिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक एवं दार्शनिक आदि स्तरों पर मुख्य है। आत्मा शुद्ध है परन्तु समय के अनुसार कर्मों में आसक्ति एवं संसर्ग के कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन देखे जाते है। यह आत्मिक पतन एवं उन्नति दोनों से संबंधित है। आधुनिक संदर्भ में भी इसकी प्रासंगिकता देखी जा सकती है।

लेश्या के प्रत्येक पक्ष अथवा भाव को समझकर मनुष्य अपने मन के विचारों को पवित्र कर सकता है। शुभ एवं अशुभ लेश्या के ज्ञान द्वारा जीव में विभिन्न प्रकार के बदलावों को समझते हुए, उपयुक्त–अनुपयुक्त, शुभ–अशुभ लेश्या के भेद से उन्हें जानकर पूर्ण अशुभ पर नियंत्रण एवं शुभ को विस्तारित कर सकता है, अर्थात् मनुष्य अशुभ से शुभ और शुभ से और उच्च स्तर प्राप्त कर सकता है और इससे भावों में स्थिरता ला सकता है।

जब लेश्याओं की बात की जाती है तो लेश्या होती ही क्यों है? यह प्रश्न आता है अर्थात् यह भाव या उससे प्रयुक्त आत्मा के वर्ण का बदलना क्या है, यह आत्मतत्त्व के विषयों में पड़ता ही क्यों है? इसका कारण मनोवृत्तियां है। जैन दर्शन में इसे 'कषाय' कहा गया है। लेश्या और कषाय दोनों ही आत्मा के मुख्य स्वरूप को अभिभव करते हैं कषायों का मन के विज्ञान पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। कषाय चार कहे गए हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ।[12] क्योंकि क्रोध के कारण ही जीव अपने विवेक ज्ञान और तर्कशक्ति नष्ट कर लेता है। क्रोध मानसिक संवेग है जिससे व्यवहारिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, यही क्रोध जब तीव्र अवस्था को प्राप्त करता है तो इसके मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रभाव परिलक्षित होते हैं जैन आगम में भी क्रोध के 10 रूप बताए गए हैं, क्रोध, कोप, रोष, दोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चाण्डिक्य, भण्डन एवं विवाद।[13]

मान कषाय जिसे 12 प्रकार का जैन आगम में कहा गया है– मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व, अत्युत्क्रोध, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नत नाम एवं दुर्नाम।[14] मान के कारण मनुष्य में स्व का भाव अधिक परिलक्षित रहता है।

माया जिसकी १५ अवस्था कही गई है– माया, उपाधि, निकृति, वलय, गहन, नूम, कल्क, कुरूप, जिहमता, किल्विषिक, आदरबता, गूहनता, वंचकता, प्रतिकुंचनता तथा सातियोग।[15]

लोभ अर्थात् तृष्णा। इसकी १६ अवस्था कही गई है– लोभ, इच्छा, मूर्छा, कांक्षा, गृद्धि, तेष्णा, मिथ्या, अभिध्या, आशंसना, प्रार्थना, लालपनता, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, एवं नन्दिराग।[16]

इन वृत्तियों के पुनः चार– चार भेद हो जाते है– अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी, संज्वलन।[17]

जह कण्डं सुयक्खायं, एवं लेसाहिं अप्पयं।
कण्डं च मुणिवयणेणं, लेसं च अत्तसुद्दिए।।[18]

इस गाथा के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि आत्मा लेश्या के माध्यम से ही कर्मों को ग्रहण करती है।

लेश्याओं का नैतिक, मानसिक एवं भावात्मक पक्ष :

कषायों के योग से आत्मा की उत्कृष्ट–निकृष्ट मनोवृत्तियाँ लेश्या कही जाती है। इन वृतियों में लीन रहने से मानव इस जीवन चक्र में फसा रहता है। सुख–दुख आदि का अनुभव करता है एवं इससे परिलक्षित होने वाले कार्यों में आसक्त रहता है। काषायिक वृत्तियाँ मानवीय गुणों को नष्ट करने के लिए सदा प्रवृत्त रहती है।[19] जैन आगमों में मन की चेतन, अवचेतन एवं अचेतन तीनों अवस्थाओं को बताते हुए, मनुष्य के मन के अन्तर्द्वन्द्व

आदि का क्षय करना, एकाग्रता स्थापित करना एवं अनैतिक भावनाओं को क्षीण करना शामिल है।

चेतना पर भी लेश्या का प्रभाव पड़ता है चेतना जिस लेश्या के प्रभाव में प्रवर्तमान रहती है वह भावान्तर में भी उसी लेश्या में विद्यमान रहती है। कृष्ण लेश्या के स्वभाव से नील लेश्या के द्रव्यों के संसर्ग में आने से वह नील लेश्या के स्वभाव वाली हो जाती है। इस प्रकार चेतना कृष्ण लेश्या से नील लेश्या, नील लेश्या से कपोत लेश्या, कपोत लेश्या से पीत लेश्या, पीत लेश्या से पद्म लेश्या, पद्म लेश्या से शुक्ल लेश्या में परिणत हो जाती है। लेश्याओं के उपचार के रूप में 'प्रेक्षा ध्यान' को महवतपूर्ण उपचार माना जाता है। जिसमें कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वासप्रेक्षा आदि है। इनमे रंग चिकित्सा (colour meditation) भी प्रभावी ढंग से कार्य करती है जैसे शुक्ल लेश्या में सफेद रंग, तेजो लेश्या में उगते सूरज का लाल रंग, नील लेश्या में मोर के कण्ठ के समान नीले रंग का ध्यान उपचार के रूप में काम करता है एवं ध्यान के द्वारा अवचेतन मन (Subconscious Mind) की उत्कण्ठाओं को शान्त करता है। शुक्ल लेश्या के ध्यान से Stress Hormone कम होते है और Happy Hormone बढ़ता है। ध्यान के माध्यम से लेश्या शुद्ध होती जाती है जिससे आभामण्डल (Aura) में विस्तार होता है। Kirlian Photography By Semyon Kirlian वैज्ञानिकता को प्रमाणित करती है इसके अनुसार मनुष्य के शरीर के चारों तरफ (Electromagnetic Field) विद्युत–चुंबकीय क्षेत्र होता है जब विचार नकारात्मक होते हैं तो आभामंडल (Aura) का रंग गहरा एवं धुंधला (मटमैला) प्रकार का हो जाता है यह अशुभ लेश्या का प्रभाव है, एवं जब विचार सकारात्मक होते हैं तो आभामंडल का रंग उजला और चमकदार होता है जो शुभ लेश्या के प्रभाव को दर्शाता है।

लेश्याओं का मनोवैज्ञानिक पक्ष :

मनोविज्ञान मन और व्यवहार से संबंधित है, इसे आत्मा का विज्ञान माना जाता है। जैन दर्शन के मनोविज्ञान में मन, लेश्या और कषायों का महत्वपूर्ण स्थान है, मनुष्य के मन की क्रियाएँ 'मनोवृत्तियाँ' कही जाती है। इन मनोवृत्तियों के तीन रूप ज्ञान, वेदना और क्रिया है। जब जीव को किसी प्रकार का कुछ ज्ञान होता है तो उससे उसके भाव स्थिर होने लगते है एवं इन तीनों मनोवृत्तियों के स्थिर एवं विकास से अन्तर्मन और दृढ़शक्ति स्थिर होती है, और आत्मा तो अनन्तज्ञान और दर्शनमय है।[20] परंतु जीव की इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति होने के कारण ही वह सुख और दुख का अनुभव करता है, जो इन्द्रियों के अनुकूल वह सुखद और जो इन्द्रियों के प्रतिकूल वह दुःखद लगता है।[21] और जीव की इन विषयों को पुनः पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा ही 'इच्छा' है।[22] मनोविज्ञान के अनुसार मनोविश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा कषायों से लिप्त लेश्याओं के युक्त चित्त के संवेगों और वासनाओं को एवं उनसे उत्पन्न तनाव को ज्ञान के द्वारा दूर करना है। लेश्या स्थाई नहीं होती, आधुनिक मनोविज्ञान में इसे Cognitive Behavioural Therapy के रूप में समझ जा सकता है। क्योंकि इसके अन्तर्गत विचारों को बदलकर व्यवहार को बदल जाता है। वर्तमान जीवन में बढ़ते तनाव अवसाद आदि को कम करने के लिए लेश्या का उपचार आवश्यक है लेश्या–ध्यान (colour meditation) मनो–चिकित्सा के रूप में कार्य करती है। ध्यान के माध्यम से ही लेश्या के नकारात्मक स्वरूप को सकारात्मक स्वरूप में बदला जा सकता है। प्रेक्षा ध्यान और लेश्या चिंतन के माध्यम से मानसिक तनाव एवं मानसिक विकारों का उपचार संभव है।

निष्कर्ष :

लेश्या सिद्धांत जैन धर्म में मनो–विकास में छः रंगात्मक अवस्थाओं का वर्णन करता है, जो व्यक्ति के विचार, भावना तथा नैतिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। लेश्या सिद्धांत मनोवैज्ञानिक स्थितियों को रंगों के माध्यम

से स्पष्ट करता है, जिससे व्यक्ति के लिए नैतिक सुधार एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिये स्पष्ट मार्ग परिलक्षित होता है। कषायों के क्षीण होने पर मनुष्य शुद्ध लेश्या की ओर जाता है। यह मानसिक स्वास्थ्य को एक उत्तम दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :

[1] आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती, गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४८८-४८९

[2] (*सर्वार्थसिद्धि/2/6/159/12)*

[3] आ. श्री. देवेन्द्राचार्य - देवेन्द्राचार्य कर्म विश्व-कोश, पृ.सं२६४

[4] (*सर्वार्थसिद्धि/2/6/159/10)*

[5] **अनुनयानभ्युपगमोपदेशाग्रहणवैरामोचनातिचंडत्व -दुर्मुखत्व - निरनुकंपता-क्लेशन-मारणा-परितोषणादि कृष्णलेश्या लक्षणम्।** *(राजवार्तिक/4/22/10/239/25)*

[6] **आलस्य-विज्ञानहानि-कार्यानिष्ठापनभीरूता- विषयातिगृद्धि-माया-तृष्णातिमानवंचनानृतभाषण-चापलातिलुब्धत्वादि नीललेश्यालक्षणम्। *(राजवार्तिक/4/22/11/239/26)***

[7] **मात्सर्य - पैशुन्य- परपरिभवात्मप्रशंसापरपरिवादवृद्धिहान्यगणनात्मीय जो वितनिराशता प्रशस्यमानधनदान युद्धनरगौद्ययादि कापोत लेश्यालक्षणम्।** *(राजवार्तिक/4/22/10/239/28)*

[8] **दृढमित्रता सानुक्रोशत्व-सत्यवाद दानशीलात्मीयकार्यसंपादनपटुविज्ञानयोग- सर्वधर्मसमदर्शनादि तेजोलेश्या लक्षणम्। *(राजवार्तिक/4/22/10/239/29)***

[9] **सत्यवाक्यक्षमोपेत-पंडित-सत्त्विकदानविशारद-चतुरर्जुगुरुदेवतापूजाकरणनिरतत्वादिपद्मलेश्यालक्षणम्। *(राजवार्तिक/4/22/10/239/31)***

[10] **वैररागमोहविरह-रिपुदोषग्रहणनिदानवर्जनसार्व-सावद्यकार्यारंभौदासीन्य -श्रेयोमार्गानुष्ठानादि शुक्ललेश्यालक्षणम्।** *(राजवार्तिक 4/22/10/239/33)*

[11] सर्वार्थसिद्धि, २/११/१७०/३

[12] **कषायश्चतुर्भेद:, क्रोधो मानो माया लोभ इति**।ग्रन्थ:सर्वार्थसिद्धि - अधिकार 2 - सूत्र 6

[13] भगवती सूत्र, शतक १२, उ० ५. पाठ.२

[14] भगवती सूत्र, शतक १२, उ० ५. पाठ.३

[15] भगवती सूत्र, शतक १२, उ० ५. पाठ.४

[16] भगवती सूत्र, शतक १२, उ० ५. पाठ.५

[17] धवला, ६/१, ९

[18] उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय ४

[19] दशवैकालिक सूत्र, अध्याय ८, गाथाङ्क ३८-३९

[20] **जो आया से विन्नाया .... पडिसंखाए** । आचाराङ्ग सूत्र, १/५/५/१

[21] **सव्वे सुहसाहा दुक्ख पडिकूला** ।, आचाराङ्ग सूत्र, १/२/३

[22] **इन्द्रिय मनोनुकूलायाम्प्रवृत्तो, लाभस्यार्थस्याभिल्याषातिरेके**।, राजेन्द्र अभिधान, खण्ड २, पृष्ठ ५७५

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 176-180

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Colonial Influence on the Architectural Transformation of Bharatpur during the British Era

Pintu Ram Bairwa

Department of History and Indian Culture, University of Rajasthan.

Abstract :

The intricate interplay between indigenous customs and colonial modernity is reflected in the architectural landscape of colonial India's princely states. An important but little-known example of such change is Bharatpur, a well-known Jat-ruled princely state in eastern Rajasthan. This essay explores Bharatpur's architectural development during the British era, emphasizing the ways in which architectural forms, materials, and spatial organization were impacted by colonial political dominance, military encounters, administrative reforms, and cultural exchanges. This study places Bharatpur within larger patterns of Indo-colonial architectural hybridity by examining forts, palaces, gardens, and public buildings, with a focus on Lohagarh Fort, Deeg Palace, and related palace complexes. Using gazetteers, archival records, Archaeological Survey reports, and regional histories, the paper argues that colonial influence did not replace indigenous architecture but reoriented it toward hybrid expressions combining Rajput, Mughal, and European elements. The study highlights architecture as a medium of negotiation, power display, and cultural adaptation in a semi-autonomous princely context.

Keywords : *Bharatpur, Colonial Architecture, Princely States, Indo-Saracenic, Rajput Architecture, British India, Architectural Hybridity, Lohagarh Fort, Deeg Palace, Colonial Modernity.*

Introduction :

Architecture in colonial India was more than a utilitarian or aesthetic enterprise; it was deeply embedded in political authority, cultural identity, and symbolic power. While metropolitan centres such as Calcutta, Bombay, and Madras have received considerable scholarly attention, architectural transformations within princely states remain comparatively underexplored. Bharatpur presents a particularly compelling case because of its unique political trajectory and resilient identity.

Founded in the early eighteenth century under the Jat ruler Maharaja Suraj Mal, Bharatpur emerged as a formidable regional power. Its strategic location between the Mughal, Rajput, and later

British spheres of influence shaped its political and architectural development. The British East India Company's encounters with Bharatpur—most notably the sieges of the early nineteenth century—marked a turning point in the state's diplomatic and architectural orientation.

This study explores how colonial influence altered architectural practices in Bharatpur. It investigates whether these changes were imposed, adopted or negotiated. Rather than viewing colonial architecture as a unidirectional process of Westernisation, this study interprets it as a multidirectional exchange in which local elites selectively integrated foreign elements to reinforce legitimacy and modernity.

Negotiated Architectural Transformation under Princely Autonomy :

The architectural transformation of Bharatpur during the British era must be understood as a gradual and negotiated process, shaped by political realignments, technological exposure, and cultural diplomacy. Unlike presidency towns, where colonial architecture often manifested as an assertion of imperial dominance, Bharatpur's built environment evolved within the framework of princely autonomy. This autonomy allowed local rulers to selectively incorporate foreign elements while preserving architectural traditions that symbolised their regional authority. The resulting landscape was neither wholly indigenous nor entirely colonial but a layered synthesis reflecting changing power relations.

Military Encounters and the Reconfiguration of Defensive Architecture :

Military architecture was one of the earliest arenas of transformation. The Anglo-Bharatpur conflicts, especially the siege of 1825–26, revealed the effectiveness of indigenous strategies. Lohagarh Fort's earthen ramparts absorbed artillery fire in ways that confounded British expectations, which were shaped by European masonry fortifications. However, the experience of confrontation introduced Bharatpur's rulers to new military technologies and engineering principles. Subsequent repairs and modifications to the fortifications displayed an awareness of European siege warfare, including selective masonry reinforcement and structural adjustments to the bastions. These changes did not replace traditional designs but complemented them, demonstrating pragmatic adaptation rather than capitulating to foreign models.

Palace Architecture and the Performance of Elite Modernity :

Palace architecture provides an even clearer lens through which to view the colonial influence. Royal patronage in the nineteenth century increasingly engaged with modernity ideas circulating through colonial networks. European architectural features—colonnaded verandas, symmetrical façades, and stucco detailing—began to appear in palace complexes. These elements conveyed cosmopolitanism and political alignment without displacing local forms, such as chhatris, jharokhas, and ornamental brackets. The hybridisation was intentional: rulers sought to project an image of

enlightened governance to colonial authorities while reassuring local elites of the cultural continuity. Thus, architecture functioned as a diplomatic language that balanced external expectations and internal legitimacy.

Public and Administrative Architecture under Indirect Colonial Governance :

Public and administrative buildings also reflect the new political order. The growth of bureaucratic governance under indirect colonial rule required space for courts, record offices, and educational institutions. Such buildings often followed standardised colonial layouts, emphasising symmetry, ventilation, and functional zoning. Rectangular plans and axial organisation contrast with the organic growth patterns of earlier urban structures. However, local materials and decorative motifs frequently softened the imported spatial logics. The coexistence of colonial planning principles with regional craftsmanship illustrates how architectural modernity was filtered through local practices.

Material and Technological Transformations in Construction Practices :

Material and technological shifts have further accelerated this transformation. Expanding colonial trade networks introduced iron beams, lime concrete, glass panes, and imported tiles into Bharatpur's construction repertoire. These materials enable larger spans, brighter interiors, and new decorative possibilities. However, their adoption was neither immediate nor uniform. Traditional building techniques persisted, especially in religious and residential contexts, where artisans prioritised climate responsiveness and cultural symbols. The gradual integration of new materials reflects an adaptive process shaped by cost, availability, and social acceptance, rather than a simple imitation of European models.

Deeg Palace : A Case Study in Aesthetic and Diplomatic Hybridity :

The Deeg Palace exemplifies the aesthetic and symbolic dimensions of this hybridity. Originally conceived as a pleasure retreat inspired by Mughal garden-palace traditions, Deeg's Charbagh layout and elaborate waterworks express continuity with Indo-Islamic aesthetics. However, during the colonial period, the palace acquired new layers of meaning. The interiors incorporated European furnishings, and the spaces were adapted to host colonial officials and dignitaries. Gardens that once symbolised royal leisure became sites of diplomatic performances. Colonial travel accounts and preservation efforts influenced the curation and representation of the palace, embedding it within the imperial circuits of heritage and spectacle. Deeg thus illustrates how architecture could be recontextualized without being fundamentally redesigned.

Urban Palace Complexes and Neo-Classical Adaptations :

Urban palace complexes in Bharatpur City further demonstrate the selective adoption of colonial aesthetics. Buildings such as the Moti Mahal and Kothi Khas reveal an emerging preference

for façade symmetry, columned porticoes, and restrained ornamentation associated with neoclassical taste. However, these features coexisted with indigenous spatial hierarchies and ceremonial uses. The architectural vocabulary signalled participation in a broader imperial culture of modernity, but it did not erase local identity. Instead, it communicated the ruler's ability to navigate multiple worlds—a crucial skill in princal India's political landscape.

Architecture as a Medium of Political Expression :

Architecture in Bharatpur also functions as a political expression. In a context where sovereignty was circumscribed but not extinguished, built forms conveyed messages of loyalty, progress, and legitimacy in the following ways. Hybrid styles allowed rulers to align themselves symbolically with the British Crown while maintaining visual continuity with regional traditions. This dual messaging was essential for sustaining authority among subjects and negotiating status within imperial hierarchies. Buildings have become instruments of soft power, articulating a narrative of cooperation without surrender.

Artisanal Agency and the Production of Hybrid Forms :

Therefore, cultural hybridity in Bharatpur's architecture was not a passive outcome but an active process. Local craftsmen played a significant role in translating foreign motifs into regionally comprehensible forms. Their agency challenges narratives that depict colonial influence as purely top-down narratives. Instead, the built environment emerged from interactions between patrons, artisans, engineers, and political intermediaries. The resulting aesthetic language is layered, adaptive, and context-sensitive.

Comparative Perspectives: Bharatpur among Princely States :

A comparative perspective reinforces the distinctiveness of Bharatpur. While states such as Jaipur embraced grand Indo-Saracenic experimentation and Udaipur emphasised romantic revivalism, Bharatpur's architectural evolution was comparatively restrained. This difference may be linked to the Jat political culture, which historically valued pragmatism and military resilience over courtly display. Architectural choices reflected these priorities, favouring functional adaptation and symbolic nuance over monumental reinvention.

Patterns of Negotiation and Selective Appropriation :

Overall, the evidence suggests that colonial influence in Bharatpur operated through channels of diplomacy, technology, and cultural prestige. Direct imposition was rare, and negotiation and selective appropriation were the norms. Thus, architectural transformation mirrored the political condition of the princely state: semi-autonomous, strategically aligned, and culturally self-aware.

Conclusion :

The architectural history of Bharatpur during the British era reveals a nuanced story of negotiation, adaptation, and identity. Rather than a tale of Westernisation or cultural loss, it is one of selective engagement with the colonial modernity. Bharatpur's rulers and craftsmen did not merely imitate European forms; they integrated them into existing traditions to serve political and symbolic purposes in Bharatpur. Architecture became a medium through which sovereignty was rearticulated under new conditions.

In conclusion, the architectural transformation of Bharatpur during the British era embodies the complexities of the colonial encounter. It reveals a world where power was negotiated, identities were curated, and buildings spoke the language of diplomacy as much as they did design. Bharatpur's architecture stands as a testament to adaptive resilience, a reminder that even under empire, local cultures shaped the forms of modernity they inhabited.

Bibliography :

- Archaeological Survey of India. (n.d.). *List of protected monuments in Rajasthan*. ASI.
- Brockman, H. E. D. (1905). *A gazetteer of eastern Rajputana: Bharatpur, Dholpur and Karauli*. Government Press.
- Britannica. (n.d.). *Bharatpur (former princely state, India)*. Encyclopaedia Britannica.
- Imperial Gazetteer of India. (1908). *The Imperial Gazetteer of India* (New ed., Vols. on Rajputana). Oxford: Clarendon Press.
- Sehgal, K. K. (1961). *Rajasthan district gazetteer: Bharatpur*. Jaipur: Government of Rajasthan.
- Tillotson, G. H. R. (1990). *Mughal India and its buildings*. Oxford University Press.
- Metcalf, T. R. (1989). *An imperial vision: Indian architecture and Britain's Raj*. University of California Press.
- Davies, P. (1985). *Splendours of the Raj: British architecture in India, 1660–1947*. Penguin.
- ASI. (various years). *Annual reports of the Archaeological Survey of India*. Government of India.
- Sharma, R. (2015). *History and archaeology of Bharatpur district* (Doctoral dissertation). University of Rajasthan.
- India Today. (2025). ASI discoveries in Deeg region. *India Today*.

Emai: bairwa199725@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 181-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

काशी का रेशमी वस्त्र एवं धर्म

डॉ. शिवाश्री सिन्हा
शिक्षिका, बिहार लोक सेवा आयोग, गया, बिहार।

सारांश –

काशी विश्व के सबसे प्राचीन जीवंत शहरों में से एक और हिंदू धर्म का आध्यात्मिक केंद्र, भक्ति और कारीगर शिल्प कौशल के अद्वितीय संगम से गुंजायमान है। यह शोध पत्र काशी के शानदार रेशमी वस्त्रों और शहरों के गहन धार्मिक परिदृश्य के बीच जटिल संबंध की पड़ताल करता है। रेशम बुनाई के ऐतिहासिक विकास, रूपांकनों और डिजाइनों के प्रतीकात्मक महत्व, इस शिल्प के चारों ओर बुने गए सामाजिक–आर्थिक ताने–बाने और समकालीन चुनौतियों और अनुकूलनों की जाँच करते हुए, स्पष्ट करता हैं कि काशी का रेशमद्योग केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं है, बल्कि शहर की सांस्कृतिक और धार्मिक पहलूओं का एक अभिन्न अंग भी है। जहाँ धार्मिक मान्यताओं को शास्त्रों के अनुकूल शुभ–अशुभ श्रेणी में रखने का विधान किया जाता है; तथा व्यवहारिक ज्ञान एवं विज्ञान का स्थान स्वतः ही गौण हो जाता है। अतः रेशमी वस्त्र देवताओं को सुशोभित करने, पवित्र स्थानों को अलंकृत करने और भक्तों को उनकी आध्यात्मिक यात्राओं पर साथ देने वाली विश्वास के मूर्त अभिव्यक्तियों के रूप में कार्य करते है, जिससे काशी की धार्मिक पहचान में उसकी अपरिहार्य भूमिका और अधिक मजबूत होती है।

मुख्य शब्द – काशी, रेशमी वस्त्र, हिंदू धर्म, धार्मिक महत्व, शिल्प कौशल, सांस्कृतिक विरासत, प्रतीकवाद।

प्रस्तावना –

काशी अर्थात वाराणसी/अविमुक्त आनंद कानन/महा मशान/रूद्रावास/काशिका/तपस्थली/ मुक्ति/भूमिक्षेत्र/मुक्तिभूमिपूरी/श्री शिवपुरी/त्रिपुरारी/राजनगरी अनगिनत नामों से सुशोभित हिंदू धर्म के लिए अद्वितीय स्थान रखता है। पवित्र गंगा नदी के तट पर स्थित, यह माना जाता है कि यह भगवान शिव का निवास स्थान और मोक्ष का द्वार है। तुलसीदास जी के शब्दों में –

मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि अध हानि कर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न।।

इसके अलावा भारतीय साहित्य में 'सप्तपुरियों' का वर्णन है, जिसमें काशी का विशेष स्थान है। इन साहित्यों में विशेषकर पुराणों में क्रमशः ब्रह्मपुराण (अध्याय 11), हरिवंश पुराण (अध्याय 29), वायुपुराण (अध्याय 30), शिवपुराण, अग्निपुराण आदि से काशी के ना सिर्फ धार्मिक वर्णन अपितु भौगोलिक एवं आर्थिक व्यवस्था का भी संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। काशी मानव जीवन में सिर्फ आध्यात्मिक प्रकाश ही नहीं बल्कि पुरूषार्थ के

सभी स्तंभों की ओर ले जाने के लिए अनादि काल से ही पथ–प्रदर्शक रही है। अतः यह धर्म के साथ अर्थ की दृष्टि से भी उतनी ही समृद्ध एवं आकर्षक रही है। इस जीवंत धार्मिक उत्साह के बीच, काशी की पहचान का एक महत्वपूर्ण पहलू फलता–फूलता रहा है; जो कि है – काशी के उत्कृष्ट रेशमी वस्त्र। रेशम के करघों की खड़खड़ाहट, सुनहरे धागों की चमक और बुनकरों की जटिल कला शहर के संवेदी और सांस्कृतिक अनुभव का एक अभिन्न अंग है। व्यवहारिक तौर पर वाराणसी में रेशमद्योग इसके धार्मिक ताने–बाने से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह केवल विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करने वाला व्यापार नहीं है, बल्कि धार्मिक अर्थ और उदेश्य से भरा हुआ शिल्प है। रेशमी वस्त्र अलंकरण से कहीं अधिक है; वे भक्ति के मूर्त अभिव्यक्ति है, देवताओं को अर्पित किए जाने वाले प्रसाद के रूप में, धार्मिक अनुष्ठानों के लिए वस्त्रों के रूप में और पवित्र शहर का एक टुकड़ा अपने साथ ले जाने के इच्छुक तीर्थयात्रियों के लिए बेशकीमती संपत्ति के रूप में कार्य करते है। काशी के रेशमी वस्त्रों के विकास में धार्मिक मान्यताओं, प्रथाओं, तथा प्रतीकवाद ने इसके उत्पादन और उपभोग को एक सघन आकार दिया है।

रेशम जिसे; कौशिक / कौशेय / कौशेव के नाम से भी जानते है। जो कि 'कोष' शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है– रेशम कीट का कोकून, जिसकी व्युत्पत्ति व्याकरणविद 'पाणिनी' के द्वारा की गई। रेशम विशेष प्रकार के कीड़ों से प्राप्त होने वाला एक मजबूत धागा है, जिससे वस्त्रों को बनाने एवं व्यापार का इतिहास मेसोपोटामिया, मिश्र तथा सिंधु घाटी सभ्यता के इतिहास से प्राप्त हो जाता है। जिसमें 'चीनान्शुक' शब्द का प्रयोग मिलता है जो इसका उत्पत्ति स्थान 'चीन' को दर्शाता है। जिसका वृहत एवं प्रमाणिक तौर पर बहुतायत व्यापार एवं उपभोग भारत में कुषाण वंश के काल में हुआ था। हालांकि भारतीय साहित्यों रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में कौशेय का वर्णन प्राप्त हो जाता है जो कही–न–कही भारतीय मूल में प्राचीन काल से ही अपनी उपस्थिति बताता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारतीय रेशम को 'जंगली रेशम' कहा है। काशी के परिपेक्ष्य में देखा जाए तो रेशमी वस्त्रों का उत्पादन एवं ब्रोकेड कार्य कब से आया इसका सटिक आकलन मुश्किल है, जो शोध का विषय है। हालॉकि, ऐतिहासिक साक्ष्य बताते है कि इस क्षेत्र में वस्त्र परंपराएँ कई सदियां पुरानी है। जहाँ निश्चित ही रेशमकीट पालन और रेशम बुनाई की प्रारंभिक शुरूआत प्रवसन के माध्यम से हुई होगी और काशी के सांस्कृतिक और धार्मिक वातावरण ने इसके लिए उपजाऊ भूमि प्रदान की। प्राचीन भारतीय साहित्यों जिसमें महाकाव्य और बौद्ध ग्रंथ शामिल है, में उत्तम वस्त्रों के संदर्भ परिष्कृत बुनाई प्रथाओं की प्रारंभिक उपस्थिति का संकेत देते है। शाही दरबारों और धार्मिक संस्थानों के संरक्षण ने संभवतः विशेष वस्त्र शिल्पों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। काशी, शिक्षा और धार्मिक गतिविधि के एक प्रमुख केंद्र के रूप में स्वाभाविक रूप से मंदिरों और धनी भक्तों की जरूरतों को पूरा करने वाले कुशल कारीगरों को आकर्षित करता है। काशी के समृद्ध अर्थ के विषय में विशेषकर 'रेशमी वस्त्रों' के संदर्भ में महाभाष्य में पतंजलि कहते है :–

न वै तत्रैति चेदब्रूयाज्जित्वरीदुपाचरेत्।
वणिजो वाराणसी जित्वरीत्युपाचरन्ति।।

अर्थात् व्यापारी लोग काशी को 'जित्वरी' नाम से पुकारते थे, जित्वरी का अर्थ है– जयनशीला अर्थात जहाँ पहुँचकर व्यापारियों की सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती है। काशी में रेशमी वस्त्र कलाओं का महत्वपूर्ण विकास मुगल काल में काफी हुआ। जिसमें जटिल डिजाइन और शानदार सामग्री प्रमुखता से उभरी। मुगल प्रभाव के

तहत काशी ने संभवतः नई तकनीकों और रूपांकनों को आत्मसात किया, जिससे इसकी बुनाई परंपराएँ और समृद्ध हुई। फारसी शैली के पैटर्न की शुरूआत और सोने और चांदी के धागों, जरी कार्य के समावेश ने शहर के रेशमी वस्त्रों में एक नया आयाम जोड़ा, उनकी सौंदर्य अपील और मूल्य, विशेष रूप से औपचारिक और धार्मिक उद्देश्यों के लिए बढ़ गया। औपनिवेशिक काल ने काशी के रेशमद्योग के लिए चुनौतियॉ और अवसर दोनों लाए। जिससे काशी के रेशम के अद्वितीय सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व ने भारत के भीतर इसकी मांग सुनिश्चित की।

धार्मिक रूपांकनों एवं प्रतीकवाद को समझना – बनारसी रेशम की सुंदरता न केवल इसकी शानदार बनावट और जटिल शिल्प कौशल में निहित है, बल्कि उन समृद्ध रूपांकनों और डिजाइनों के ताने–बाने में भी निहित है जो अक्सर गहरे धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखते है। बुनकरों की पीढ़ियों से चले आ रहे ये पैटर्न एक दृश्य भाषा के रूप में कार्य करते है, जो वस्त्र को काशी के लोकाचार से भी जोड़ते है। पुष्पीय और वानस्पतिक रूपांकन, पशु रूपांकन, ज्यामिति और अमूर्त डिजाइन, अन्य धार्मिक प्रतीकवाद इसे विश्व के किसी भी अन्य वस्त्रों से विशिष्ट बनाता है। बुनकर अक्सर पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक समझ का उपयोग करके ऐसे वस्त्र बनाते है जो पहनने वाले की धार्मिक भावनाओं और उन अवसरों के अनुरूप होते है, जिनके लिए वो अभिप्रेरित होते है। जो विशेषकर हमें वाराणसी के वस्त्रों – 'साड़ियों' में स्पष्ट दिखाई देता है, जिसके विभिन्न प्रकार सदियों से चली आा रही हिंदू परंपरा को उन पर उकेरती हुई नजर आती है।

अनुष्ठानों और समारोह में रेशम वस्त्र – वाराणसी में विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों और समारोहों में बनारसी रेशम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी शानदार बनावट, जीवंत रंग और शुभ रूपांकन इसे देवताओं को अर्पित करने और पवित्र प्रथाओं का एक अनिवार्य घटक बनाने के लिए एक आदर्श वस्तु बनाते है। मंदिरों में ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों के धार्मिक स्थलों में भी इस रेशमी वस्त्र का ही उपयोग किया जाता है। हिंदू मंदिरों में विभिन्न देवी–देवताओं के लिए अलग–अलग रंगों के रेशमी वस्त्र चढ़ाने का विधान है। जिससे उनकी दृश्य भव्यता और प्रतीकात्मक महत्व बढ़ जाता है। धार्मिक एवं व्यवहारिक रूप में देखा जाए तो तामसिक वस्तुएॅ, हिंसा से प्राप्त वस्तुएॅ धार्मिक दृष्टि से विशेषकर मंदिरों में वर्जित है; जैसे हम मांस का सेवन कर मंदिर में नही जाते, मांस को मंदिर में नहीं ले जा सकते है जो व्यवहारिक रूप से मान्य एवं शुद्धता की दृष्टि से सही भी लगता है। इसके बाबजूद देखे तो मंदिर में बजने वाला ढ़ोल चमड़े का बना होता है, शंख जो जलचर की हड्डी है उसका उपयोग मंदिरों में नकारात्मकता दूर करने के लिए किया जाता है, रेशम जो रेशम के कीड़ो के मारने के पश्चात् प्राप्त होता है फिर भी दिव्य वस्त्रों के रूप में देवी–देवताओं को बड़ी श्रद्धा के साथ अर्पित किया जाता है इसके पीछे का तर्क स्पष्ट नहीं हो पाता है। इस विषय पर हम जब शास्त्रों की ओर बढ़ते है तब सभी तर्क या तो उनमें निहित हो जाते है या फिर गौण हो जाते है। इस विषय पर भगवद्गीता 9+-10 के अनुसार भगवान कृष्ण कहते है; यह संसार विकारों से भरा हुआ है, लेकिन इसे ऐसे नहीं छोड़ा जा सकता है। तब शास्त्र की दृष्टि से गुण–दोषों का भेद किया जाना चाहिए। जब शास्त्र किसी चीज को गुण कहते है, तो उसे गुण कहते है, और जब दोष कहते है तो वो दोष समझा जाता है। कहने का तात्पर्य है जब व्यक्ति गुणातीत हो जाता है तो एक भाग स्वीकार्य हो जाता है और दूसरा अस्वीकार्य। इसी तरह शास्त्रों ने रेशमी वस्त्रों को शुद्ध कहा है।

रेशम की दिव्यता और प्रदूषण से लड़ने की क्षमता प्रयोगशालाओं में सिद्ध हो जाती है। और इसे हम प्रयोगों के परिणाम के माध्यम से 'शास्त्रों' के वचनों को सिद्ध भी कर सकते है। अतः शास्त्रों ने जिसे शुद्ध माना

है उसे शुद्ध मानना चाहिए। हालांकि हम बुद्धिजीवियों का कर्तव्य हैं कि अपने तरीके से तर्क ढूंढ़ते रहें ताकि शास्त्रों के निर्देशों के साथ तर्क जोड़ उस विश्वास को हर दृष्टि से मजबूत बनाया जा सकें। तर्क और विज्ञान की जिज्ञासा ने ही आज 'पीस सिल्क' को जन्म दिया है, जिसका बाजार विगत वर्षों में बढ़ता जा रहा है। व्यक्तिगत अलंकरण – काशी के तीर्थयात्री और निवासी अक्सर धार्मिक समारोहों और मंदिरों में दर्शन के दौरान रेशमी वस्त्र, विशेषकर साड़ियाँ और शॉल पहनते है। जो कि पवित्रता, शुभता और दिव्य के प्रति सम्मान से जुड़ा होता है। वहीं तीर्थयात्रियों के लिए बनारसी रेशम का एक टुकड़ा वापस घर ले जाना भी एक आम प्रथा ही है, जो उनकी आध्यात्मिक यात्रा और पवित्र शहर में प्राप्त आशीर्वादों की एक मूर्त याद दिलाता है। विवाह और शुभ अवसर जैसे विवाहों में रेशमी साड़ियॉ, सलवार सूट अपना ही धार्मिक और सामाजिक महत्व रखती है। दुल्हन को अक्सर एक समृद्ध बनारसी रेशमी साड़ी में सजाया जाता है, जो समृद्धि, शुभता, और परंपरा की निरंतरता का प्रतीक है। इन संदर्भों में रेशम का उपयोग मात्र सौंदर्यशास्त्र से परे है। यह धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं में गहराई से समाहित है, जो भक्त और दिव्य के बीच एक माध्यम के रूप में कार्य करता है। रेशम चढ़ाने अथवा पहनने का कार्य अक्सर आध्यात्मिक अर्थ से भरा होता है जो कि काशी के धार्मिक परिदृश्य में इस वस्त्र की भूमिका को पुष्ट करता है। हालांकि समृद्ध विरासत और स्थायी धार्मिक महत्व के बाबजूद, काशी रेशमद्योग को समकालीन दुनिया में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। वैश्वीकरण, पावर लूम और सिंथेटिक विकल्पों का उदय, और उपभोक्ताओं की बदलती प्राथमिकताएॅ पारंपरिक हथकरघा बुनाई के लिए महत्वपूर्ण खतरे पैदा करती है। इन सबके बाबजूद काशी रेशमद्योग ने उल्लेखनीय लचीलापन और अनुकूलनशीलता दिखाई है। सरकारी पहल, बुनकरों की सहकारी समतियॉ और गैर–सरकारी संगठन उचित व्यापार प्रथाओं को बढ़ावा देने, बुनकरों को वित्तीय सहायता प्रदान करने और हाथों से बुने हुए उत्पादों के मूल्यों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए काम कर रहे है। इसके अलावा घरेलू और अंतराष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ताओं के बीच हस्तनिर्मित और टिकाऊ उत्पादों की सराहना बढ़ी है। जिसमें ई–कॉमर्स प्लेटफार्म जैसी प्रौद्योगिकी का एकीकरण भी बुनकरों को बाजारों तक सीधी पहॅुच प्रदान कर रहा है। नवाचारों को अपनाकर और अपनी पारंपरिक जड़ों के प्रति सच्चे रहकर, बनारसी रेशमद्योग आधुनिक दुनिया की चुनौतियों का सामना कर सकता है और वाराणसी की सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान, एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में फलता–फूलता रह सकता है।

निष्कर्ष –

काशी के शानदार रेशमी वस्त्र आस्था और शिल्प कौशल के स्थायी संगम के प्रमाण के रूप में खड़े है। इस शहर की पवित्र पहचान का दृश्य, स्पर्शनीय प्रतिनिधित्व है, जो भक्ति, परंपरा और कलात्मकता के धागों को एक समृद्ध और जीवंत आवरण में बुनते है जो लगातार सभी को आकर्षित और प्रेरित करता है। रेशमी साड़ियॉ, कालीन, सूट आदि कपड़ो का बाजार जहाँ पारंपरिकता को बनाएॅ रखता है वहीं नित्य–प्रतिदिन होने वाले नवाचार लगातार इस उद्योग को एक अलग पहचान के साथ रोजगार के अवसर भी बना रहा है। पवित्र शहर में बनारसी रेशम की खड़खड़ाहट एक पवित्र ध्वनि बनी हुई है, जो आस्था की स्थायी शक्ति और मानव कला की सुंदरता का उच्चतर प्रमाण है। जहाँ शुभ–अशुभ, शुद्ध–अशुद्ध शास्त्रों के अनुकूल व्यवृहत होता है। जहाँ विज्ञान या तो इसमें निहित हो जाता है अथवा गौण, जो भारतीय शास्त्रीय विज्ञान के साथ उन धार्मिक आस्थाओं के प्रति विश्वास एवं निष्ठा को इन रेशमी धागों में लगातार पिरोता रहता है, जो कि सर्वविदित है।

संदर्भ सूची –

1. अग्रवाल, यशोधरा, 2004, सिल्क ब्रोकेड्स, नई दिल्ली; रोली बुक्स।
2. चक्रवर्ती, अंजन 2016, जदुनाथ सुपाकर और बनारस ब्रोकेडस में डिजाइन का पुनरूद्धार, मुबंई, मार्ग प्रकाशन।
3. हसन अली उर्फ कल्लू हाफिज; 2002, बनारस ब्रोकेडस के मास्टर नक्शबंद, चेन्नई।
4. किल रोजमेरी, 2005 , भारत से वस्त्र : वैश्विक व्यापार, कलकत्ता, सीगल बुक्स।
5. एक, डायना एल. 1982, बनारस : सिटी ऑफ लाइट, न्यूयार्क, नोपफ।
6. गुप्ता, अबीर, सुचित्रा बालासुब्रमण्यन और अनामिका पाठक 2016, अटूट डोर/अटूट धागा : घर और दुनिया में बनारय ब्रोकेड साड़ियॉ, नई दिल्ली।
7. सिंह, डी., 2021, उत्तर भारत में रेशम बुनकरों की आजीविका, वाराणसी : सामाजिक न्याय मंच।
8. श्रीवास्तव, ए., 2018, वाराणसी का बुनकर समाज : संस्कृति और संघर्ष, वाराणसी : समाज अध्ययन परिषद।
9. कश्यप, आर., 2018, वाराणयी के पारंपरिक रेशम उद्योग का वैश्वीकरण, दिल्ली : भारत हस्तशिल्प परिषद।
10. द्विवेदी, एस., 2021, रेशम और भारतीय संस्कृति, वाराणसी, सांस्कृतिक संवाद परिषद।
11. लामा, जी. के., 2022, बुद्धिज्म ऑन द सिल्क रोड, शारदा पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।
12. वार्ष्णेय, आशुतोष, Ethnic conflict and civic life : Hindus and Muslims in India (सामाजिक संरचना के संदर्भ में)
13. कुमार, नमिता, Banaras :The City of Light.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
February 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 186-192

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

महाराजा यशवंतराव होलकर छत्री : स्थापत्य वैभव एवं सांस्कृतिक विरासत का एक अनुशीलन

डॉ. उषा अग्रवाल
विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक, इतिहास विभाग, प्रधानमंत्री उत्कृष्ट महाविद्यालय, मंदसौर, म. प्र.।
सुधांशु पाण्डेय
शोधार्थी, इतिहास विभाग, सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन, म. प्र.।

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के भानपुरा में स्थित महाराजा यशवंतराव होलकर प्रथम (1776–1811 ई.) की छत्री (समाधि स्मारक) का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, स्थापत्य एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से एक बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 18वीं और 19वीं शताब्दी के संक्रमण काल में 'भारत का नेपोलियन' कहे जाने वाले महाराजा यशवंतराव की स्मृति में निर्मित यह भव्य संरचना 1812 से 1818 ई. के मध्य पूर्ण हुई। यह स्मारक न केवल होल्कर राजवंश की वीरता, कूटनीति और अंग्रेजों के विरुद्ध उनके अदम्य प्रतिरोध का जीवंत प्रतीक है, बल्कि यह मराठा, राजपूत, मुगल एवं क्षेत्रीय मालवा स्थापत्य शैलियों के अनूठे समन्वय (इंडो–इस्लामिक शैली) का उत्कृष्ट उदाहरण भी है। स्थानीय बलुआ पत्थर से निर्मित इस छत्री की विशिष्टता इसकी ऊँची प्राचीरें हैं, जो इसे एक दुर्ग–नुमा भव्य स्वरूप प्रदान करती हैं। शोध में प्राथमिक स्रोतों (क्षेत्रीय भ्रमण, प्रत्यक्ष अवलोकन) तथा द्वितीयक स्रोतों के आधार पर इसके शिल्प वैभव,नक्काशी, शिखर संरचना, स्तंभ कला और सैन्य अंकनों का विश्लेषण किया गया है। छत्री के गर्भगृह में महाराजा और उनकी रानियों की संगमरमर की मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिसमें महाराजा की मूर्ति की दाढ़ी में जड़ा हीरा तत्कालीन राजसी वैभव को दर्शाता है।

वर्तमान में यह परिसर राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित 'भानपुरा पुरातत्व संग्रहालय' के रूप में कार्यरत है, जहाँ गुप्त काल से परमार काल तक की दुर्लभ कलाकृतियों का संग्रह है। अतः, यह शोधपत्र स्पष्ट करता है कि इस ऐतिहासिक धरोहर का वैज्ञानिक संरक्षण और पर्यटन सर्किट (गांधी सागर व हिंगलाजगढ़) के साथ एकीकरण आधुनिक भारत की सांस्कृतिक अस्मिता और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए अनिवार्य है। यह स्मारक तत्कालीन भारत की उन्नत इंजीनियरिंग, सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य और मराठा शौर्य का एक मूक साक्षी है।

बीज शब्द : यशवंतराव होलकर प्रथम, भानपुरा छत्री, मराठा वास्तुकला, इंडो–इस्लामिक शैली, सांस्कृतिक विरासत, पुरातात्विक संरक्षण, होल्कर राजवंश, मालवा स्थापत्य।

प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास में 18वीं और 19वीं शताब्दी का कालखंड अत्यंत जटिल, संघर्षपूर्ण और युगांतरकारी परिवर्तनों का साक्षी रहा है। यह युग एक ओर मुगल साम्राज्य के पतन से उत्पन्न राजनीतिक रिक्तता का साक्षी था, तो दूसरी ओर यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों के विस्तार और उनके विरुद्ध स्वदेशी प्रतिरोध का स्वर्णिम काल भी था। इस राजनीतिक उथल—पुथल के मध्य जिन क्षेत्रीय शक्तियों ने भारतीय स्वाभिमान की मशाल को प्रज्वलित रखा, उनमें मराठा परिसंघ और विशेष रूप से मालवा अंचल का 'होल्कर राजवंश' अग्रणी रहा। मालवा, जो अपनी उर्वरता और रणनीतिक अवस्थिति के कारण सदैव सत्ता का केंद्र रहा, होल्करों के कुशल नेतृत्व में एक सुदृढ़ प्रशासनिक, सैन्य और सांस्कृतिक इकाई के रूप में विकसित हुआ।

होल्कर वंश की स्थापना सूबेदार मल्हार राव होल्कर ने की थी, किंतु इस वंश का चरमोत्कर्ष महाराजा यशवंतराव होल्कर प्रथम (1776—1811 ई.) के शासनकाल में परिलक्षित होता है। 03 दिसंबर 1776 ई. को महाराष्ट्र के वाडगाँव में जन्मे यशवंतराव ने अपने अल्प किंतु अत्यंत प्रभावशाली जीवन में अदम्य वीरता, रणनीतिक चातुर्य और कूटनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। मराठी, फारसी और उर्दू भाषाओं में प्रवीण महाराजा ने 1804 में दिल्ली के घेरे और 1805 के विभिन्न अभियानों के माध्यम से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की विस्तारवादी नीतियों को कड़ी चुनौती दी। उनकी इसी अपराजेय सैन्य प्रतिभा और रणनीतिक कौशल के कारण आधुनिक इतिहासकारों द्वारा उन्हें 'भारत का नेपोलियन' की संज्ञा प्रदान की गई है। महाराजा यशवंतराव ने न केवल बाहरी शत्रुओं का सामना किया, बल्कि खंडित होते मराठा संघ को एकजुट करने का भी अथक प्रयास किया। 28 अक्टूबर 1811 को मात्र 35 वर्ष की आयु में भानपुरा की पावन धरा पर उनका देहावसान हुआ। भानपुरा उस समय होल्कर राज्य की अस्थायी राजधानी और सामरिक सैन्य छावनी का प्रमुख केंद्र था। उनकी पावन स्मृति में निर्मित 'भानपुरा छत्री' केवल पत्थरों का एक ढांचा नहीं, बल्कि उस काल के स्वाभिमान, मराठा शौर्य और कलात्मक पराकाष्ठा का एक जीवंत दस्तावेज है। यह स्मारक मालवा की स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है, जो होल्कर वंश के गौरवशाली इतिहास को स्वयं में समेटे हुए है।

आधुनिक संदर्भ में, जब भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोने हेतु प्रयासरत है, तब भानपुरा छत्री जैसे स्मारकों का बहुआयामी अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र इस ऐतिहासिक धरोहर के ऐतिहासिक महत्व को पुनः परिभाषित करने, इसके स्थापत्य की सूक्ष्मताओं को अकादमिक दृष्टि से प्रस्तुत करने और भारतीय स्वाधीनता संग्राम की उन प्रारंभिक कड़ियों को पुनः जीवंत करने का एक विनम्र प्रयास है, जो युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा का अटूट स्रोत बन सकें।

शोध अंतराल :

महाराजा यशवंतराव होलकर पर उपलब्ध पूर्ववर्ती साहित्य मुख्यतः उनके सैन्य अभियानों और युद्ध रणनीतियों तक ही सीमित रहा है। उनके सांस्कृतिक, प्रशासनिक और लोक—कल्याणकारी विजन का उनकी स्मृति में निर्मित वास्तुशिल्प (छतरी) के साथ क्या अंतर्संबंध है, इस पर एक एकीकृत अध्ययन का अभाव दिखाई देता है। यह शोध पत्र भानपुरा के सामरिक चयन को एक 'आत्मनिर्भर प्रशासनिक इकाई' की दूरदर्शिता के रूप में विश्लेषित करता है। संक्षेप में, यह अध्ययन युद्ध की विभीषिका के बीच भी स्वदेशी तकनीक, सांस्कृतिक पहचान और प्रजा के स्वाभिमान को सर्वोपरि रखने वाले एक शासक के अनछुए 'मानवीय एवं प्रशासनिक' पक्षों

को उजागर करने का एक अकादमिक प्रयास है।

शोध के उद्देश्य :

- छत्री की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
- स्थापत्य शैली, शिल्प वैभव तथा प्रतीकात्मक महत्व का अध्ययन।
- वर्तमान संग्रहालय के रूप में इसके सांस्कृतिक योगदान का मूल्यांकन।
- संरक्षण चुनौतियों एवं पर्यटन संभावनाओं का आकलन।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध कार्य की प्रकृति 'ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक' एवं 'वर्णनात्मक' है। शोध की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने हेतु प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों का विधिवत समन्वय किया गया है। प्राथमिक स्तर पर शोधकर्ता द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन पद्धति का प्रयोग कर भानपुरा छतरी के स्थापत्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है तथा स्थानीय मौखिक परंपराओं का दस्तावेजीकरण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत वी.वी. ठाकुर, डॉ. रघुवीर सिंह और कर्नल जेम्स टॉड जैसे विद्वानों की ऐतिहासिक कृतियों के साथ–साथ 'मंदसौर जिला गजेटियर', राष्ट्रीय पुरालेख अभिलेखागार और मध्य प्रदेश राज्य पुरातत्व विभाग की आधिकारिक रिपोर्टों का गहन विश्लेषण किया गया है। यह बहु–आयामी दृष्टिकोण तथ्यों की ऐतिहासिक पुष्टि और स्मारक के वर्तमान पुरातात्विक मूल्यांकन को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

साहित्य समीक्षा :

प्रस्तुत शोध की प्रामाणिकता और गहराई पूर्ववर्ती विद्वानों के व्यापक शोध कार्यों के विश्लेषण पर आधारित है। वी.वी. ठाकुर और जी.एस. सरदेसाई जैसे प्रतिष्ठित इतिहासकारों के आधिकारिक ग्रंथ महाराजा यशवंतराव होलकर के सैन्य अभियानों, शासनकाल और भानपुरा के सामरिक महत्व को एक ठोस ऐतिहासिक आधार प्रदान करते हैं। वहीं, डॉ. रघुवीर सिंह की 'मालवा में युगान्तर' और जे.एन. सरकार के कार्य मालवा अंचल के राजनीतिक संक्रमण और तत्कालीन कूटनीतिक परिस्थितियों को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। कर्नल जेम्स टॉड के समकालीन विवरण भानपुरा की 'दुर्ग–नुमा' स्थापत्य शैली के सुरक्षात्मक और सैन्य पहलुओं की पुष्टि करते हैं।

समकालीन लेखकों में घनश्याम होलकर महाराजा के व्यक्तित्व को एक 'राष्ट्रवादी महानायक' के रूप में स्थापित करते हैं, जो छतरी के प्रतीकात्मक महत्व को नई दृष्टि प्रदान करता है। क्षेत्रीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में डॉ. प्रद्युम्न भट्ट और मनीषा भट्ट की कृतियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जो भानपुरा अंचल के प्राचीन शैल–चित्रों से लेकर होल्कर कालीन गौरव तक के सफर और इसके वर्तमान पर्यटन महत्व को रेखांकित करती हैं। संक्षेप में, यह साहित्य समीक्षा प्रमाणित करती है कि जहाँ पूर्ववर्ती कार्यों ने महाराजा के 'योद्धा स्वरूप' पर ध्यान केंद्रित किया है, वहीं प्रस्तुत शोध उनके सांस्कृतिक वैभव और स्थापत्य के अंतर्संबंधों को उजागर करने का एक अभिनव प्रयास है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं भानपुरा का रणनीतिक महत्व :

महाराजा यशवंतराव होलकर प्रथम (1797–1811 ई.) का कालखंड भारतीय स्वाधीनता इतिहास में ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रखर प्रतिरोध का प्रतीक है। 1802 की 'पूना की लड़ाई' में विजय और 1804 में

डीग के युद्ध में अंग्रेजों को कड़ी चुनौती देकर उन्होंने अपनी सैन्य श्रेष्ठता सिद्ध की, जिसके फलस्वरूप मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय ने उन्हें 'महाराजाधिराज राज राजेश्वर अलीजा बहादुर' की उपाधि से विभूषित किया। 1805 की 'राजघाट संधि' महाराजा की कूटनीतिक विजय थी, जिसने होल्कर राज्य की स्वायत्तता को सुरक्षित रखा।

महाराजा ने इंदौर या महेश्वर के स्थान पर भानपुरा को अपनी प्रशासनिक और सैन्य गतिविधियों का केंद्र चुना, जो एक सुचिन्तित सामरिक निर्णय था। विंध्याचल की दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं, घने वनों और हिंगलाजगढ़ दुर्ग की समीपता ने भानपुरा को एक अभेद्य प्राकृतिक सुरक्षा कवच प्रदान किया। सैन्य आधुनिकीकरण की दिशा में उन्होंने यहाँ एक विशाल 'गन फाउंड्री' (तोपखाना) स्थापित की, जहाँ स्वदेशी तकनीक से निर्मित तोपें तत्कालीन ब्रिटिश तकनीक के समकक्ष थीं। कर्नल जेम्स टॉड ने भी भानपुरा का वर्णन एक सुदृढ़ किलेबंदी वाले गढ़ के रूप में किया है।

28 अक्टूबर 1811 को मात्र 35 वर्ष की अल्पायु में महाराजा का भानपुरा में देहावसान हुआ। उनकी स्मृति में 1811–1812 ई. के मध्य रेवा तट पर इस भव्य छतरी का निर्माण उनकी पत्नी श्रीमती कृष्णा बाई होलकर द्वारा प्रारंभ करवाया गया, जो 1818 ई. के आसपास पूर्ण हुआ। छतरी के गर्भगृह में महाराजा अपनी दो पत्नियों सहित विराजमान हैं। परिसर के दाहिनी ओर वर्तमान में संग्रहालय और बायीं ओर दरबार हॉल स्थित है, जहाँ देवी अहिल्या बाई होलकर की प्रतिमा स्थापित है। यह स्मारक न केवल एक समाधि है, बल्कि होल्कर कालीन स्थापत्य वैभव और ब्रिटिश विरुद्ध भारतीय प्रतिरोध की एक जीवंत कड़ी है।

स्थापत्य कला एवं शिल्प वैभव :

भानपुरा की छत्री मालवा स्थापत्य का एक उत्कृष्ट और विलक्षण उदाहरण है, जिसमें मराठा, राजपूत, मुगल तथा क्षेत्रीय शैलियों का अनूठा समन्वय दृष्टिगोचर होता है। मुख्य रूप से 'इंडो–इस्लामिक शैली' में निर्मित यह संरचना स्थानीय धूसर एवं बलुआ पत्थरों से तैयार की गई है, जो इसे अद्वितीय स्थायित्व और सौंदर्य प्रदान करते हैं। यह छत्री लगभग 2 मीटर ऊँचे एक विशाल और ठोस अधिष्ठान (जगती) पर टिकी है। इसकी सबसे विशिष्ट विशेषता इसकी 'किलेनुमा प्राचीर' है, जहाँ सामान्यतः मराठा छत्रियां खुली संरचनाएँ होती हैं, वहीं महाराजा यशवंतराव के योद्धा व्यक्तित्व और तत्कालीन युद्धकालीन परिस्थितियों के अनुरूप इसे ऊँची दीवारों, बुर्जों और कंगूरों से सुरक्षित किया गया है। यह सुरक्षात्मक विन्यास स्मारक को एक भव्य दुर्ग का स्वरूप प्रदान करता है, जो इसे समकालीन अन्य स्मारकों से पृथक करता है।

भवन की आंतरिक साज–सज्जा और संरचनात्मक विवरण शिल्पकारों की तकनीकी प्रवीणता को सिद्ध करते हैं। मुख्य कक्ष के स्तंभों पर प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र की परंपरा के अनुरूप 'घट–पल्लव' (कलश और पत्तियां), ज्यामितीय पैटर्न और सूक्ष्म पुष्प अंकन उकेरे गए हैं। यहाँ 'नुकीली मेहराबो' का प्रयोग हुआ है, जो मराठा स्थापत्य की प्रमुख पहचान हैं और जिनमें मुगल वास्तुकला की वक्रता एवं राजपूत सादगी का सुंदर सम्मिश्रण मिलता है। छत्री के केंद्र में स्थित गर्भगृह में महाराजा यशवंतराव की आदमकद संगमरमर की भव्य मूर्ति स्थापित है, जिसके साथ उनकी सती हुई रानियों की मूर्तियाँ भी श्रद्धापूर्वक विराजित हैं। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, महाराजा की मूल मूर्ति की दाढ़ी में एक बहुमूल्य असली हीरा जड़ा हुआ था, जो उनके राजसी वैभव का प्रतीक माना जाता था। छत्री का विशाल शिखर मराठा इंजीनियरिंग का एक उत्कृष्ट नमूना है। आंतरिक रूप से शिखर को विकसित कमल पुष्पों से अलंकृत किया गया है, जो भारतीय संस्कृति में पवित्रता और वैराग्य का बोध कराते हैं, जबकि बाहरी शिखर पर स्थित कलश और ध्वजदंड इसे एक मंदिर जैसा पवित्र स्वरूप प्रदान करते हैं। इसकी ऊँचाई और सटीक वक्रता उस काल के उन्नत इंजीनियरिंग कौशल का प्रमाण है। अलंकरण के स्तर पर, स्मारक की दीवारों के निचले भाग में महाराजा की सैन्य शक्ति को समर्पित सजीव दृश्यों का अंकन मिलता है, जिसमें हाथियों की कतारें, घुड़सवार योद्धा और युद्ध के मैदान के सूक्ष्म चित्रण शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, वनस्पति, धार्मिक प्रतीकों (विष्णु अवतार, शिव स्तुति) और ज्यामितीय पैटर्न्स के माध्यम से तत्कालीन समाज के सौंदर्य बोध और धार्मिक समन्वय को अत्यंत कुशलता से उकेरा गया है।

पुरातात्विक मूल्यांकन एवं वर्तमान संग्रहालय की भूमिका :

आधुनिक काल में महाराजा यशवंतराव होलकर की छत्री केवल एक समाधि स्थल मात्र नहीं, बल्कि मालवा की जीवंत ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर का एक प्रमुख केंद्र है। छत्री में स्थापित संग्रहालय की स्थापना श्रीमंत यशवंतराव होलकर द्वितीय द्वारा सन 1943 ई. में की गई इस संग्रहालय में हिंगलाजगढ़ तथा गांधीसागर बांध के निर्माण के दौरान डूब में आए ग्रामों से प्राप्त प्रतिमाएं छठी शती ई. से लेकर 18वीं शती ईस्वी तक की प्रदर्शित है। मध्य प्रदेश राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित यह परिसर वर्तमान में एक समृद्ध 'पुरातत्व संग्रहालय' के रूप में प्रतिष्ठित है, जो प्राचीन पाषाण कला से लेकर मराठा काल तक के क्रमिक विकास का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इस छत्री के चारों ओर स्थित नक्काशीदार दीर्घाओं को अत्यंत कुशलता से संग्रहालय कक्षों में परिवर्तित किया गया है, जहाँ गुप्त काल (४ठी–५वीं शताब्दी) से लेकर परमार एवं प्रतिहार काल

(९वीं–१२वीं शताब्दी) तक की दुर्लभ प्रतिमाओं का अद्भुत संग्रह सुरक्षित है। यहाँ की शैव, वैष्णव और शाक्त प्रतिमाएँ – जिनमें उमा–महेश्वर, शिव तांडव, विष्णु के विभिन्न अवतार और महिषासुरमर्दिनी प्रमुख हैं : तत्कालीन समाज की धार्मिक मान्यताओं और कलात्मक उत्कृष्टता के सुंदर समन्वय को दर्शाती हैं।

भानपुरा पुरातत्व संग्रहालय की महत्ता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यहाँ की कुछ अद्वितीय प्रतिमाओं को भारत सरकार द्वारा अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों हेतु 'सांस्कृतिक राजदूत' के रूप में चुना गया है। विशेष रूप से यहाँ से प्राप्त ११वीं शताब्दी की 'नंदी' और 'उमा–महेश्वर' की प्रतिमाएँ फ्रांस और वाशिंगटन (अमेरिका) जैसे देशों में भारतीय कला का प्रतिनिधित्व कर वैश्विक ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि भानपुरा अंचल परमार कालीन कला का एक प्रमुख वैश्विक केंद्र रहा है। इसके अतिरिक्त, यह संग्रहालय भानपुरा के प्रागैतिहासिक महत्व को भी संजोए हुए है, जिसमें समीपवर्ती दरकी–चट्टान जैसे स्थलों से प्राप्त पुरापाषाण कालीन शैल चित्रों के साक्ष्य और होल्कर कालीन सैन्य अवशेष (तोपखाने के अंश) शामिल हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, इसे गांधी सागर बांध और हिंगलाजगढ़ दुर्ग के साथ जोड़कर एक 'ग्रैंड हेरिटेज सर्किट' के रूप में विकसित करने की अपार संभावनाएँ हैं, जो क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक अस्मिता को नवीन प्रोत्साहन प्रदान करेंगी।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि भानपुरा स्थित महाराजा यशवंतराव होलकर की छतरी केवल एक समाधि स्थल नहीं, अपितु १९वीं शताब्दी के शौर्य, कूटनीति और स्थापत्य का अद्वितीय संगम है। 'भारत के नेपोलियन' के संघर्षों की साक्षी यह 'दुर्ग–नुमा' संरचना, तत्कालीन इंडो–इस्लामिक, मराठा और मालवा शैलियों के सफल समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। वर्तमान में 'भानपुरा पुरातत्व संग्रहालय' के रूप में इस परिसर की वैश्विक पहचान यहाँ संरक्षित गुप्त एवं परमार कालीन दुर्लभ प्रतिमाओं से है, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संस्कृति की ध्वजवाहक बनी हुई हैं। अतः, इस धरोहर के संरक्षण हेतु 'वैज्ञानिक प्रबंधन' और 'डिजिटल प्रलेखीकरण' वर्तमान की अनिवार्य आवश्यकता है। इसे 'हेरिटेज सर्किट' के रूप में विकसित करना न केवल क्षेत्रीय आर्थिक विकास को गति देगा, बल्कि आगामी पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा का एक अटूट आधार स्तंभ भी सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची (References)

1. टॉड, कर्नल जेम्स (1821), "Annals and Antiquities of Rajasthan" London : Smith, Elder, and Co.
2. ठाकुर, वी. वी. (1944), होल्कर शाहि च इतिहास (खंड १ एवं २), सरकारी प्रेस, इंदौर।
3. सरदेसाई, जी. एस. (1948) "New History of the Marathas" फीनिक्स पब्लिकेशंस, बॉम्बे।
4. सिंह, डॉ. रघुवीर, मालवा में युगान्तर, श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर।
5. यादव, शिवनारायण (1994)" होलकर राज्य का प्रशासन" मानक पब्लिकेशंस, इंदौर।
6. यादव, शिवनारायण (1997) "अपना इंदौर" लाभाचंद्र प्रकाशन, इंदौर।
7. त्रिवेदी, चंद्रभूषण, (2009) "दशपुर" मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
8. भट्ट, डॉ. प्रद्युम्न : 'संस्कृति एवं पर्यटन : दशपुर–भानपुरा अंचल'।

9. भट्ट, मनीषा और भट्ट, डॉ. प्रद्युम्न : 'भानपुरा युगान्तर' आश्रा–संस्कृति एवं इतिहास अनुशीलन अनुष्ठान' प्रकाशक।
10. होलकर, घनश्याम, (2018) "महाराजा यशवंतराव होलकर : भारतीय स्वतंत्रता के महानायक" नोशन प्रेस, चेन्नई।
11. पाण्डेय, कैलासचंद्र घनश्याम, (2022) "दिव्य दशपुर", जिला पुरातत्व पर्यटन एवं संस्कृति परिषद, मंदसौर
12. मध्यप्रदेश शासन. मंदसौर जिला गजेटियर, भोपाल : राजभाषा संचालनालय।
13. मध्यप्रदेश पुरातत्व विभाग. Annual Report on Bhanpura Excavations and Museums (Western Zone Report), [archaeology.mp.gov.in]
14. राष्ट्रीय स्मारक एवं पुरातत्व मिशन (NMMA). Digital Archives and Ancient Remains : Bhanpura Village Records, [nmma.nic.in]
15. ResearchGate (2017), The Buildings and Architecture of the Holkar State : Maratha Cenotaphs.
16. मध्य प्रदेश पर्यटन विभाग (MP Tourism). Official Records of Heritage Circuit : Gandhi Sagar and Bhanpura.
17. विकिपीडिया (Wikipedia), Yashwantrao Holkar (Verified Historical Facts and Chronology)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 193-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

नर्मदा परिक्रमा : आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयामों का शोधपूर्ण विश्लेषण

नमन जैन, शोधार्थी
इतिहास विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।
शोध केंद्र– शासकीय कृष्णाजी पवार महाविद्यालय, देवास।

सारांश –

नर्मदा परिक्रमा भारत की उन दुर्लभ आध्यात्मिक यात्राओं में से एक है जो न केवल धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय और लोक–मानसिकता के स्तर पर भी गहन प्रभाव डालती है। नर्मदा नदी को 'जीवंत देवी' के रूप में पूजने की परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है, और इसके तटों पर विकसित संस्कृति मानव सभ्यता की धरोहर मानी जाती है। संपूर्ण परिक्रमा लगभग 3,500 किमी की कठिनतम यात्रा है जिसमें साधक नदी के उद्गम (अमरकंटक) से लेकर समुद्र–गमन (भरूच) और वहाँ से पुनः उद्गम तक परिक्रमा करते हैं। इस शोध–पत्र में नर्मदा परिक्रमा की अवधारणा, ऐतिहासिक परंपराएँ, आध्यात्मिक महत्व, जबलपुर क्षेत्र से इसकी विशेष संबद्धता, परिक्रमा मार्ग की विशेषताओं, तीर्थ–सम्प्रदायों, पर्यावरणीय पहलुओं तथा परिक्रमा करने वालों के अनुभवों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

यह शोध मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों, साहित्यिक ग्रंथों, यात्रावृत्तों, स्थानीय जनकथाओं, तथा उपलब्ध सांस्कृतिक–सामग्री पर आधारित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नर्मदा परिक्रमा भारतीय आध्यात्मिक परंपरा का अद्वितीय उदाहरण है जो मानव के भीतर अनुशासन, सहनशीलता, समर्पण, प्रकृति–प्रेम और आध्यात्मिक उत्कर्ष जैसे मूल्यों को सुदृढ़ करता है।

कुंजी शब्द – नर्मदा परिक्रमा, जाबालपुर, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक विरासत, नदी सभ्यता, तीर्थ–परंपरा, पर्यावरणीय महत्व।

प्रस्तावना –

भारतीय संस्कृति में नदियाँ केवल जलधाराएँ नहीं, बल्कि 'माँ' और 'देवी' के रूप में प्रतिष्ठित हैं। गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि सभी नदियों का अपना–अपना महत्व है, किन्तु नर्मदा का स्थान इन सबमें विशिष्ट माना जाता है। इसका कारण यह है कि नर्मदा को "शिव की पुत्री" कहा गया है और यह एकमात्र नदी है जिसकी परिक्रमा करने का विधान धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से मिलता है। अन्य नदियों में स्नान, दान, पूजा आदि का विधान है, परन्तु परिक्रमा का अनुष्ठान नर्मदा के लिए विशिष्ट है। नर्मदा परिक्रमा केवल एक धार्मिक

यात्रा नहीं, बल्कि एक कठिन तपस्या है। इसमें यात्री 'जिन्हें 'परिक्रमावासी' कहा जाता है' नदी से यथासंभव निकट रहते हुए पैदल चलते हैं, नदी को हमेशा दाईं ओर रखते हुए उसके चारों ओर एक विशाल वृत्त पूरा करते हैं। इस यात्रा में समय की कोई अनिवार्यता नहीं होती, कुछ लोग छह महीनों में इसे पूरा कर लेते हैं, तो कुछ दो–तीन वर्ष या उससे भी अधिक समय लेते हैं। यह यात्रा भारतीय 'तप' परंपरा का वास्तविक अनुभव कराती है जिसमें व्यक्ति अपने भीतर की सीमाओं को पहचानता है और प्रकृति के साथ अपने संबंध को पुर्नस्थापित करता है।

जबलपुर क्षेत्र इस परिक्रमा का अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव है। नर्मदा के संगमरमर–घाटियाँ, भेड़ाघाट का दुधिया प्रवाह, तथा मदनमहल और महीतलेश्वर जैसे प्राचीन स्थल नर्मदा–तट की सांस्कृतिक–धरोहर को समृद्ध करते हैं। इस क्षेत्र में नर्मदा को केवल नदी नहीं, बल्कि जीवन–रेखा के रूप में पूजने की परंपरा आज भी जीवंत है। इसलिए यह शोध–पत्र विशेषतः नर्मदा परिक्रमा के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय तत्त्वों को जबलपुर क्षेत्र के संदर्भ में प्रस्तुत करता है।

नर्मदा परिक्रमा का विस्तृत अध्ययन – नर्मदा का ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व :

नर्मदा का उल्लेख स्कंद पुराण, नर्मदा पुराण, शिव पुराण, ऋषिप्रतीति कथाओं और अनेक स्थानीय लोककथाओं में मिलता है। पुराणों के अनुसार नर्मदा का उद्गम ब्रह्मा के तप से हुआ और शिव ने उसे अपने 'जटाजूट' से प्रवाहित किया। यह भी माना जाता है कि नर्मदा में स्नान से अधिक पुण्य केवल इसके दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाता है। 'रेवा' नाम से भी प्रसिद्ध नर्मदा को 'पाप–परिहारिणी', 'मोक्षदा', 'शिवसुता' जैसे विशेषणों से अलंकृत किया गया है।

परिक्रमा की परंपरा –

परिक्रमा की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। संत–महात्माओं, नाथ–योगियों, शैव–तांत्रिक साधकों, नागाओं, जैन साधुओं और अनेक श्रमण–सम्प्रदायों ने नर्मदा परिक्रमा को अपनी साधना का अभिन्न अंग माना है।
परिक्रमा के मुख्य नियमों में शामिल हैं :

- नदी हमेशा दाईं ओर हो।
- साधारणतः पैदल चलना।
- किसी भी परिस्थिति में नदी को पार न करना।
- आसक्ति–विमुक्ति और व्रतों का पालन।
- अधिक से अधिक मौन, शुद्ध आहार और सत्य व्रत
- यात्रा के दौरान परिक्रमावासी गांवों, आश्रमों, घाटों और परिक्रमा–पथ पर स्थित 'नर्मदा बाई के मंदिरों' में विश्राम करते हैं।

जबलपुर क्षेत्र का महत्व –

जबलपुर नर्मदा परिक्रमा का आध्यात्मिक और भौगोलिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्र है।

1. **भेड़ाघाट :** यहाँ की संगमरमर चट्टानों के बीच से बहती नर्मदा को 'दुनिया का दुधिया चमत्कार' कहा जाता है। धुआंधार जलप्रपात परिक्रमा साधकों के लिए ध्यान का पवित्र स्थान माना जाता है।
2. **तिलवारा घाट :** नर्मदा नदी का शांत, विस्तृत और सौम्य स्वभाव यहाँ स्पष्ट दिखाई देता है। यह घाट

ऐतिहासिक रूप से भी महत्वपूर्ण है।

3. **घुगरी, संतोषी माता घाट, ग्वारीघाट :** यहाँ दैनिक 'नर्मदा आरती' का आयोजन परिक्रमा की आध्यात्मिकता को सशक्त करता है।

4. **मदनमहल क्षेत्र :** नर्मदा तटवर्ती सभ्यता का जीवित प्रमाण जहाँ शैलकला और प्राचीन स्मारक मिलते हैं।

नर्मदा परिक्रमा के दौरान जबलपुर क्षेत्र तीर्थ, विश्राम और सांस्कृतिक सम्पर्क का केंद्र बनकर उभरता है।

परिक्रमा का सांस्कृतिक आयाम –

नर्मदा घाटी मध्य भारत की संस्कृति का केंद्र है। यहाँ की जनजातियाँ 'घोंड, बैगा, भारिया और कोरकू' नर्मदा को 'जीवन–धारा' मानती हैं। उनके नृत्य, गीत, उत्सव और कृषि पद्धतियाँ नर्मदा–जल पर आधारित हैं। परिक्रमा मार्ग पर गाँव–गाँव में परिक्रमावासियों को भोजन, आश्रय और सहयोग देने की परंपरा है, जिसे स्थानीय लोग 'सेवा–धर्म' मानते हैं। परिक्रमा के दौरान भाषा, वेशभूषा, खान–पान और धार्मिक प्रथाएँ लगातार बदलती रहती हैं और यह विविधता भारतीय संस्कृति की संपूर्णता को उजागर करती है।

परिक्रमा और पर्यावरणीय चेतना –

नर्मदा परिक्रमा केवल धार्मिक यात्रा नहीं, बल्कि एक पर्यावरणीय अनुभव भी है। परिक्रमावासी नर्मदा के साथ चलते हुए उसके तटों की भौगोलिक बनावट, वृक्ष–पुष्पों की विविधता, वन्यजीवों, मिट्टी, चट्टानों और जलवायु की विशेषताओं को सजीव रूप में देखते हैं। यात्रा से यह स्पष्ट होता है किकृनर्मदा घाटी का पारिस्थितिक संतुलन अत्यंत नाजुक है वन–विनाश, अवैध खनन और प्रदूषण नदी के अस्तित्व को प्रभावित करते हैं, परिक्रमा मार्ग स्वयं एक 'जीवित पथ' है जिसे संरक्षण की आवश्यकता है,इस प्रकार परिक्रमा प्रकृति–संरक्षण का एक मौन संदेश देती है।

परिक्रमावासियों का मनोवैज्ञानिक अनुभव –

अनेक यात्रियों के अनुसार नर्मदा परिक्रमा मन को शांत करती है, भय और असुरक्षा को दूर करती है और व्यक्ति को प्रकृति के समीप ले आती है। यात्रा के दौरान शरीर की सीमाएँ टूटती हैं, मन में साहस, धैर्य और संकल्प का विकास होता है, निस्संगता और आत्मनिष्ठा बढ़ती है, अनिश्चित परिस्थितियों से जूझना सीखने को मिलता है।

यही कारण है कि अनेक संत इस यात्रा को "जीवन का दूसरा जन्म" कहते हैं।

शोध के उद्देश्य –

इस शोध–पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं :

– नर्मदा परिक्रमा की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं का अध्ययन–परिक्रमा के सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण।
– जबलपुर क्षेत्र के संदर्भ में परिक्रमा मार्ग और तीर्थ परंपराओं की समीक्षा।
– परिक्रमावासियों के अनुभवों का अध्ययन।
– नर्मदा परिक्रमा को भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में स्थान निर्धारित करना।

साहित्य समीक्षा –

नर्मदा परिक्रमा पर कई संतों और विद्वानों ने पुस्तकों, यात्रा–वृत्तों और शोध–लेखों के रूप में अध्ययन

प्रस्तुत किया है। 'नर्मदा पुराण' इसका प्राथमिक धार्मिक स्रोत है जिसमें परिक्रमा की संपूर्ण विधि, कथा और महिमा वर्णित है। गोंड और बैगा जनजातियों की लोककथाओं में नर्मदा को 'रेवा माता' के रूप में पूजा जाता है।

अमरकंटक, मंडला और जबलपुर के इतिहासकारों ने नर्मदा घाटी में प्राचीन सभ्यता के अवशेषों का उल्लेख किया है। आधुनिक यात्रावृत्तों 'जैसे ओशो, विनोबा भावे, आचार्य महाराज और अन्य साधकों' ने परिक्रमा के दौरान प्राकृतिक सौंदर्य, कठिनाइयाँ और जीवन–परिवर्तनकारी अनुभवों का वर्णन किया है।

इस साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि नर्मदा परिक्रमा भारतीय अध्यात्म में 'अनुष्ठानिक यात्रा' की सर्वोच्च परंपरा मानी गई है।

अनुसंधान विधि –

यह शोध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। पुस्तकें, शोध–पत्र, यात्रा–वृत्त, लोककथाएँ, और डिजिटल सामग्री मुख्य स्रोत रहे। साथ ही परिक्रमावासियों के कथनों, जबलपुर क्षेत्र के स्थानीय लोगों के अनुभव, पर्यावरणीय रिपोर्टों का उपयोग किया गया है। विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति को अपनाया गया है ताकि सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को संतुलित रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

डेटा विश्लेषण –

स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर विश्लेषण निम्न निष्कर्षों पर केंद्रित रहा :

– परिक्रमा का धार्मिक महत्व लोगों में अत्यधिक प्रभावी है।
– परिक्रमा मार्ग पर सामुदायिक सौहार्द बढ़ता है।
– नर्मदा तटवर्ती संस्कृति विविधता से परिपूर्ण है जो परिक्रमा के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप में अनुभव होती है।
– पर्यावरणीय चुनौतियाँ इस यात्रा का महत्वपूर्ण भाग बनकर उभरती हैं।
– जबलपुर क्षेत्र आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक रूप से परिक्रमा का केंद्र–बिंदु है।

निष्कर्ष –

नर्मदा परिक्रमा भारतीय अध्यात्म की उन परंपराओं में से एक है जो मनुष्य और प्रकृति के बीच गहन संबंध स्थापित करती है। यह केवल धार्मिक यात्रा नहीं, बल्कि एक अंतर्मन की साधना है। परिक्रमा का मार्ग व्यक्ति को सहनशीलता, अनुशासन, त्याग और आत्मिक शक्ति का अनुभव कराता है।

जबलपुर क्षेत्र इस परिक्रमा को सांस्कृतिक, प्राकृतिक और आध्यात्मिक रूप से अत्यंत समृद्ध बनाता है। इसकी घाटियाँ, जलप्रपात, मंदिर, लोककथाएँ एवं स्थानीय जनसंस्कृति नर्मदा की जीवंतता को और भी प्रखर करती हैं।

यह शोध बताता है कि नर्मदा परिक्रमा आज भी भारतीय आध्यात्मिक चेतना का एक अद्वितीय उदाहरण है और इसके संरक्षण, प्रचार–प्रसार तथा पर्यावरणीय–सुरक्षा की दिशा में संगठित प्रयासों की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

पुस्तकें/ग्रंथ

1. ओझा, पं. हरिरामशरण। नर्मदा पुराण (अनुवाद एवं संपादन). वाराणसी : चौखम्बा प्रकाशन, 1987.
2. विरेन्द्र, सिंह। नर्मदा : एक सांस्कृतिक और धार्मिक अध्ययन. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी,

2004.
3. श्रीवास्तव, रमेशचन्द्र। नर्मदा घाटी सभ्यता का सांस्कृतिक इतिहास. जबलपुर : सरस्वती पब्लिकेशन, 1999.
4. भट्ट, हरिहर। रेवा महात्म्य : नर्मदा का सांस्कृतिक स्वरूप. उज्जैन : कालिदास अकादमी प्रकाशन, 2002.
5. मिश्र, ब्रजभूषण। अमरकंटक और नर्मदा का उद्‌गम. रीवा : अवधेश प्रकाशन, 1995.
6. त्रिपाठी, नीलकंठ। नर्मदा तटवर्ती जनजातीय संस्कृति. भोपाल : वनमित्र प्रकाशन, 2011.
7. झा, शैलेंद्र कुमार। नर्मदा परिक्रमा : एक आध्यात्मिक अन्वेषण. दिल्ली : राजकमल पेपरबैक्स, 2015.

यात्रावृत्त/व्यक्तिगत अनुभव :

8. भावे, विनोबा। नर्मदा के पथ पर. मुंबई : सरला बुक डिपो, 1960.
9. ओशो (रजनीश)। कवच और कुंडल (नर्मदा यात्रा प्रसंग). पुणे : राजयोग प्रकाशन, 1978.
10. गिरी, स्वामी श्रीअनंत। नर्मदा परिक्रमा चरितामृत. हरिद्वार : बाबा केदारनाथ ट्रस्ट, 2010.

अनुसंधान रिपोर्टें/अकादमिक अध्ययन :

11. मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग। नर्मदा घाटी सभ्यता एवं सांस्कृतिक विरासत रिपोर्ट. भोपाल : संस्कृति विभाग, 2009.
12. इंडियन काउंसिल ऑफ हिस्टॉरिकल रिसर्च (ICHR). Narmada Valley : Archaeological and Cultural Survey. नई दिल्ली : ICHR Publication, 1997.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 198-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में गोरखनाथ की उपादेयता

डॉ० सुभीर सिंह
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
रतन सेन डिग्री कालेज, बाँसी, सिद्धार्थनगर।

भारत प्राचीन काल से ही धर्म साधना एवं संस्कृति का केंद्र रहा है। यहां अनेक महापुरुषों ने धर्म साधना के द्वारा भारतीय जनमानस के परिदृश्य को परिवर्तित एवं शोधित करके मानवता को प्रतिष्ठित करने में बहुमूल्य योगदान दिया है। जिसमें स्वामी विवेकानंद, शंकराचार्य, गोरखनाथ, महर्षि पतंजलि, कबीरदास, रैदास, मीराबाई, रविंद्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गांधी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय धर्म साधना को प्रतिष्ठित करने में गुरु गोरखनाथ का योगदान अत्यंत सराहनीय है। सामान्यतः यह माना जाता है कि गुरु गोरखनाथ साक्षात् शिव के अवतार हैं। आदिनाथ भगवान शिव के द्वारा देवी पार्वती को प्रदत्त महायोग के उपदेश का श्रवण करने से ही योगीराज मछिंद्रनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। इस महाज्ञान का दुरुपयोग न हो, इसलिए देवाधिदेव भगवान शिव को महायोगी गोरखनाथ के रूप में योगीराज मछंदर नाथ का शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ा। महायोगी गोरखनाथ ही नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं उनका व्यक्तित्व अत्यंत विराट एवं युगांतकारी था।

भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में नाथ पंथ के उन्नायक महायोगी गोरखनाथ का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली है। वे युग प्रवाह को मोड़ने तथा परिस्थितियों को अपने अनुकूल करने वाले धर्म प्रचारक एवं सच्चे धर्म नेता एवं साधना के रूप में भारतीय जनमानस में प्रतिष्ठित हैं। हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन उल्लेखनीय है– "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमा मंडित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ भारतवर्ष के कोने कोने में उनके अनुयाई आज भी पाए जाते हैं भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"[1] इस प्रकार गोरखनाथ भारतीय धर्म साधना एवं साहित्य के सहज व्यक्तित्व हैं उनके द्वारा परिवर्तित एवं संगठित नाथ संप्रदाय पूरे देश में तो व्याप्त है ही इसके साथ–साथ चीन, मंगोलिया, जापान एवं पूर्वी दीप समूह में भी व्यापक प्रभाव रखता है। नाथ पंथियों की दृष्टि में गोरखनाथ का व्यक्तित्व दिव्य एवं लोकोत्तर है वह साक्षात् परम शिव हैं उन्हें देश काल की सीमा में नहीं बाधा जा सकता वे अनादि एवं अनंत है। आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि में गोरखनाथ विलक्षण व्यक्तित्व वाले सच्चे सिद्ध योगी थे। जिनका आविर्भाव ईशा की सातवीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी के बीच माना जाता है दोनों प्रकार की मान्यताओं से किसी भी प्रकार का संदेह करना

उचित नहीं है। आध्याात्म प्रधान इस देश के सभी धर्म एवं समुदाय अपने–अपने ढंग से तथा अपनी परंपराओं एवं मान्यताओं के अनुसार मानते हैं। सामान्यतः नाथ संप्रदाय भारत के प्राचीन धर्म संप्रदाय में से एक है गोरखनाथ के आविर्भाव से पूर्व भी इसकी सत्ता विद्यमान थी। अतः विश्व प्रसूति के मूल में विश्व–शक्ति की परिकल्पना अत्यंत प्राचीन है, यह भारतीय धर्म साधना का बीज रूप है। अतः शक्ति को महत्व देने वाले धर्म एवं संप्रदाय पर संदेह नहीं किया जा सकता। नाथ पंथ में कुंडलिनी के रूप में विश्व शक्ति को महत्व दिया गया है। शिव एवं शक्ति को एक दूसरे का पर्याय माना जाता है अर्थात जहां शिव है वही शक्ति है। यह तंत्र विद्या का मूल सिद्धांत है यह विद्या ऋग्वेद की रचना से पूर्व भी विद्यमान थी नाथ पंथ में तंत्र तंत्र विद्या के इस बीज रूप को स्वीकार किया गया है। शिव शक्ति की उपादेयता ही है की साधना का लक्ष्य है। ऐसा माना जाता है कि गोरखनाथ के पूर्व नाथ–योग में कुछ विकृतियों आ गई थी। जिसके फलस्वरुप गोरखनाथ ने अपने गुरु मत्क्षेन्द्रनाथ नाथ को सतर्क एवं जागृत करके नाथ पंत को एक नई शक्ति ऊर्जा एवं दिशा प्रदान कीद्य उन्होंने अनेक श्रमशील साधना साधनाओं को परिचित करके अपने मत में समाहित किया तथा जन समुदाय के बीच मानवता का संदेश दिया तथा मनुष्य के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर मानवता की स्थापना की।

योगी गोरखनाथ के संबंध में डॉ० कमल सिंह ने अपनी पुस्तक 'गोरखनाथ और उनका साहित्य' में लिखा है" गोरखनाथ हिंदी के प्रथम कवि हैं। अब तक हिंदी के प्रथम कवि के रूप में पुष्प या पुंड, सिद्ध सरहपा, शालिभद्र सूरि और अमीर खुसरो के नाम लिए जाते हैं इनमें पुष्पदंत की कोई भी रचना उपलब्ध न होने के कारण उनके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, अमीर खुसरो की उपलब्ध रचनाओं की भाषा का स्वरूप आधुनिक होने के कारण विश्वसनीय नहीं है, सरहपा और शालिभद्र सूरि की भाषा मूलतः अपभ्रंश है जबकि गोरखनाथ की भाषा सरलता से समझी जा सकती है। अतः गोरखनाथ को हिंदी का प्रथम कवि मानना समीचीन होगा।"[2]

मिश्र बंधुओ (गणेश, श्याम, शुकदेव) ने गुरु गोरखनाथ को हिंदी खड़ी बोली का प्रथम गद्य कवि माना है। हिंदी भाषा और उसकी उत्पत्ति तथा भारत की पूरी संत परंपरा के विकास में गोरखनाथ का प्रमुख स्थान है। भक्ति आंदोलन और धार्मिक चेतना के साथ–साथ देश के जनसाधारण की व्यथा कथा एवं मनुष्यता के उत्थान के लिए आंदोलन रूप में सामने आया। यह सामंती संस्कृति के विरुद्ध लोक संस्कृति एवं भारतीयता के उत्थान का ऐसा आंदोलन है जिसमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी सम्मिलित हैं। इसके प्रवाह में गोरखनाथ जी मनुष्य के वास्तविक सत्य की खोज के लिए सर्वत्व सुख को त्याग कर बैरागी एवं सन्यासी हो गए एवं मानवता को प्रतिष्ठित किया। इस आंदोलन की परंपरा में बौद्ध चेतना का बीज तत्व है, नाथ पंथ एवं सिद्धमत की शील सात्विकता है तो भक्ति और वेदान्त का समन्वय है। यह एक ऐसा लोग जागरण है जिसने नामस्मरण एवं अन्तः साधना को ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन बनाकर शिक्षित, अशिक्षित, स्त्री–पुरुष ब्राह्मण, शुद्र, अमीर–गरीब सभी को भक्ति का मार्ग भक्ति मार्ग का पथिक बना दिया। प्रेम केंद्रित इस आंदोलन एवं धर्म साधना की यात्रा ने पूरे देश को भावात्मक एकता के सूत्र (करुणा, त्याग, समर्पण) में पिरोने का काम किया। धर्म साधना के इसी स्वरूप का दर्शन भक्ति ज्ञान एवं योग साधना में दिखाई देता है। महायोगी गोरखनाथ ने भक्ति आंदोलन को लोकतात्विक स्वरूप प्रदान किया। जिसके फलस्वरूप जन समुदाय के लिए भक्ति दर्शन एवं अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त हुआ।

गोरखनाथ के संदर्भ में अक्षय कुमार बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'फिलासफी आप गोरखनाथ' में लिखा है–"

तर्क एवं कल्पना के आधार पर परम तत्व की खोज करना उनका लक्ष्य न था। प्रपंचिक जगत के परे या पीछे यह उसके आधार स्वरूप किसी परमार्थिक सत्ता के अस्तित्व का तर्क द्वारा खंडन या मण्डन करना भी उन्हें अभीष्ट न था विवादास्पद दार्शनिक समस्याओं के विश्लेषण में उन्होंने स्वयं को कभी नहीं उलझाया बल्कि मानवता के कल्याण के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया कर दिया तथा कभी भी अपनी बौद्धिक क्षमता का प्रदर्शन नहीं किया।"[3] महायोगी गोरखनाथ सिद्ध योगी एवं सर्वकालिक है जगतगुरु शंकराचार्य की तरह पूजनीय है। श्रमण संस्कृत के विकास में भारतीय धर्म साधना को नैतिक एवं सात्विक आधार देने में गोरखनाथ की भूमिका ऐतिहासिक है। संत मत पर नाथ पंथ का प्रभाव सर्वाधिक है। वस्तुतः यह नाथ पंथ का भक्ति संश्लिष्ट लोक सम्मत स्वरूप है। इसलिए संत कबीर एवं रैदास की योग साधना पर गोरखनाथ का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संतों के पदों राग–रागनियो, दोहा, चौपाइयों, भाव, भाषा एवं छन्द पर नाथ पंथ की अनुगूंज स्पष्ट सुनाई देती है। संत कबीर दास जी ने नाथ मत के अन्यतम सिद्ध महायोगी गुरु गोरखनाथ की प्रति सम्मान का भाव प्रकट किया है करते हुए कहा है –

''गोरखनाथ न मुद्रा पहि, री मस्तक नहीं मुड़ाया।
ऐसा भगत भया भू ऊपरि, गुरू पैराज छुड़ाया।।''

हिंदी साहित्य में सगुण भक्ति की उपासक एवं राम को प्रतिष्ठित करने वाले कई गोस्वामी तुलसीदास जी गोरखनाथ से काफी प्रभावित थे जिसका विवरण उन्होंने अपनी रचना कवितावली में दिया है –

''गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग।
निगम नियोगते सो केलि ही छरो सो है।''4

महायोगी गुरु गोरखनाथ का भक्ति साहित्य एवं दर्शन आध्यात्मिक मुक्ति के साथ–साथ सामाजिक मुक्ति का साहित्य है। उन्होंने साधना की नई विद्या सिखाई जाति–पाति की श्रेष्ठता को निरर्थक बताया तथा प्रेम को सबसे कम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया। महायोगी गोरखनाथ जी ने दार्शनिक दृष्टि से पिंड और ब्रह्मांड को एक समान कहा– "जोई–जोई पिण्डे सोई ब्रह्मण्डे।" अर्थात् शरीर को उसकी साधना से तथा सिद्धि से संपूर्ण ब्रह्मांड को जाना जा सकता है तथा इसकी सिद्ध प्राप्त की जा सकती है। महायोगी गुरु गोरखनाथ ने जन–सामान्य के लिए नाथ पंथ का प्रवर्तन किया। उनके चिंतन की पृष्ठभूमि चेतन की लोकातीत समाधि अवस्था थी। उन्होंने शक्ति और शिव में कोई भेद नहीं किया अर्थात दोनों एक ही है और मानवता के कल्याण के लिए अलग–अलग रूपों में दिखाई देते हैं। गोरखनाथ के समय में भारतीय धर्म साधना की अवस्था विचित्र थी। पूर्ववर्ती और समसामयिक सिद्धो के समय मे अनेक रुढियां एवं कुरीतियां जन्म ले चुकी थी। गोरखनाथ जी ने इन रूढ़ियों से टकराकर मानवता के कल्याण के लिए उनसे प्रतिद्वन्दी की तरह टक्कर भी लिया और अपनी बात को इस प्रकार स्पष्ट किया – "हे पण्डित ब्रह्म ज्ञान को समझो द्यसुज्ञानी गोरखनाथ ब्रह्म ज्ञान का वर्णन करता है। उसकी उत्पत्ति बिना बीज के हुई है। वह बिना मूल का वृक्ष है। बिना पत्तों और फूलों के फल आता है वह लंगड़ा होते हुए वृक्ष पर चढ़ा हुआ है वह बिना आकाश का चंद्रमा है और बिना ब्रह्मांड का सूर्य है। वह बिना मैदान का युद्ध है। वह परमार्थ को जो जानता है ज्ञान उसी के भीतर उदित होता है।"[5]

ऐतिहासिक दष्टि से अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि योग संप्रदाय या पंथ और तंत्र संप्रदाय की परंपरा ही है कि जो श्रेष्ठ है उसको पहले सम्मान या स्थान देना चाहिए और लोगों को और लोगों को उनके

बादद्य जैसे मोक्ष– धर्म– अर्थ –काम –सन्यास – वानप्रस्थ–गृहस्थ– ब्रह्मचर्य इत्यादि। इस संदर्भ मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन उल्लेखनीय है –"यह ठीक भी है किंतु लोक का काम ऐसा नहीं है वह ठीक इसके विपरीत है। योगियों और तांत्रिकों की इस उल्टी रोति का परिणाम यह हुआ कि उन्हें लोक रीति से उल्टी बात करने की आदत पड़ गई जो आगे चलकर गोरखनाथ में पाई ही जाती है कबीर जैसे संत कवियों में पाई जाती है।"[6]

जिस प्रकार आदिकालीन हिंदी–भाषा के विकास में गोरखनाथ की भूमिका महत्वपूर्ण है और जन समुदाय के लिए लोक भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप मे परिवर्तित करने का प्रयास किया गया है। उसी प्रकार उनकी काव्यात्मकता भी हिंदी साहित्य के लिए लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुआद्य हिंदी कविता में जो रहस्यवाद, अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत, राग–रागिनियो, उलटवासियो, विरह–वेदना और उक्तिवैचित्रय के साथ–साथ सहज एवं सरल उपदेशात्मक सहज शैली की धारा प्रवाहित होती रही, उसका मूल शब्द गोरखनाथ की ही देन है। इस संदर्भ मे परशुराम चतुर्वेदी की मान्यता है – "जिस प्रकार कोई भी समर्थ कभी लोग भाषा में अपने व्यक्तित्व शीलता को पूरी तरह ओत–प्रोत करके अपनी कवित्री प्रतिभा और कल्पना शक्ति के सहारे उसे विशिष्ट काव्य भाषा की शैली का रूप दे देता है। गोरखनाथ जी ने भी जन समुदाय की भाषा में अपने शील गुण को समाहित करके उसे विशिष्ट रूप दे दिया है।"[7]

कविता तो अनुभूति की अभिव्यक्ति है अनुभूति के क्षेत्र की कोई सीमा नहीं होती, किंतु अभिव्यक्ति संप्रेषण क्षमता का होना अत्यंत आवश्यक है। गोरखनाथ के समय में समाज में अनैतिकता का साम्राज्य बढ़ रहा था। विशेषकर धर्म एवं साधना के नाम पर बाह्याडम्बर एवं रूढ़ियों का बोलबाला था। तथाकथित साधु जन या कुटुंब तो कुटुंब के रूप में या फिर लश्कर के रूप में जीवन के विभिन्न भोगो को भोगने के लिए तत्पर थे। कोई पोथी के भार से दबा–दबा कांप रशा है, तो कोई दण्ड लेकर तीर्थो का भ्रमण करता हुआ अपने वर्चस्व एवं स्वार्थ की पूर्ति के लिए तत्पर है। ज्ञान तथा शास्त्र पर पर चर्चा करते–करते ज्ञानी जन ऊब चुके हैं। जन समुदाय ब्रह्म को जानना एवं अनुभव करना चाहता है लेकिन उसे बताने की युक्ति या योजना किसी के पास नहीं है और नए ही योग्य वाणी है। इस जटिल चुनौती को स्वीकार करते हुए महायोगी गोरखनाथ जी नशास्त्रो में वर्णित ब्रह्म और योग को अनुभव की प्रयोगशाला में परखकर उसे जन–समुदाय के लिए रुचिकर एवं प्रेरित करने हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया।

गोरखनाथ जी ने साहित्यशास्त्र की अधिक चिंता नहीं की बल्कि उन्होंने जिज्ञास शिष्यों और भक्तों के प्रश्नों को लेकर उपदेशी विधान के अंतर्गत वानियो की रचना की उनकी मान्यता है कि, "लोक–चेतना से संपृक्त होना, लोकनात्मक साहित्य की सबसे बड़ी पहचान है। साहित्य का संबंध शास्त्र बोध से कहीं अधिक अनुभव बोध से है। यदि इस युग में वांग्डमय को ध्यानपूर्वक देखें तो लोक–संकट, उस संकट से मुक्ति तथा आत्म संस्थापन या समाज के बीच लोकनात्मक अनुभव के संतुलन की अपनी निजी समस्या निरन्तर. दिखाई देती है। साहित्य की संजीवनी शक्ति ही लोकानुभव है।"[8]

सामान्यतः यह कहा जाता है गोरखनाथ पूर्णयोगी तथा आदर्श मानव थे। उनका प्रकृति एवं दैवी शक्तियो पर पूर्ण नियंत्रण था।उन्होने जिस धातु को भी स्पर्श किया वह उनकी योग्यता के अनुसार स्वर्ण का हो जाता था। हिंदी साहित्य के प्रामाणिक ग्रंथो में गोरखबानी का स्थान सर्वोपरि है। जिसमें साधको और अवधूतों को दिए

गए उनके उपदेशों से इनका बड़ा प्रभाव पड़ा। निर्गुण संतों और हिंदी सूफी कवियों पर उनकी अमित छाप है। कबीर की बनियों एवं पदों पर उलटवासियो मे में अधिकांशततः उनकी उक्ति का छायानुवाद है। जायसी के पद्मावत में योगियो की चर्चा में गोरखनाथ ही प्रतिबिम्बित है। वस्तुतः गोरखनाथ सच्चे अर्थों में अपने युग के महामानव थे। वे आदर्श योगी तो थे ही दया एवं क्षमता की जीवित प्रति मूर्ति थे।

इस प्रकार भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में गोरखनाथ की उपादेयता 'पर विवेचन के उपरांत यह कहा जा सकता है कि महायोगी गोरखनाथ जी भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार प्रतिष्ठित हो चुके हैं कि इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद भी वर्तमान में विद्यमान प्रतीत होते हैं। उनकी महानता का परिचय इसी से मिलता है कि वह आज भी हमारे दैनिक साधना एवं सेवा के अभिन्न अंग हो चुके हैं, उन्हें किसी एक कालक्रम में स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे सर्वकालिक एवं सर्वज्ञ हैं। गोरखनाथ शैवधर्म के शिक्षा गुरु एवं धार्मिक नेता के रूप में भी प्रतिष्ठित किए जाते हैं। उनमे जन समुदाय को एकता के सूत्र में बांधने की अपूर्व संगठन शक्ति थी वे हठयोग के प्रणेता एवं समाज सुधारक भी माने जाते हैं। उन्होंने स्त्री के माया रूप का त्याग कर दिया था क्योंकि वे स्त्री को एक माता के रूप में ही देखते थे। गोरखनाथ जी ने देवालय की यात्रा को 'शून्य यात्रा 'कहा और तीर्थ यात्राओं को निष्फल बताकर साधु संतों के दर्शनों के लिए की जाने वाली यात्रा को ही सफल यात्रा बताया है। उनकी मान्यता है कि योगी वह है जो मन की रक्षा करें और जनता की रक्षा के लिए हमेशा तत्पर रहे तथा स्वार्थ की भावना का परित्याग करे एवं माया–मोह के बंधन से मुक्त होकर मानवता को प्रतिष्ठित करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'नाथ सम्प्रदाय', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1981, पृष्ठ 95
2. कमल सिंह,' गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य' गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर, संस्करण 2019, पृष्ठ 16
3. अक्षय कुमार बनर्जी, 'फिलासफी आफ गोरखनाथ' मोतीलाल बनारसी दास अंग्रेजी संस्करण 2016, पृष्ठ 148
4. चम्पाराम मिश्र,' कवितावली (सटीक), इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, संस्करण 1933, पृष्ठ 160
5. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, 'गोरखबानी', हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण संवत् 2003 वि० पृष्ठ 108
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'कबीर', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2016, पृष्ठ 85
7. परशुराम चतुर्वेदी, 'उत्तर भारत की संत परम्परा' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, स़स्करण 2019, पृष्ठ 62
8. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,' गोरखबानी' हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण संवत् 2003 वि०, पृष्ठ 219

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 203-209

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में वसुधैव कुटुंबकम्

डॉ. सरिता सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय सिद्धार्थनगर, कपिलवस्तु।

अयं बन्धुरयं नेतिगणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

(महोपनिषद् अध्याय ४ श्लोक ७१)

यह अपना बन्धु है और यह अपना बन्धु नहीं है इस तरह की गणना छोटे चित वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों की तो सम्पूर्ण धरती ही परिवार है।

सारांश :-

अवलोकित हो रहे वर्तमान वैश्विक व्यवस्था परिदृश्य में जवाहरलाल नेहरू से लेकर नरेंद्र मोदी तक भारत के नेताओं ने देश के वैश्विक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए अक्सर महाउपनिषद से लिए गए वसुधैव कुटुम्बकम (दुनिया एक परिवार है वाक्यांश का इस्तेमाल किया है। हालाँकि यह शब्द भारत के कूटनीतिक शब्दकोष का एक मंत्र बन गया है। दरअसल अलग–अलग राजनीतिक और धार्मिक विचारधाराओं के बावजूद लगभग हर नेता ने अलग–अलग समय पर अलग–अलग अवधारणाओं को व्यक्त करने और अलग–अलग मुद्दों को संबोधित करने के लिए इस मुहावरे का इस्तेमाल किया है।

वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धांत हमें विभिन्न चुनौतियों और अवसरों के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान समय में जहां वैश्विकरण और तकनीकी प्रगति ने हमें एक–दूसरे के करीब लाया है वहीं यह चुनौतियों और अवसरों का नया परिप्रेक्ष्य भी लेकर आया है। इस सिद्धांत का अनुसरण करने के लिए हमें विभिन्न समाजों और समुदायों के साथ सहयोग और समझौता करना पड़ता है। यह हमें यह सिखाता है कि

चुनौतियों का समाधान संवाद और समझौते के माध्यम से किया जा सकता है। जब हम सभी को एक वैश्विक परिवार के रूप में देखते हैं तो चुनौतियां अवसरों में परिवर्तित हो सकती हैं। वसुधैव कुटुम्बकम वाक्यांश महोपनिषद जैसे प्राचीन भारतीय ग्रंथ से लिया गया है जो एक समग्र विश्वदृष्टि को समाहित करता है जिसमें परस्पर जुड़ाव पारस्परिक सम्मान और सामूहिक कल्याण पर जोर दिया जाता है। जैसे–जैसे वैश्विक ध्रुवीकरण तीव्र होता जा रहा है यह सिद्धांत अधिक प्रासंगिक होता जा रहा है जो अंतर्राष्ट्रीय मंच पर सहयोग शांति और सतत विकास को बढ़ावा देने में भारत की विदेश नीति की रूपरेखा को आकार दे रहा है।

प्रस्तावना –

वसुधैव कुटुम्बकम् वाक्यांश महोपनिषद जैसे प्राचीन भारतीय ग्रंथ से लिया गया है जो एक समग्र विश्व दृष्टि को समाहित करता है जिसमें परस्पर जुड़ाव पारस्परिक सम्मान और सामूहिक कल्याण पर जोर दिया जाता है। जैसे–जैसे वैश्विक ध्रुवीकरण तीव्र होता जा रहा है यह सिद्धांत अधिक प्रासंगिक होता जा रहा है जो अंतर्राष्ट्रीय मंच पर सहयोग शांति और सतत विकास को बढ़ावा देने में भारत की विदेश नीति की रूपरेखा को आकार दे रहा है।

भारत की विदेश नीति में वसुधैव कुटुंबकम की प्रासंगिकता और नैतिक निहितार्थ सार्वभौमिक भाईचारा और वैश्विक सहयोग वसुधैव कुटुम्बकम विश्व एक परिवार है का सिद्धांत सार्वभौमिक भाईचारे पर जोर देता है जो नैतिक रूप से भारत को वैश्विक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए बाध्य करता है।

यह सिद्धांत संकीर्ण राष्ट्रीय हितों की धारणा को चुनौती देता है और विदेश नीति के प्रति अधिक समावेशी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है।

उदाहरण भारत की कोविड–19 वैक्सीन कूटनीति जहां उसने वैक्सीन मैत्री पहल के तहत कई देशों को टीके की आपूर्ति की इस नैतिक रुख का उदाहरण है।

संघर्ष समाधान और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व यह अवधारणा शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और अहिंसक संघर्ष समाधान को बढ़ावा देती है जो बढ़ते ध्रुवीकरण के युग में विशेष रूप से प्रासंगिक है।

उदाहरण : रूस–यूक्रेन संघर्ष पर भारत का रुख जहां उसने शांतिपूर्ण वार्ता का आह्वान करते हुए दोनों पक्षों के साथ राजनयिक संबंध बनाए रखे हैं इस सिद्धांत को दर्शाता है।

रूस की निंदा करने वाले संयुक्त राष्ट्र के मतदान से भारत का दूर रहना तथा साथ ही यूक्रेन को मानवीय सहायता प्रदान करना संबंधों में संतुलन लाने तथा शांति को बढ़ावा देने के प्रयास को दर्शाता है।

सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर वसुधैव कुटुम्बकम अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में हार्ड पावर के नैतिक विकल्प के रूप में सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर के उपयोग को प्रोत्साहित करता है।

उदाहरण : संयुक्त राष्ट्र में भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस को बढ़ावा देना इस सिद्धांत की अभिव्यक्ति है।

पर्यावरण संरक्षण : यह सिद्धांत परिवार के विचार को प्राकृतिक दुनिया तक विस्तारित करता है तथा वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति नैतिक जिम्मेदारी को दर्शाता है।

उदाहरण अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन में भारत का नेतृत्व और उसकी पंचामृत प्रतिबद्धता इस नैतिक रुख को प्रदर्शित करती है।

जलवायु परिवर्तन से निपटने में सक्रिय भूमिका निभाकर भारत वैश्विक 'परिवार' के प्रति अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करता है।

मानवीय सहायता और आपदा राहत यह सिद्धांत नैतिक रूप से भारत को अपनी सीमाओं से परे मानवीय सहायता और आपदा राहत प्रदान करने के लिए बाध्य करता है।

उदाहरण 2015 में नेपाल भूकंप के प्रति भारत की त्वरित प्रतिक्रिया और 2022 में आर्थिक संकट के दौरान श्रीलंका को दी गई सहायता इस नैतिक दृष्टिकोण का उदाहरण है।

आर्थिक सहयोग और विकास 'वसुधैव कुटुम्बकम' नैतिक रूप से समावेशी आर्थिक नीतियों का समर्थन करता है जो अन्य राष्ट्रों विशेष रूप से कम विकसित राष्ट्रों की विकास आवश्यकताओं पर विचार करती हैं।

उदाहरण : वैश्विक दक्षिण की आवाज के रूप में भारत की भूमिका इसी सिद्धांत को दर्शाती है। ये साझेदारियाँ शोषणकारी संबंधों के बजाय पारस्परिक लाभ पर केंद्रित हैं।

जी–20 शिखर सम्मेलन 2023 दिल्ली

एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य :

जी–20 शिखर सम्मेलन के लिए चुना गया विषय 'वसुधैव कुटुम्बकम' का अंग्रेजी में सटीक अनुवाद है जो एक पृथ्वी एक परिवार, एक भविष्य है।

यह अनुवाद वैश्विक एकता, साझा बंधन और बेहतर भविष्य की साझा आकांक्षाओं के सार को खूबसूरती से अभिव्यक्त करता है।

महत्व :

"वसुधैव कुटुंबकम वाक्यांश का वसुधैव कुटुम्बकम वाक्यांश जीवन और दर्शन के विभिन्न पहलुओं में ऐतिहासिक और समकालीन दोनों ही संदर्भों में महत्वपूर्ण महत्व रखता है। इस वाक्यांश से जुड़े कुछ प्रमुख अर्थ इस प्रकार हैं

विश्व बंधुत्व वसुधैव कुटुम्बकम विश्व बंधुत्व और सभी लोगों के परस्पर जुड़ाव की भावना पर जोर देता है। यह इस विश्वास को बढ़ावा देता है कि राष्ट्रीयता जातीयता या धर्म में हमारी भिन्नताओं के बावजूद हम सभी एक वैश्विक परिवार का हिस्सा हैं। यह अवधारणा सभी मनुष्यों के प्रति सहानुभूति और करुणा को प्रोत्साहित करती है।

शांति और सद्भाव यह वाक्यांश शांति सद्भाव और एकता के मूल्यों को बढ़ावा देता है। हमारी साझा मानवता पर जोर देकर यह व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों को संघर्षों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने और एक अधिक शांतिपूर्ण विश्व के निर्माण के लिए मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत वसुधैव कुटुम्बकम प्राचीन भारतीय दर्शन और अध्यात्म में गहराई से निहित है। यह भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और सभी जीवों के प्रति सहिष्णुता समझ और सम्मान को बढ़ावा देने की इसकी दीर्घकालिक परंपरा को दर्शाता है।

वैश्विक उत्तरदायित्व वैश्विक परिवार की अवधारणा का तात्पर्य ग्रह और उसके निवासियों की भलाई के लिए साझा जिम्मेदारी से है। यह व्यक्तियों और राष्ट्रों को गरीबी जलवायु परिवर्तन और असमानता जैसी वैश्विक चुनौतियों से निपटने की जिम्मेदारी लेने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंध अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में यह वाक्यांश राष्ट्रों के बीच कूटनीति सहयोग और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के महत्व की याद दिलाता है। इसे कूटनीति और विदेश नीति के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

आधुनिक प्रासंगिकता आज की परस्पर जुड़ी हुई दुनिया में जहाँ वैश्वीकरण ने विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के लिए परस्पर संवाद को आसान बना दिया है वसुधैव कुटुम्बकम आज भी प्रासंगिक है। यह विविध समुदायों के बीच संवाद समझ और सम्मान को प्रोत्साहित करता है।

नैतिक मूल्य यह वाक्यांश सहानुभूति दयालुता और समावेशिता जैसे नैतिक मूल्यों को समाहित करता है। यह व्यक्तियों और समाजों को दूसरों के साथ गरिमा और सम्मान के साथ व्यवहार करने के लिए एक नैतिक दिशा–निर्देश प्रदान करता है।

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय यह सभी व्यक्तियों के लिए समान व्यवहार और अवसरों की वकालत करके मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप है, चाहे उनकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो।

उद्देश्य :

1. सैद्धांतिक आयाम सार्वभौमिक अर्थशास्त्र को अपनाना।
2. आर्थिक समानता और स्थिरता एक अधिक न्यायसंगत विश्व का निर्माण।
3. विविधता और एकता को बढ़ावा देना।
4. वैश्विक सहयोग के लिए प्रणालीगत दृष्टिकोण।
5. वसुधैव कुटुंबकम को लागू करना वैश्विक शांति के लिए व्यावहारिक कदम।

चुनौतियाँ और अवसर :

वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धांत हमें विभिन्न चुनौतियों और अवसरों के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान समय में जहां वैश्विकरण और तकनीकी प्रगति ने हमें एक–दूसरे के करीब लाया है वहीं यह चुनौतियों और अवसरों का नया परिप्रेक्ष्य भी लेकर आया है। इस सिद्धांत का अनुसरण करने के लिए हमें विभिन्न समाजों और समुदायों के साथ सहयोग और समझौता करना पड़ता है। चुनौतियों के संदर्भ में सांस्कृतिक धार्मिक और सामाजिक विभिन्नताओं के कारण संघर्ष और गलतफहमी पैदा हो सकती है। लेकिन वसुधैव कुटुम्बकम हमें यह सिखाता है कि इन विभिन्नताओं को नकारने की बजाय हमें उन्हें स्वीकार करने और उनका सम्मान करने की आवश्यकता है। यह हमें यह सिखाता है कि चुनौतियों का समाधान संवाद और समझौते के माध्यम से किया जा सकता है। जब हम सभी को एक वैश्विक परिवार के रूप में देखते हैं तो चुनौतियां अवसरों में परिवर्तित हो सकती हैं।

वहीं दूसरी ओर वैश्विकरण और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग ने हमें नए अवसरों की ओर बढ़ने का मार्ग भी दिखाया है। यह हमें नए बाजारों नई तकनीकों और नए विचारों तक पहुंचने का अवसर प्रदान करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धांत हमें सिखाता है कि हमें इन अवसरों का उपयोग सभी के हित के लिए करना चाहिए। यह सिद्धांत हमें व्यक्तिगत लाभ के बजाय सामूहिक लाभ की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। जब हम इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं तो हम न केवल अपनी प्रगति करते हैं बल्कि पूरे समाज और विश्व की प्रगति में योगदान करते हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम् को लागू करने के लिए हम ऐसे शैक्षिक कार्यक्रम बना सकते हैं जो वैश्विक अंतर्संबंध और नैतिक मूल्यों की शिक्षा दें और भविष्य के नेताओं के मन को आकार दें। इन कार्यक्रमों में सहानुभूति सहयोग और स्थिरता के महत्व पर जोर दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए सेवा–शिक्षण कार्यक्रम जो कक्षा शिक्षण को सामुदायिक सेवा के साथ जोड़ते हैं छात्रों को सामाजिक और पर्यावरणीय मुद्दों पर व्यावहारिक अनुभव प्रदान करते हैं। बिजनेस स्कूलों में नैतिक प्रशिक्षण भविष्य के उद्यमियों और प्रबंधकों को ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी के साथ नेतृत्व करने के लिए तैयार कर सकता है।

समावेशिता और सहयोग को बढ़ावा देने वाली सामुदायिक पहलों का समर्थन करने से मजबूत और अधिक लचीले समाज का निर्माण होता है। सामुदायिक केंद्र स्थानीय संगठन और गैर–सरकारी संगठन लोगों को साझा लक्ष्यों पर काम करने के लिए एक साथ लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पड़ोस की सफाई सामुदायिक उद्यान और स्थानीय सांस्कृतिक उत्सव जैसी पहल अपनेपन और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देती हैं। ये गतिविधियाँ विविध पृष्ठभूमि के लोगों को आपस में बातचीत करने और आपसी सम्मान और समझ विकसित करने के अवसर भी प्रदान करती हैं।

पर्यावरणीय स्थिरता सामाजिक न्याय और आर्थिक समता को बढ़ावा देने वाली नीतियों की वकालत करना सुनिश्चित करता है कि हमारी प्रणालियाँ हमारे मूल्यों को प्रतिबिंबित करें। पर्यावरणीय नीतियों को कार्बन उत्सर्जन को कम करने प्राकृतिक आवासों की रक्षा करने और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देने पर केंद्रित होना चाहिए। सामाजिक न्याय नीतियों को प्रणालीगत असमानताओं को दूर करना चाहिए और कमजोर आबादी को सहायता प्रदान करनी चाहिए। आर्थिक नीतियों का लक्ष्य संसाधनों का उचित वितरण जीविका मजदूरी और सभी के लिए सफलता के अवसर सुनिश्चित करना होना चाहिए।

यद्यपि वसुधैव कुटुम्बकम की ओर यात्रा में चुनौतियाँ हैं फिर भी हम संवाद और शिक्षा के माध्यम से सांस्कृतिक मतभेदों को पाटकर आपसी समझ और सम्मान को बढ़ावा देकर उनका समाधान कर सकते हैं। सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम अंतर्धार्मिक संवाद और बहुसांस्कृतिक शिक्षा पूर्वाग्रहों को तोड़ने और समुदायों के बीच सेतु बनाने में मदद कर सकते हैं। ये पहल ऐसे माहौल बनाती हैं जहाँ लोग अपने अनुभव साझा कर सकते हैं एक–दूसरे से सीख सकते हैं और समान आधार पा सकते हैं।

हमें निष्पक्ष व्यापार और आर्थिक सुधारों के माध्यम से आर्थिक असमानताओं को कम करने की दिशा में काम करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सभी फल–फूल सकें। निष्पक्ष व्यापार प्रथाएँ यह सुनिश्चित करती हैं कि विकासशील देशों में उत्पादकों को उनके उत्पादों के लिए उचित मुआवजा मिले उनकी आजीविका में सुधार हो और सतत विकास को बढ़ावा मिले। आर्थिक सुधारों का ध्यान समावेशी आर्थिक प्रणालियों के निर्माण पर होना चाहिए जो सभी को समान अवसर प्रदान करें और आय असमानता बेरोजगारी और पूंजी तक पहुँच जैसे मुद्दों का समाधान करें।

कड़े पर्यावरणीय नियमों को लागू करना और टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देना आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारे ग्रह की रक्षा करता है। इस प्रयास में सरकारों व्यवसायों और व्यक्तियों सभी की भूमिकाएँ हैं। नियमों में प्रदूषण नियंत्रण संसाधन प्रबंधन और जैव विविधता संरक्षण के मानकों को लागू किया जाना चाहिए। टिकाऊ प्रथाओं अपशिष्ट कम करने पुनर्चक्रण और पर्यावरण–अनुकूल उत्पादों को बढ़ावा देने को समाज के सभी स्तरों

पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

यद्यपि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारत की विदेश नीति के लिए एक मजबूत नैतिक आधार प्रदान करता है, फिर भी बढ़ते वैश्विक ध्रुवीकरण के युग में इसका अनुप्रयोग अनेक नैतिक चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। इस समावेशी सहयोगात्मक सिद्धांत को राष्ट्रीय हितों और वैश्विक शक्ति गतिशीलता की वास्तविकताओं के साथ संतुलित करने के लिए सावधानीपूर्वक नैतिक विचार–विमर्श की आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि यदि भारत विश्व को एक परिवार मानना चाहता है तो उसे इस अवधारणा को यथार्थवादी दृष्टिकोण से भी परखना होगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार वसुधैव कुटुम्बकम कोई शांतिपूर्ण अवधारणा नहीं है बल्कि एक अक्रियाशील अवधारणा है जिसमें विभिन्न शक्ति केंद्र साझा मूल्यों को कुचलने के जोखिम पर भी अपने हितों की रक्षा के लिए होड़ करते हैं। ऐसी दुनिया से निपटने के लिए न केवल जलवायु परिवर्तन से लेकर सीमा पार आतंकवाद तक विवादास्पद मुद्दों से निपटने के लिए साझा मानदंड विकसित करने की क्षमता की आवश्यकता होगी बल्कि इन सहमत मानदंडों को लागू करने के लिए राजनीतिक आर्थिक और सैन्य क्षमता की भी आवश्यकता होगी। भारत मानदंड निर्धारित करने में उचित कौशल विकसित कर रहा है लेकिन उन्हें बनाने समर्थन देने और लागू करने में योगदान देने में अभी भी अत्यंत अपर्याप्त है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि डोनाल्ड ट्रम्प के राष्ट्रपति बनने तक अमेरिका ने वसुधैव कुटुम्बकम की इस यथार्थवादी व्याख्या को स्वीकार किया था और मानदंड निर्धारित करके और उन्हें लागू करके इसका पालन करता रहा था। हालाँकि अब ऐसा प्रतीत होता है कि वह इन वैश्विक मानदंडों के संरक्षक की अपनी भूमिका से पीछे हट रहा है।

इसके विपरीत चीन जिसने अब तक वैश्विक मानदंड बनाने के लिए बहुत कम काम किया है ऐसे संस्थान और बुनियादी ढाँचे का निर्माण कर रहा है जो उसे सामान्य मानदंडों से बंधे बिना उसके हितों की सर्वोत्तम पूर्ति करेंगे। इस संदर्भ में हाल ही में आयोजित बेल्ट एंड रोड फोरम एक विश्व की अवधारणा को चीन–प्रथम नीति के प्रति और अधिक समर्पित बना देगा।

मोदी के नेतृत्व में भारत विश्वगुरु बनने की आकांक्षा रखता है। आज के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विमर्श में भारत एक जीवंत लोकतंत्र मजबूत अर्थव्यवस्था और सैन्य शक्ति वाले एक आशाजनक राष्ट्र की छवि प्रस्तुत करता है। हालाँकि सदियों से पश्चिम इस आख्यान पर हावी रहा है और सदियों से वैश्विक एजेंडा तय करता रहा है। बहुपक्षीय संस्थाएँ पश्चिम द्वारा निर्धारित परिभाषाओं मानदंडों और मानकों द्वारा संचालित होती हैं। यदि भारत को नेतृत्व करना है तो वह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और सुरक्षा के उधार के ज्ञान के बल पर ऐसा नहीं कर सकता। उसे अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा उन्हें फिर से खोजना होगा उनका अन्वेषण करना होगा उन्हें प्रासंगिक बनाना होगा और आज की चुनौतियों का समाधान करने के लिए उनका उपयोग करना होगा। चीन एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। पश्चिम चीन के वास्तविक इरादों को समझने में विफल रहा और उसके विदेश नीति विशेषज्ञों ने यह मान लिया कि पूंजीवाद और वैश्वीकरण चीन को लोकतांत्रिक और पश्चिम के अनुकूल बना देंगे।

ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि चीन ने अपनी कूटनीतिक और सुरक्षा नीति–निर्माण में त्सुन–जुए और

कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं में निहित अपने प्राचीन ज्ञान का प्रयोग किया। आज हर पश्चिमी विशेषज्ञ त्सुन–जुए को समझना चाहता है। इसलिए भारतीय राजनयिकों और शिक्षाविदों को कड़ी मेहनत करने और अपनी जड़ों तक गहराई से जाने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ० दीनानाथ वर्मा अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध ज्ञानदा प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली 2020
2. पुष्पेश पंत 21वीं शताब्दी में अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध चतुर्थ संस्करण, (McGraw Hill Education India, Private Limited New Delhi)
3. डॉ० बी० एल० फड़िया अंतरराष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010
4. पुष्पेश पंत 21वीं शताब्दी में अंतरराष्ट्रीय संबंध।
5. राजेश मिश्रा भारतीय विदेश नीति भूमंडलीकरण के दौर में ओरिएंटल ब्लैकस्वान।
6. वी एन खन्ना लीपाक्षी अरोड़ा भारत की विदेश नीति। सहयोग की आशा करते को जल्द से।
7. पीडी शर्मा अंतरराष्ट्रीय राजनीति।
9. https://www-brookings-edu.
10. https://www.jansatta.com
12. https://globalpeace-org.
12. www.bbc.com
13. www.mea.gov.in
14. https://www.dvkjournals.
15. https://usanasfoundation.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
February 2026 Page No. : 210-215

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

समकालीन समाज एवं स्त्री विमर्श : पंकज सुबीर की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में

नमिता शर्मा

पीएचडी शोधार्थी (हिन्दी), देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश

डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी), एम.के.एच.एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश।

सार :

यह शोध आलेख स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसके संघर्ष, शोषण और आत्मनिर्भरता की यात्रा को समकालीन हिंदी कहानियों, विशेषतः पंकज सुबीर की रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्त्री की स्थिति में उतार–चढ़ाव रहा है, जहाँ उसे कभी सम्मान मिला तो कभी परंपराओं और पितृसत्ता ने सीमित कर दिया। स्वतंत्रता के बाद बदलते सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश ने स्त्री को अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति जागरूक किया, परंतु उसके सामने नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुईं। 'चौपड़े की चुड़ैलें', 'कितने घायल हैं कितने बिस्मिल हैं', 'रेपिश्क' और 'छोटी–छोटी खुशियों के रंग' जैसी कहानियाँ स्त्री के शोषण, मानसिक पीड़ा और सामाजिक विसंगतियों को उजागर करती हैं, जबकि 'तमाशा', 'घुग्घू' और 'एक सीप में तीन लड़कियाँ रहती थी' स्त्री की आत्मशक्ति, स्वतंत्रता और प्रतिरोध को रेखांकित करती हैं। इन कहानियों में स्त्री कभी पीड़िता के रूप में सामने आती है, तो कभी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत सशक्त व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। कुल मिलाकर, यह आलेख दिखाता है कि आधुनिक स्त्री अब मानने को छोड़कर अपने जीवन से जुड़े निर्णयों, अधिकारो को जानने लगी है। जागरूक और संघर्षशील योद्धा बनने लगी है।

मुख्य शब्द : स्त्री विमर्श, समकालीन समाज, सामाजिक यथार्थ, पंकज सुबीर, कहानी साहित्य।

समाज में स्त्री का महत्व और स्थान स्वयंसिद्ध है, हालांकि ऐतिहासिक विकासक्रम में उसकी स्थिति में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिक काल में नारी की स्थिति अधिक दयनीय बनी, वहीं जैन–बौद्ध काल में उसे थोड़ी प्रतिष्ठा मिली। इसमें भी उसका मूल्यांकन मुख्यतः सौंदर्य और नैतिक मानदण्डों तक ही सीमित रहा। परंपरागत सामाजिक संरचनाओं ने स्त्री को प्रायः पुरुष की अनुगामिनी बनाकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को सीमित किया। है। इसके कारण भारतीय नारी की स्थिति सदैव विवादास्पद रही है। साहित्य में नारी जीवन के विविध आयामों का निरूपण सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ निरंतर होता रहा है।

स्वाधीनता के पश्चात सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने स्त्री को अपनी पहचान और अस्तित्व के प्रति सजग किया। पारिवारिक एवं सामाजिक दबावों, संबंधों के विघटन, आत्मनिर्भरता की आकांक्षा और पुरुषवादी दृष्टिकोण से अलग स्व दृष्टि की चाह ने उसके संघर्ष को तीव्र किया। इन परिस्थितियों में स्त्री समकालीन हिंदी कहानी, विशेषतः स्त्रीवादी दृष्टि में, एक केन्द्रीय विषय के रूप में उभरती है, जहाँ उसके शोषण, पीड़ा और मुक्ति की आकांक्षा को अभिव्यक्ति मिली है।

समकालीन साहित्यकार पंकज सुबीर की कहानियाँ आधुनिक समाज का यथार्थ प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं। विद्वानों के अनुसार "समाज में केवल व्यक्तियों को परस्पर बाँधने वाले राजनीतिक सम्बन्ध ही शामिल नहीं हैं अपितु मानवीय संबन्धों एवं सामूहिक गतिविधियों की संपूर्ण क्षेत्र ही सम्मिलित हैं।"[1] इस दृष्टि से उनकी कहानियों में जाति, स्त्री समस्याएँ, पीढ़ियों की मनोचेतना, धार्मिक भेदभाव, अंधविश्वास तथा सामाजिक–आर्थिक विषमताओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। उनके कहानी–संग्रहों में सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाएँ और परिवर्तनशील जीवन–दृष्टि का प्रभावी निरूपण हुआ है, जो समकालीन हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आधुनिक समय में स्त्री जीवन कई विरोधाभासों और जटिलताओं से घिरा हुआ दिखाई देता है। चौपड़े की चुड़ैलें कहानी यह दिखाती है कि इंटरनेट, मीडिया और आर्थिक असमानता ने समाज में नई तरह की समस्याएँ पैदा की हैं। यहाँ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि मजबूरी और बेरोजगारी के कारण देह व्यापार में धकेली जाती हैं। गरीबी और विकल्पों की कमी उन्हें ऐसे रास्ते पर ले जाती है, जहाँ से लौटना लगभग असंभव हो जाता है। इस तरह कहानी समाज के उस काले पक्ष को सामने लाती है, जिसे अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। "कुछ व्यक्तियों का मत है कि ये स्त्रीयों अपनी जीविका के लिए स्वेच्छा से इस व्यवसाय को स्वीकार करती हैं और किसी भी दशा में अपनी स्थिति में परिवर्तन नहीं चाहतीं। लेकिन वास्तव में उसके लिए कोई दूसरी गति नहीं, कोई दूसरा मार्ग नहीं और कोई दूसरा अवलंब नहीं। वह ऐसी ढालू राह पर निरवलंब छोड़ दी जाती है, जहाँ से नीचे जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रहता।"[2]

कितने घायल हैं कितने बिस्मिल हैं कहानी, आधुनिक जीवन शैली और संबंधों की बदलती प्रकृति को उजागर करती है। इस कहानी में संबंधों में भावनाओं की जगह उपयोगिता और स्वार्थ प्रमुख हो जाते हैं। आपगा के राय में "जब हम अपनी ड्रेस, अपने जूते. अपनी आभूषण आदि सारी वस्तुएँ गुड लुकिंग खरीदते हैं, तो फिर ये क्यों नहीं। ये भी तो उपयोग की वस्तु है।"[3] आपगा जैसे पात्र के लिए प्रेम एक भावना नहीं, बल्कि जरूरत भर रह जाता है। वह खुशी की तलाश में भटकती है, लेकिन शारीरिक संबंधों के बावजूद उसे वास्तविक संतोष नहीं मिलता। अंततः वह समझती है कि सच्ची संतुष्टि भावनात्मक जुड़ाव में ही संभव है।

वर्तमान जटिल पारिवारिक परिवेश, परिवर्तनशील संदर्भ, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और भूमडलीकरण की घुसपैठ जैसी विसंगतियों से व्यक्ति, परिवार और समाज में विघटन की समस्या जन्म हुई है। व्यक्ति संबंधों में सच्चा हथार की जो कमी आई हैं उनका दूरव्यापी दुष्परिणाम नारी को ही भोगना पड़ता है। कुछ लड़कियों अपनी वासना को पूरा करने के लिए खुशियों तथा संपन्नता को खोज कर रही है लेकिन अधिक आधुनिकता के शोक में सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं में फंस जाती है।

"आज की स्त्री संघर्षपूर्ण जीवन का मुकाबला को पार करके जीवन के अंधकार में भविष्य की रोशनी देखने का प्रयास कर रही हैं।"[4] उषा सपकाले के कथन को सार्थक करती पंकज सुबीर की रेपिश्क कहानी

आधुनिक समाज में स्त्री के शारीरिक शोषण के बाद उसकी मानसिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति को उजागर करती है। कहानी की नायिका अशिमा एक स्वतंत्र सोच वाली लड़की है, जिसकी जिंदगी बलात्कार की घटना के बाद अचानक बदल जाती है। इस घटना की जानकारी केवल उसकी सहेली प्राची को होती है, जो उसका साथ देती है, जबकि उसका प्रेमी साहिल इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करता और उसे छिपाने का प्रयास करता है। वह अशिमा का सहयोग करने के बजाय उसका उपयोग करता है, जिससे वह भी शोषक की भूमिका में दिखाई देता है। अशिमा अन्याय को सहने के बजाय सच्चाई जानने का प्रयास करती है और उसे पता चलता है कि अपराधी उसका ही कॉलेज का साथी गौतम है। अशिमा साहिल से कहती है "क्या फर्क है तुम दोनों में? एक ही तो बात है। उसने भी मेरी मर्जा के खिलाफ मेरे साथ सब कुछ किया और तुम भी वही कर रहे हो, मेरे लिए तुम दोनों एक बराबर हो, एक जैसे। अंतर बस इतना है कि वह अपरिचित, अनजान था और तुम जाने पहचाने हो। और इसी कारण तुम तो उससे भी बड. अपराधी हो मेरे नजर में।"[5] कहानी यह दर्शाती है कि समाज में आज भी स्त्री को भोग की वस्तु समझा जाता है, लेकिन अशिमा का चरित्र यह संकेत देता है कि अब स्त्रियाँ अन्याय के विरुद्ध खड़ी होकर अपनी पहचान स्वयं तय करने लगी हैं।

छोटी–छोटी खुशियों के रंग कहानी स्त्री के मन में बसे डर और उसके मानसिक संघर्ष को सरल ढंग से सामने लाती है। इसमें शिखा नाम की लड़की के माध्यम से दिखाया गया है कि बचपन की एक घटना किस तरह पूरी जिंदगी को प्रभावित कर सकती है। शिखा को होली बहुत पसंद थी, लेकिन एक बार होली के दिन घर लौटते समय कुछ लड़कों ने उस पर हमला किया। वह किसी तरह बच तो गई, लेकिन उस घटना ने उसके मन पर गहरा असर डाल दिया। इसके बाद वह कभी होली नहीं खेल पाती और हर साल वही डर और दर्द उसके अंदर फिर से जाग उठता है। यह कहानी यह समझाती है कि स्त्री के साथ होने वाला शोषण सिर्फ शरीर तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसके मन और भावनाओं को भी गहराई से चोट पहुंचाता है। लंबे समय बाद भी शिखा उस डर से बाहर नहीं निकल पाती। कहानी में एक समाधान भी दिया गया है। होली के अवसर पर घर आयी बुआ की समझाइश "बेटा जीवन तो घटनाओं और दुर्घटनाओं से ही भरा है। लेकिन इस सबके बाद भी छोटी छोटी खुशियों को जी लेना ही जीवन है। बडी बडी खुशियों की प्रतीक्षा करना जीवन नहीं।"[6] लेखक बुआ के माध्यम से कहते है कि हम नारी है हम कोमल है लेकिन हम उतनी ही शक्तिशाली भी है। इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को जीना है और जीना सीखना भी चाहिए।

पंकज सुबीर की कहानियाँ समाज में प्रचलित स्त्री–विरोधी कुप्रथाओं को उजागर करते हुए उनके बदलाव की जरूरत को सामने लाती हैं। 'जनाब सलीम लेगडे और श्रीमती शीला देवी की जवानी' कहानी मध्यप्रदेश के एक आदिवासी समाज की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जहाँ स्त्री का जीवन परंपराओं के नाम पर वस्तु की तरह निर्धारित होता है। यहाँ पुरुष को विवाह के लिए स्त्री के घरवालों को पैसे देने होते हैं और कई बार दूर–दराज क्षेत्रों से लड़कियों को लाकर पैसों के हिसाब से बाँट लिया जाता है। इस व्यवस्था में स्त्री का अस्तित्व केवल लेन–देन तक सीमित रह जाता है। नातारा प्रथा के कारण एक ही स्त्री की बार–बार शादी कर दी जाती है, जिससे विवाह का भावनात्मक और नैतिक पक्ष समाप्त हो जाता है। ऐसे माहौल में शीला देवी का चरित्र उभरता है, जो इन परंपराओं को तोड़ते हुए पहली बार अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती है और सलीम के साथ संबंध स्थापित करती है। यह कदम केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक बंधनों के खिलाफ एक विद्रोह के

रूप में सामने आता है।

'दो एकांत' कहानी एक कल्पनात्मक लेकिन चेतावनी देने वाली कथा है, जो उस भविष्य को दिखाती है जहाँ कन्या भ्रुण हत्या के कारण स्त्रियों की संख्या लगभग समाप्त हो जाती है। समाज में केवल पुरुष रह जाते हैं और स्त्री का अस्तित्व केवल यादों और तस्वीरों तक सीमित हो जाता है। कहानी में एक युवक जब यह सवाल करता है कि लड़कियाँ कहाँ चली गईं, तब उसे बताया जाता है कि उन्हें धीरे–धीरे समाप्त कर दिया गया। यह स्थिति वर्तमान समाज की सोच पर तीखा प्रहार करती है, जहाँ बेटी को बोझ समझा जाता है। लेखक इस कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट करता है कि यदि यही प्रवृत्ति जारी रही, तो इसका परिणाम मानव समाज के विनाश के रूप में सामने आएगा।

'रंगों की रास्ता चंदन की जंगल' कहानी विधवा जीवन की पीड़ा और सामाजिक बंधनों को गहराई से चित्रित करती है। नायिका पूर्वा का विवाह होते ही वह विधवा हो जाती है और उसके जीवन से सभी रंग छिन जाते हैं। समाज उसे सफेद वस्त्र, त्याग और एकांत में जीने के लिए मजबूर करता है। उसे किसी भी प्रकार की खुशी, सजने–संवरने या सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती। धीरे–धीरे उसका जीवन निराशा और बंधनों में घिर जाता है। लेकिन कहानी के अंत में विनय उसके जीवन में प्रवेश करता है और अपने प्रेम के माध्यम से उसके जीवन में फिर से रंग भरता है। यह प्रसंग यह संदेश देता है कि विधवा को भी नए जीवन, प्रेम और सम्मान का पूरा अधिकार है और समाज की रूढ़ियाँ उसके जीवन को बाँध नहीं सकतीं।

वर्तमान स्त्री के संबन्ध में डॉ. प्रभा खेतन का विचार है, "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है। उसकी नियती में बदलाव है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्धेश्य, दर्शन उसका मन मिजाज सभी तो बदल रहा है।"[7] 'तमाशा' कहानी आधुनिक स्त्री के सशक्त, स्वाभिमानी और क्रांतिकारी रूप को उजागर करती है, जिसमें एक युवती अपनी शादी से पूर्व अपने उस पिता को पत्र लिखती है जिसने उसे, उसकी माँ और दादी को त्याग दिया था और उसे 'तमाशा' नाम दिया था। साधारण कथानक के भीतर गहन स्त्री–विमर्श छिपा है। नायिका माँ और दादी के संघर्षों से शिक्षित होकर पी.एच.डी. प्राप्त करती है और स्वयं को डॉ. स्वाती कुसुम देशपांडे के रूप में स्थापित करती है। कुसुम उसकी मां का नाम है। उसके पिता या यूं कहे पितृसत्ता के विरुद्ध स्पष्ट विद्रोह कहानी के इस कथन से ज्ञात होता है, "कुसुम को स्वयं मैने अपने नाम के बीच में स्थान दिया है क्योंकि ये मेरी माँ का नाम है, मेरे नाम के बीच में किसी भगोडे का नाम आ नहीं सकता था।"[8] वह अपने पिता को माफ करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है और विवाह में आने से रोकते हुए कहती है, "जिस उम्र में एक गुडिया के लिए तरसती थी तब आप वह मुझे दे नहीं पाये और अब जब उन दोनों स्त्रियों ने मिलकर एक गुड्डा मेरे लिए तलाश किया है तब मैं नहीं चाहती कि आप दुनिया के सामने आकर ये साबित करने का प्रयास करें कि आप ने ही मेरे लिए ये गुड्ध्डा लाकर दिया है। समाज पुरुष प्रधान है और निश्चित रूप से जब आप होंगे तो आपका ही सारा रेय मिलेगा और उन दोनों स्त्रियों की सारी तपस्या व्यर्थ हो जाएगी।"[9] वह माँ–दादी के त्याग को सम्मान देती है। कहानी समाज की पुत्र–प्रधान मानसिकता और स्त्री के प्रति भेदभाव पर प्रहार करती है। अंततः नायिका अपने दर्द को शक्ति में बदलते हुए स्वीकार करती है, "उस दिन के बाद मुझे फिर उस पुरुष की कमी कभी भी अपने जीवन में महसूस नहीं हुई जो दूसरों के घर में पिता बन कर नजर आता था। उस दिन के बाद मेरा एक नया जन्म हुआ था एक मजबूत और दृढ निश्चयी लड़की का जन्म।"[10] इसी के साथ 'तमाशा' समस्त जागृत,

आत्मनिर्भर और प्रतिरोधशील नारी का प्रतीक बन जाती है।

'घुग्घू' और 'एक सीप में तीन लड़कियाँ रहती थी' कहानियाँ स्त्री की आत्मशक्ति और स्वतंत्रता की जटिल यात्रा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं। 'घुग्घू' में घुग्घू उस स्त्री का प्रतीक है जो परंपराओं और सामाजिक नियमों की सीमाओं में कैद है, नायिका शहर में आकर दैहिक स्वतंत्रता का अनुभव करना चाहती है, पर संस्कार उसे रोकते हैं, अंततः वह बंधन तोड़कर महसूस करती है "उसे लगा कि शंकू के बाहर की दुनिया उतनी बुरी नहीं है जितना वो समझती थी।"[11]

वास्तव में घुरघु एक कीडा होता है जो धूल में शंकू के आकार का छेद बना कर रहता है। कहानी में कई बार बच्चे उसे खेल खेल में तिनका डालकर निकालने का प्रयास करते हैं। उसी घुग्घु को प्रतीक बनाकर पंकज सुबीर ने समकालीन समाज में स्त्री जीवन की वास्तविकता को याद दिलाने का परिश्रम किया है। कहानी स्त्री की दैहिक ही नहीं, बल्कि वैचारिक और जीवन–निर्णयों की स्वतंत्रता का समर्थन करती है और समाज की दोहरी नैतिकता पर प्रहार करती है। वहीं 'एक सीप में तीन लड़कियाँ रहती थी' में हरी, नीली और पीली लड़कियों के माध्यम से स्त्री जीवन की विविध स्थितियाँ उभरती हैं। हरी के पास सपने हैं पर पंख नहीं, नीली के पास सपने और पंख दोनों हैं, और पीली के पास पंख होते हुए भी सपने नहींय यह आधुनिक समाज की विडंबना को दर्शाता है जहाँ स्त्री को अवसर, स्वप्न और स्वतंत्रता एक साथ नहीं मिलते। हरी लड़की के माध्यम से लेखक दिखाते हैं कि समाज स्त्री के सपनों को सीमित कर देता है, कहानी में कहा गया है, "आजकल कोई हरीवाली लड़की नहीं बनाना चाहते है।"[12] अर्थात् स्त्री की स्वतंत्र पहचान आज भी सामाजिक बंधनों से जूझती हुई अपने पूर्ण विस्तार की तलाश में है।

निष्कर्ष :

स्त्री पहले समाज की एक संरचना का हिस्सा मात्र थी, समय के साथ वो उसी समाज के परिवर्तन की सक्रिय वाहक बन चुकी है। उपर्युक्त अध्ययन में पंकज सुबीर की कहानियाँ स्पष्ट करती हैं कि स्त्री विमर्श का जो प्रश्न है उसमें उनका संघर्ष जायज है। वो बाहरी सत्ता के शोषण से मुक्ति के अलावा मानसिक, भावनात्मक और वैचारिक स्वतंत्रता की भी खोजकर्ता है। इक्कीसवीं सदी का समाज स्त्री की हर प्रकार की स्वतंत्रता का हिमायती जरूर है। पर कहीं न कहीं रूढ़िवादी बंधन एवं सोच, दोहरी मानसिकता, आर्थिक बोझ स्त्री के सुनहरे भविष्य की राह में बाधा बने हुए हैं। समाज की प्रगति में स्त्री एवं पुरुष दोनों वर्गों के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री को उसी प्रकार स्वतंत्रता मिले जिसका पुरुष वर्ग भी हकदार हो। सहानुभूति नहीं, बल्कि समान अवसर, सम्मान और निर्णय की स्वतंत्रता भी मिले। पंकज सुबीर का साहित्य इस परिवर्तन का दिशा–निर्देशक है, जो समाज को यह दिखाने का कार्य करता है कि स्त्री की प्रगति केवल स्त्री की नहीं, बल्कि पूरे समाज के विकास का आधार है।

संदर्भ :

1. डॉ गीता दवे, पंत काव्य में समाज और संस्कृति, पृ. 15
2. पंकज सुबीर, चौपड़े की चुड़ैले, पृ. 125
3. पंकज सुबीर, कसाब गांधीएट यरवदा डॉट इन, पृ. 123

4. डॉ उषा सपकाले, हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण, पृ. 176
5. पंकज सुबीर, चौपड़े की चुड़ैले, पृ. 196
6. पंकज सुबीर, होली, पृ. 45
7. श्री रामनाथ सुमन, नारी जीवन : कुछ समस्याएँ, पृ. 23
8. पंकज सुबीर, ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृ. 128
9. पंकज सुबीर, ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृ. 129
10. पंकज सुबीर, ईस्ट इंडिया कम्पनी, पृ. 128
11. पंकज सुबीर, घुग्घू कहानी स्रोत https://www.matrubharti.com/book/19887059/ghugdhu
12. lksl:ZMatrubharti https://share-google/n852ai7a0VFQdQkbc

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh
SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor : 6.521

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Jeetesh Kumar Meena

Research Scholar, Department of History and Indian Culture
Banasthali Vidyapith, Newai, Rajasthan.

for the paper titled

Heritage, Tourism, and Religious Architecture in Chauth ka Barwara : Community Perspectives and Cultural Significance

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 10-15

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Siddhant Mishra

Research Scholar,
Lovely professional University.

for the paper titled

Naval Self-Reliance and Defence Industrial Strategy : India's Roadmap to 2047

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 16-27

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सत्यप्रकाश मिश्रा

षोधार्थी,

जयप्रकाष विष्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

for the paper titled

गीतांजलि श्री के कहानियों में वस्तुपक्ष और उपन्यासों में स्त्री चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 28-33

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

लेफ्टिनेंट (डॉ.) ज्योति गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
मदनमोहन मालवीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, कालाकांकर,
प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश)

for the paper titled

तीर्थराज प्रयागराज : महाकुम्भ, महापर्व और सनातन परंपरा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 34-40

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. लक्ष्मी देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर

माता सुन्दरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

for the paper titled

समकालीन कहानियों में वृद्ध विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 41-45

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रितु दत्ता, शोधार्थी

डॉ. पूजा धमीजा, शोध निर्देशिका

हिन्दी विभाग, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

for the paper titled

आधुनिक परिवार–प्रणाली का विकासात्मक स्वरूप एवं हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 46-53

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नरेन्द्र कुमार वर्मा

सहायक आचार्य, हिन्दी,

शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुराबाग, जयपुर।

for the paper titled

हिन्दी साहित्य में नारी की बदलती छवि

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 54-56

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

करण दान रतनू

अतिरिक्त मुख्य ब्लॉक शिक्षा अधिकारी (A.C.B.E.O.)
पंचायत समिति, जैसलमेर।

for the paper titled

अनामिका के साहित्य में संवेदना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 57-60

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विपिन पासवान, शोधार्थी,

डॉ. संजीव कुमार, सहायक प्राध्यापक,

आर. पी. एस. कॉलेज, चकेयाज महनार,

इतिहास विभाग, बी.आर. अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

वैशाली के समाजवादी नेता : बसावन सिंह

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 61-64

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. मो. इस्माईल, शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर।
अविनाश कुमार पासवान, शोधार्थी, यू.जी.सी.–नेट,
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर, विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

मध्यकालीन बिहार में शिक्षा : एक अवलोकन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 65-70

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

वसीमा खातून

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

for the paper titled

कुषाण कालीन मथुरा कला शैली के बौद्ध प्रतिमाओं का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 71-79

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Arya Mohandas

Krupanidhi College of Commerce and Management,
Koramangala Bangalore -34

for the paper titled

Revoicing Indianness for Western Readerships: Barriers and Challenges in Translation

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 80-84

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Vaibhav Yadav

Research Scholar, NET JRF Qualified

Department of History, Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh

for the paper titled

SRODHAN VILLAGE : A HISTORICAL STUDY

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 85-91

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Deepak Phor

Research Scholar, NET JRF Qualified

Department of History, Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh

for the paper titled

PANIPAT : A HISTORICAL STUDY

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 92-97

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अभिषेक बेंजवाल

पीएच. डी., राजनीति विज्ञान विभाग,
हेमवती नन्दन बहुगुणा, गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) उत्तराखण्ड।

for the paper titled

उत्तराखण्ड की जैव विविधता : संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण की चुनौतियाँ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 98-103

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अनीता रानी

सहायक प्राध्यापक, कालिंदी कॉलेज (इतिहास विभाग),
दिल्ली विश्वविद्यालय (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.) – दिल्ली।

for the paper titled

वैश्वीकरण की जड़ें :
प्राचीन रेशम मार्ग से आधुनिक विश्व तक

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 104-110

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विशाल साहु

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय,
कटक–753003, ओडिशा।

for the paper titled

कोख उसकी, इज्ज़त समाज की कैसे?
(विशेष संदर्भ :– शिवमूर्ती कृत 'कुच्ची का कानून' कहानी)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 111-115

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अलका शर्मा

सह प्रवक्ता, किशन लाल पब्लिक कॉलेज,
रेवाड़ी 123401 (हरियाणा)

for the paper titled

विश्व पटल पर हिंदी की स्थिति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 116-119

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विभांशु सिंह, शोध छात्र,

प्रो. विनोद कुमार सिंह, आचार्य,

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर।

for the paper titled

हिन्द महासागर क्षेत्र में ग्रे-जोन युद्ध एवं दक्षिण एशिया : भारतीय सुरक्षा के विशेष संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 120-126

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० शशि कुमार शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

वर्द्धमान विश्वविद्यालय, गोलापबाग–713104

for the paper titled

ग्रामीण स्त्रियों की लोमहर्षक त्रासदी का यथार्थ ('औरत' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 127-131

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० प्रमीला उराँव

असिस्टेंट प्रोफेसर, कुँडुख़ विभाग
करमचन्द भगत महाविद्यालय, बेड़ो, राँची।
राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

for the paper titled

झारखण्ड के उराँव जनजाति की युवागृह संस्था

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 132-134

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुबोध कुमार

सहायक प्राध्यापक

आरटीसी बी. एड. महाविद्यालय रांची, झारखंड,

रांची विश्वविद्यालय रांची।

for the paper titled

वर्तमान संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली और उच्च शिक्षा : एक समन्वित अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 135-142

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Manju

for the paper titled

Educational Implications of Sankhya Philosophy

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 143-146

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

जसवीर

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा।

for the paper titled

वर्तमान संदर्भों में हिंदी साहित्य में LGBTQ+ विमर्श

LGBTQ+ Discourse in Contemporary Hindi Literature

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 147-150

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Sanjay Kumar, Research Scholar
Dr. Sufiya Syed, Research Supervisor
Psychology Department, Shri Venkateshwara University,
Gajraula, Amroha (Uttar Pradesh)

for the paper titled

Leadership Styles and Psychological Contracts in Indian Aviation : A Study of Employee Perceptions and Organizational Outcomes

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 151-155

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रोफेसर चन्द्रशेखर

परियोजना समन्वयक

समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

for the paper titled

भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रभाव
(बिहार के विशेष सन्दर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 156-161

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रीति प्रिया दास

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग,
रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक–753003

for the paper titled

भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : भारतीय समाज के परिप्रेक्ष में विशेष सन्दर्भ : अलका सरावगी कृत 'कलि–कथा वाया बाइपास' उपन्यास

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 162-166

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सबा रईस

सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर बिहार।

for the paper titled

हिंदी साहित्य में आत्मकथा की परंपरा और आधुनिक अस्मिता विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 167-170

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

जीतू, शोधच्छात्रा
जामिया मिल्लिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली–110025

for the paper titled

जैन आगमों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन लेश्याओं के विशेष संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 171-175

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Pintu Ram Bairwa

Department of History and Indian Culture,
University of Rajasthan.

for the paper titled

Colonial Influence on the Architectural Transformation of Bharatpur during the British Era

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 176-180

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शिवाश्री सिन्हा

शिक्षिका,

बिहार लोक सेवा आयोग, गया, बिहार।

for the paper titled

काशी का रेशमी वस्त्र एवं धर्म

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 181-185

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. उषा अग्रवाल, विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
प्रधानमंत्री उत्कृष्ट महाविद्यालय, मंदसौर, म. प्र.।

सुधांशु पाण्डेय, शोधार्थी, इतिहास विभाग,
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन, म. प्र.।

for the paper titled

महाराजा यशवंतराव होलकर छत्री : स्थापत्य वैभव एवं सांस्कृतिक विरासत का एक अनुशीलन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 186-192

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नमन जैन, शोधार्थी
इतिहास विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।
शोध केंद्र– शासकीय कृष्णाजी पवार महाविद्यालय, देवास।

for the paper titled

नर्मदा परिक्रमा : आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयामों का शोधपूर्ण विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 193-197

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० सुभीर सिंह

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

रतन सेन डिग्री कालेज, बाँसी, सिद्धार्थनगर।

for the paper titled

भारतीय धर्म साधना के परिप्रेक्ष्य में गोरखनाथ की उपादेयता

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 198-202

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सरिता सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय सिद्धार्थनगर, कपिलवस्तु।

for the paper titled

समकालीन वैश्विक परिदृश्य में वसुधैव कुटुंबकम्

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 203-209

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नमिता शर्मा, पीएचडी शोधार्थी (हिन्दी),
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश
डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
एम.के.एच.एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश।

for the paper titled

समकालीन समाज एवं स्त्री विमर्श : पंकज सुबीर की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

Feb. 2026, Vol. 23, Issue -2, Part-3, Page No. 210-215

https://doi.org/10.5281/zenodo.18621821

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil.
Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152